ग्राहक सेवा – मनोवैज्ञानिक पहलू

(बैंकिंग के संदर्भ में)

ग्राहक सेवा – मनोवैज्ञानिक पहलू

(बैंकिंग के संदर्भ में)

अरुण श्रीवास्तव
सविता शर्मा

आधार प्रकाशन
पंचकूला (हरियाणा)

'यूनियन बैंक ऑफ इंडिया मौलिक हिन्दी पुस्तक लेखन योजनांतर्गत लिखित'

ISBN : 978-81-7675-473-6

मूल्य	–	350 रुपये
सर्वाधिकार	–	लेखक
प्रथम संस्करण	–	2015
प्रकाशक	–	आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड एससीएफ 267, सेक्टर–16 पंचकूला–134 113 (हरियाणा) फोन : 0172–2566952, 2520244 ई–मेल : aadhar_prakashan@yahoo.com
आवरण	–	महेश्वर
लेज़र टाइपसेटिंग	–	आधार ग्राफ़िक्स, पंचकूला (हरियाणा)
मुद्रक	–	बी.के. ऑफसेट, नवीन शाहदरा, दिल्ली

Grahak Sewa - Manovegyanik Pehloo
by Arun Srivastava & Savita Sharma Price : Rs 350/-

उस अदृश्य, अगोचर ज्ञानशक्ति को, जो विचार एवं अनुभव बनकर समय-समय पर हमारे हृदय और मस्तिष्क में प्रकाशित हुई तथा लेखनी के निर्झर से शब्दों के रूप में वह चली।

भूमिका

मनोविज्ञान का महत्व आज के परिप्रेक्ष्य में समझना बहुत ज़रूरी है क्योंकि यह न केवल मन का विज्ञान है बल्कि हमारे विचार से यह मानव का विज्ञान भी है। कहते हैं सभी विषयों, शाखाओं या विचारों की उत्पत्ति का मूल दर्शन शास्त्र ही है। इस दृष्टि से भी, और इस दृष्टि से भी कि मनोविज्ञान की शिक्षा पहले दर्शन शास्त्र के अंतर्गत ही दी जाती थी, यह दर्शन शास्त्र के काफी करीब है। जब हम कहते हैं कि यह मन का विज्ञान है तो यह और भी रहस्यमय, रोमांचकारी तथा जिज्ञासा को बढ़ाने वाला लगने लगता है क्योंकि मन को हमने सदा एक अदृश्य और रहस्यमय उपादान माना है। मन को समझने की शुरुआत खुद को समझने से होती है। जब हम खुद को समझ लेते हैं तो अपने जैसे किसी दूसरे को भी समझ सकते हैं।

मनोविज्ञान हमारे व्यवहारों के स्रोत का वैज्ञानिक अध्ययन है। विज्ञान वह है जिसका एक सुनिश्चित तरीके से, प्रणाली बद्ध अध्ययन किया जा सके। ज्ञान और विज्ञान दो अलग-अलग शब्द हैं। ज्ञान का विशद् तरीके से निरूपण करना ही विज्ञान है और फिर मन का? मन सदा से ही बड़ी तिलस्मी अवधारणा बना रहा है। "आज मन कुछ अच्छा नहीं!" "मन ही ईश्वर, मन ही देवता, मन से बड़ा न कोय" आदि जुमले इतना तो ज़रूर बताते हैं कि मन कोई ऐसी अवधारणा है जो भौतिक अनुभूति से परे है किंतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण और रहस्यमय है। जब हम मन की बात करते हैं तो शरीर के अन्य अंगों की तरह इसकी अवस्थिति और शरीर में स्थिति का अनुभव नहीं किया जा सकता। हृदय कहें - तो सीने के बायीं ओर हाथ जाता है। मस्तिष्क कहें तो शिरोभाग पर ध्यान केंद्रित हो जाता है। इसी प्रकार फेफड़े, जिगर, पित्ताशय आदि सभी अंगों की अवस्थिति तय है किंतु 'मन' कहने से हम अमूर्त धारणा का अनुभव करने लगते हैं। कभी तो 'मन' कहने से 'मस्तिष्क' और कभी 'मन' कहने से हृदय की धारणा का अनुभव होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मन आज भी ज्योतिष, खगोल शास्त्र की तरह रहस्य के आवरण से आच्छादित है। परिभाषिक तौर पर कुछ भी कहा जाये, इतना तो तय है कि यह हमारे नियंत्रण में नहीं है। शरीर विज्ञान की भाषा में कहें तो ऐच्छिक नाड़ी तंत्र का इससे कुछ संबंध नहीं है। यह

अन्य महत्वपूर्ण शारीरिक क्रियाओं की तरह ही अनैच्छिक नाड़ी तंत्र से संबंधित है। तो फिर यह कैसे निर्देशित होता है? इसका नियंत्रण कौन करता है और कैसे करता है? क्यों कभी-कभी हमारा मन नहीं लगता? क्यों कभी-कभी स्वतः हम कुछ घटनाओं का पूर्वाभास प्राप्त करने लगते हैं? ये पूर्वाभास कहां से आते हैं? क्या ये 'मन' जैसे किसी अवयव से आते हैं? आदि-आदि अनेक प्रश्न ऐसे हैं जो एक आम आदमी सामान्य तौर पर सोचता है और कभी-कभी तो उत्तर न पाकर उलझ जाता है। हम भी इस पचड़े में पड़ना नहीं चाहते लेकिन वैज्ञानिक रीति से अध्ययन करने की विधा में किसी उलझन को असुलझी गुत्थी मानकर छोड़ नहीं दिया जाता। इसमें सर्वमान्य लगने जैसी अवधारणा बनायी जाती है। वैज्ञानिक हों या हमारे धर्मशास्त्री- इस विचार पर तो सभी एकमत हो चुके हैं कि मन एक स्वायत्त अवधारणा है जो अनैच्छिक नाड़ी तंत्र से नियंत्रित व निर्देशित होती है। यही हमारे सारे व्यवहारों और अनुभवों का आधार है लेकिन ये कैसे नियंत्रित और निर्देशित होता है? कौन इसको ये निर्देश देता है? क्या वही ईश्वर है जो इसे निर्देश देता है या यह खुद ही एक ईश्वरीय आभास है?

कौन हो तुम? तत्व या आभास केवल?
कौन हो तुम? प्रश्न या विश्वास केवल?

इन प्रश्नों ने हम सभी को बहुत परेशान किया है। इन प्रश्नों के उत्तर ढूँढने का प्रयास मनोविज्ञान ने किया है। वस्तुतः दर्शन ज्ञान की वह शाखा है जिस पर सभी विषयों का अध्ययन आकर अपने अंतिम रूप में सिमट जाता है और एक तत्व का रूप ले लेता है। जिस प्रकार सभी धर्म ईश्वर में जाकर समाहित होते हैं ठीक उसी प्रकार ज्ञान की प्रत्येक शाखा दर्शन पर जाकर सिमटती है। इसलिये मनोविज्ञान, जो कि मूल रूप से दर्शन शास्त्र की ही एक शाखा है, मानव मन और मानवीय व्यवहारों को समझने का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। ग्राहक, जो किसी भी कारोबार का आधार होते हैं, उन्हें और उनके व्यवहार को समझने तथा तदनुरूप कारोबारी योजनायें/नीतियां बनाने में मनोविज्ञान एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

कलम की आवाज-I

मैं, अरुण - लेखक होने का दावा नहीं कर सकता। लेखकों जैसी सोच, जुनून, शब्द भंडार या लच्छेदार मुहावरे मेरे पास कतई नहीं है। मैं तो यथार्थ की कठोर और ऊबड़-खाबड़ धरातल से जुड़ा जीव हूँ। ज़िंदगी की हर आहट को पहचानने की कोशिश करता हूँ, जीवन के हर उतार-चढ़ाव के कारणों के कारण को जानना चाहता हूँ। मेरा ऐसा विश्वास है कि जो व्यक्ति अपने जीवन, उसमें रोजमर्रा घटित होने वाली घटनाओं के मौलिक कारण को समझने की ललक रखता है, वही जीवन के उतार-चढ़ाव की जड़ तक भी जा सकता है।

मुझे जीवन के अनुभवों ने कोरा कागज़ से विभिन्न अनुभवों की चित्रकारी से सजा पोर्ट्रेट बना दिया है। यह बात तो थोड़ी दार्शनिकों जैसी हो जा रही है किंतु पूरा जीवन ही दर्शन है, तो मैं कहाँ तक इस दर्शन से अछूता रहूँगा। मैं कोरा कागज़ था, जब मैं अरुण के रूप में पैदा हुआ था और इस पुस्तक को लिखने से पहले और लिखते-लिखते वह कोरा कागज़ जीवन के कई रंगों के अनुभवों वाला मॉर्डन-आर्ट बन गया है।

बैंक की लंबी नौकरी, सुबह-शाम की आपाधापी, अलग-अलग तरह के स्टाफ और ग्राहक, बैंक की योजनाओं के प्रति अलग-अलग प्रकार के रेस्पाँस, इन सबने बहुत से अलग-अलग, खट्टे-मीठे, आम और खास अनुभवों को ढाला है मुझमें। अब तो, तीन दशकों से भी ज्यादा की नौकरी के बाद, बहुत कुछ महसूस करने लगा हूँ। महसूस कर सकता हूँ अपने और सामने खड़े व्यक्तित्व के अंतरों को। महसूस कर सकता हूँ किसी भी व्यक्तित्व के संघटन के कारणों को, क्योंकि भौतिक और रासायनिक संघटन जीव के (मानसिक और फलस्वरूप शारीरिक) व्यवहार का कारण होता है और उस कारण का परिणाम व्यक्तित्व होता है। उस व्यक्तित्व द्वारा किया जाने वाला समस्त व्यवहार और उसकी सोच उसके शारीरिक और मानसिक, पूर्वाभासों तथा पूर्वानुग्रहों से संचालित होते हैं। बस, अपने इन्हीं अनुभवों को बांटने की छोटी सी कोशिश है यह। इन व्यक्तिपरक अनुभवों में संयोग रहा है बैंक के ग्राहकों का, जिनके व्यवहार के मौलिक कारणों, उनके

व्यक्तित्व तथा उनके पूर्वानुभवों को बैंकिंग कारोबार के दौरान जानने का मौका मिला।

मैंने इस पुस्तक की अभिव्यक्ति को पहले महसूस किया है फिर सहलेखक से साझा किया है। बहुत मुश्किल काम है अमूर्त को साझा करना और किसी और के महसूस किये भावों को शब्द-रूप देना और भी मुश्किल है। यदि इस पुस्तक की विषयवस्तु ज़रा सी भी प्रयोजनमूलक साबित हुयी तो मैं समझूंगा कि मेरा और सहलेखक का दृष्टिकोण समन्वय ठीक रहा और 'मैं' और 'वे', 'हम' बनकर अमूर्त को मूर्त बनाने में सफल हुये। प्रतिक्रियाओं की आशा में...

अरुण

कलम की आवाज-II

मुझे आज भी वह समय याद है जब मेरी अवस्था 13-14 वर्ष की रही होगी। घर में आध्यात्मिक वातावरण तो था ही, आध्यात्मिक पुस्तकों की भी उपलब्धता काफी संख्या में थी। उस साहित्य को पढ़ते-पढ़ते मेरा व्यक्तित्व कैशौर्य तथा संन्यास आश्रम का विचित्र सा संगम बन चुका था। जहां एक ओर कैशौर्य अपनी बलवती रंगबिरंगी छटाओं के साथ इंद्र की उर्वशी की तरह मुझे अपने मोहपाश की ओर खींचता जा रहा था तो दूसरी ओर आध्यात्मिक ज्ञान तथा निरंतर फूलता-फलता विश्वास आस्था का रूप लेता जा रहा था। उस समय मेरी स्थिति एक बालयोगी की सी हो चली थी जिसमें उन्मत्त अवस्था और संन्यास की भावनाओं का अद्भुत संगम और संतुलन दिखाई देता था और जिसके वचनों-प्रवचनों को 50 वर्ष से अधिक की आयुवर्ग के लोग बड़े ध्यानपूर्वक सुना करते थे लेकिन पपीहा मन फिर भी संतुष्ट नहीं होता था। मन की प्यास, जीवन संघर्ष के थपेड़े और एक अज्ञेय शक्ति का आकर्षण मुझे अपनी ओर अत्यंत आकर्षित करता था। इच्छा होती थी कि इस संसार के पार असंसार को भी देखूँ, जानूँ और पहचानूँ। यह इतनी बड़ी सृष्टि, भूगोल-खगोल के पार भी कैसे चलती है? प्रलय और सृजन कैसे होते हैं? हमारे मन का नियंता कौन है? आदि प्रश्नों का उत्तर मुझे मिलना ही चाहिये! सोचते-उलझते मेरी अवस्था 17 वर्ष की हो गयी थी। पुरानी शिक्षा व्यवस्था के हिसाब से यह समय मेरे महाविद्यालय में जाने का था। साथ ही विषयांतरण का भी। अब तक स्कूल में गणित, संस्कृत, हिंदी और इतिहास ने मुझे एक आकार दिया था किंतु अब कुछ नये विषयों से सामना हुआ। इनमे से किसको आगे अध्ययन के लिये चुना जाये- यह एक बड़ा प्रश्न था? उन विषयों में से मुझे अपने स्वभाव, मानसिक जिज्ञासा के अनुकूल मनोविज्ञान ही लगा। मुझे लगा कि मैं एक बालयोगी की तरह अगम अनंत अगोचर आध्यात्मिक सत्ता को जानने का प्रयास कर रही हूं। यह विषय मुझे अगोचर का तो नहीं किंतु गोचर व्यवहारों का अध्ययन तो करा ही देगा। शिक्षा के सिद्धांत- ज्ञेय से अज्ञेय की ओर- के सिद्धांत का अनुकरण करते हुये मैंने तत्काल इस विषय को अध्ययन के लिये चुना। साथ में अंग्रेज़ी-साहित्य और इतिहास भी थे। हिंदी अनिवार्य रूप से विषय था। अब इस विषयावली ने मुझे आकार देना

प्रारंभ किया। हिंदी भाषा की पकड़ श्रीमदभगवद्गीता, श्री रामचरितमानस और कल्याण ने दी और विचारों को आवाज़ देना भी सिखाया। इतिहास ने इस संसार चक्र से अवगत कराया। यहां भी मुझे गीता का जीवन चक्र और श्रीकृष्ण का विराट रूप नज़र आया। शेक्सपीयर, बर्नाड शॉ तथा टेनन आदि अंगरेज़ी कवियों ने प्रकृति के पास ले जाकर उससे गुफ्तगू करने की आदत सी डाल दी। मेरे दिल में आज भी वह टीस वैसी की वैसी जिंदा है जो **ओड टू नाईटिंगेल** शीर्षक वाली कविता में थी। किसी प्रेमिका द्वारा मांगे जाने और उसके प्रेमी द्वारा चाहे गये सफेद गुलाब को लाल करने के लिये बुलबुल के दिल में चुभते कांटे की टीस आज तक मेरे दिल में उतनी ही सजीव है। फिर **राबर्ट फरॉस्ट** की वे पंक्तियां...

वूड्स आर लवली डार्क एंड डीप बट आई हैव प्रॉमिसेस टू कीप।
माईल्स टू गो बिफोर आई स्लीप एंड माईल्स टू गो बिफोर आई स्लीप।।

...मन में घर कर गयीं और फिर मनोविज्ञान! यह विषय मेरे लिए बिल्कुल नया था। किंतु इसकी प्रकृति मेरी जिज्ञासाओं का उत्तर देने में सक्षम सी लगती थी। हम कैसे और क्यों सोचते हैं? हमारे व्यवहार का कारण कहां और उद्गम कहां होता है, हम जो कहते हैं उसका वास्तविक अर्थ क्या होता है, स्वप्न क्यों आते हैं, उनका क्या अर्थ होता है, आदि-आदि ऐसे सवाल थे जिनका उत्तर मैं अर्से से खोज रही थी और जो मुझे मनोविज्ञान नामक विषय दे सकता था। इसलिये अगम, अज्ञेय अगोचर ईश्वर को छोड़ मैं गम्य, गोचर और वैज्ञानिक निरूपण वाले विषय- मनोविज्ञान की ओर मुड़ गयी। पूरी विषयावली ने मिलकर मुझे मेरे प्रश्नों को उनके उत्तरों सहित परिष्कृत करना प्रारंभ किया। फिर तो गाड़ी चल पड़ी। क्या-क्या और कैसे-कैसे सोचा- नहीं बताऊंगी लेकिन मानव मन को समझने, शारीरिक क्रियाओं और व्यवहारों का मूल कारण तथा मानव के अंदर चलने वाले अगोचर व्यवहार जो कि हमारे व्यवहार का 95 प्रतिशत होता है, को समझने और जान लेने की अंतर्दृष्टि सी विकसित हो गयी।

धीरे-धीरे इसका अभ्यास सा होता गया और फिर बैंक में सेवारत होने के दौरान जो प्रशिक्षण मुझे दिया गया, उसने मुझे तराशा, संवारा और परिष्कृत किया। मेरे वार्तालाप के दौरान ये उद्गार अक्सर निकल आते हैं कि मैं तो दुर्वासा थी, बैंक की ट्रेनिंग ने मुझे इंसान बना दिया। आज मैं जो कुछ हूँ, उस प्रशिक्षण और बैंक में अपने प्रशिक्षकों के परिश्रम का फल हूँ। कच्चे माल की तरह मेरा आड़ा-तिरछा, क्रोधी और अतार्किक मौलिक व्यक्तित्व मुझे जब याद आता है तो मैं यह सोचती हूँ कि यदि मैं बैंक की सेवा में न आयी होती तो मैं इंसान कैसे बन पाती? अमानुष ही न रह जाती! कितने बड़े लाभ से वंचित रह जाती! निस्संदेहः, इसमें मेरे पूर्व जन्म के संस्कारों का भी श्रेय रहा होगा। प्रशिक्षक और शिक्षक तो बादल की तरह होते हैं जो सारी भूमि पर एक समान बरसते हैं किंतु फसल वहीं लहलहाती है, जहां भूमि उपजाऊ होती है। मैं ऊपर वाले की आभारी हूं कि उसने

अपने उपादानों से, जिनमें बैंक भी शामिल है, मुझे ठीक उसी तरह संवारा और सजाया जैसे कुम्हार गीली मिट्टी के लोंदे को सुंदर रंग रंगीले घटक के रूप में प्रस्तुत कर देता है।

इस पुस्तक को लिखने की प्रेरणा, प्रोत्साहन देने तथा अपने मौलिक अनुभवों को साझा करने के लिये मैं श्री अरुण श्रीवास्तव का धन्यवाद ज्ञापित करती हूं। साथ ही, अपने पति श्री हेमंत शर्मा तथा दोनों बच्चों की भी आभारी हूं जिन्होंने वक्त - बेवक्त मेरी जिज्ञासाओं के उत्तर दिये तथा मुझे मार्गदर्शन दिया।

सविता

विषय-सूची

1.	मनोविज्ञान का अर्थ	17
2.	अचेतन मन का विज्ञान	27
3.	असामान्य मनोविज्ञान और सामान्य व्यक्ति	36
4.	अहं की तीन अवस्थायें	44
5.	व्यक्तित्व और व्यक्ति	58
6.	प्रत्यक्षीकरण, भ्रम और विभ्रम	82
7.	शब्दों का जादू	89
8.	संवेग और भाव	103
9.	सामाजिक अवस्थिति - प्रतिष्ठा और अपेक्षा	107
10.	हठ का मनोविज्ञान	116
11.	अध्यात्म और मनोविज्ञान	129
12.	भक्तियोग, ज्ञानयोग और राजयोग	134
13.	भारतीय संस्कृति और सेवा	138
14.	छवि निर्माण - अपेक्षा और वास्तविकता का संग्राम	146
15.	सामाजिक प्रोफाइल के अनुसार ग्राहकों का वर्गीकरण	152
16.	ग्राहक सेवा में करणीय और अकरणीय	160
17.	गलती का मनोविज्ञान	167
18.	बॉडी लैंग्वेज	174
19.	हैंडराईटिंग	184
20.	मैं और मेरा ग्राहक	199
21.	ग्राहक सेवा से संबंधित समितियां	203

1. मनोविज्ञान का अर्थ

1. **मनःविज्ञान** का संधि शब्द है **मनोविज्ञान।** अर्थात् **मन** का विज्ञान। **विज्ञान** का अर्थ स्पष्ट है- विधिवत रूप से, प्रक्रिया और प्रणालीबद्ध ज्ञान, जिसे प्रमाणित किया जा सके, मापा जा सके किंतु मनोविज्ञान शब्द में विज्ञान के बजाय **मन** शब्दांश ही अधिक विवेच्य और उलझाने वाला है।
2. मनोविज्ञान के शाब्दिक उच्चारण में एक प्रकार का खिंचाव इसलिये भी लगता है क्योंकि हम **मन** को एक रहस्यमय उपादान मानते आये हैं। हमारे ही मन को हम नहीं समझ पाते हैं। आज भी हम कहते हैं कि आज **मन** नहीं लग रहा- पता नहीं क्या कारण है? तो आपको क्या लगता है? **मन** क्या है? यह हमारी **आत्मा** है? यह हमारा **दिल** है या यह हमारा **दिमाग** है? कुछ भी तो पूर्ण रूप से सत्य नहीं लगता! कुछ-कुछ होता है तो वह मन ही में तो होता है और दिमाग उसके सही या गलत होने का तर्क निर्धारित नहीं कर पाता। तो हम क्या समझें कि **मन, दिल** है जिसे सही गलत से कुछ भी लेना देना नहीं होता। नहीं! यह भी सही नहीं लगता क्योंकि नैतिक मूल्यों और अनैतिकता की गवाही **दिल** ही तो देता है। इसका मतलब हमारा **दिल** ही हमारा **मन** है। हां, यहां एक बात और, कि यह दिल धड़कने वाला शारीरिक अवयव नहीं बल्कि मन का पर्याय है जो नैतिकता और अनैतिकता का अंतर तथा उससे संबंधित कार्यों की गवाही देता है. तो बात तो फिर वहीं अटकती है कि हमने मन को ही दिल माना है लेकिन यह धड़कने वाला दिल नहीं, शारीरिक अवयव वाला दिल नहीं जिसमें धमनियां और शिरायें शुद्ध-अशुद्ध रक्त लेकर दौड़ती रहती हैं। यह एक एहसास है जो हमारे व्यक्तित्व के अंदर से, हमारे स्व से, हमारे अंतस् से, हमारे अस्तित्व से, हमारे होने से जुड़ा है। यह स्थूल तो कतई नहीं है। व्याकरणीय भाषा में हम कहें तो यह भाववाचक संज्ञा है जिसे कर्मेंद्रियों से नहीं जाना जा सकता। केवल छठी इंद्रिय से जाना जा सकता है। अब यह न पूछियेगा कि छठी इंद्रिय क्या है। अरे! वही तो मन है। बात घूम फिरकर वहीं आ पहुंचती है कि मन अपने आप में

एक स्वायत्त अनुभव है, स्वायत्त इकाई है जिस पर शारीरिक प्रक्रियाओं या क्रियाओं का प्रभाव तो कुछ हद तक पड़ सकता है किंतु वे इस पर शासन और नियंत्रण नहीं कर सकती हैं। मन अपने मन का राजा होता है। यह कथन कहीं न कहीं, किसी न किसी तरीके से हमें अध्यात्म की ओर इशारा करता है।

3. यदि आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाये तो हमारा मन ही हमारे सही गलत कार्यों को देखता रहता है और हमें निर्णय भी देता रहता है। उस दृष्टि से मन हममें प्रकृति का वह अंश है जो परमात्मा ने अपने प्रतिनिधि के रूप में हमें दिया है। यदि हमारे शरीर से मन को निकाल दिया जाये तो हम जड़ अवस्था में आ जायेंगे। जड़ता पशुत्व के बराबर तो नहीं लेकिन काफी नज़दीक होती है। पशुओं में भी कुछ मात्रा में चेतना होती है। वे चल फिर सकते हैं, वे भी प्यार करते हैं, पसंद नापसंद करते हैं। इसलिये हम कह सकते हैं कि पशु जड़ नहीं चेतन होते हैं किंतु उनकी बुद्धि और चैतन्यता मनुष्यों की तुलना में कहीं कम होती है। जड़ उसे कहते हैं जो चल फिर न सकता हो। क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा में सभी अलग-अलग रूप से जड़ हैं। इन सबको मिलाकर प्रकृति एक आकृति, एक व्यवस्था या एक मशीन बनाती है जिसे हम शरीर कहते हैं। यह शरीर तो प्राणियों की मृत्यु के बाद भी दृश्य रहता है। क्या होता है जो कम हो जाता है तो इस शरीर को हम खुद ही नष्ट कर देते हैं? कहीं वही हमारा मन तो नहीं या फिर मन का पर्याय, जो हमें मृत से अलग करता है। हमारे होने का एहसास करता और करवाता है। जिसे साधु संत ईश्वर कहते हैं, परमात्मा का अंश कहते हैं, विज्ञान ऑक्सीज़न कहता है, सिस्टम कहता है, और योगीजन प्राण कहते हैं। योगियों की भाषा से कुछ सरलता हो सकती है इस मन को समझने में। हमारे विचार से मन हमारे पंचतत्व रचित शरीर में उस परमपिता द्वारा अपने अंश के रूप में प्रतिष्ठित किया गया प्राण है, जिसे यदि हमारे शरीर से निकाल दिया जाये तो हम निर्जीव हो जाते हैं। फिर कहां काम करता है हमारा मन। जब हम कॉमा की स्थिति में होते हैं तो कहां हमारा मन काम करता है। इसे रामायण की भाषा में कहते हैं, प्राण का शिथिल पड़ना। प्राण याने कि मन। यह बात तो कुछ कुछ तर्कसंगत लगने लगी कि प्राण ही मन है। इसलिये योग में जब प्राणायाम करते हैं तो हमारा मन प्रसन्न रहने लगता है, सब कुछ अपने बस में लगता है, प्राणायाम का अर्थ है- प्राण का 'आयाम' करना, प्राण का नियंत्रण करना अर्थात मन का नियंत्रण करना। तो अब तक की विवेचना हमें इस तथ्य तक पहुंचाती है कि हमारा प्राण ही मन है जो न रहे तो मन न रहे। इसलिये हम कह सकते हैं कि जीवितों का ही मन होता है मृतकों का नहीं। यह विवेचना ऊपर कहे गये आत्मा, दिल, अंतस, आस्तित्व, स्व इन सबसे भी जुड़कर अपने आप को स्पष्ट करती है। अंततः हम कह सकते हैं कि मन, प्राण ही है जो प्राणियों को ज़िंदा रखता है और मनोविज्ञान इस ज़िंदगी का, जीवित रहने का,

और जीवित रहने के दौरान क्रियायें-प्रतिक्रियायें करने का विज्ञान है। इनके अध्ययन का विज्ञान है। हम उन परिभाषाओं का जिक्र नहीं करेंगे जो विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अब तक दी हैं किंतु इतना ज़रूर बताना चाहेंगे कि उनमें से भी कईयों ने इसे आत्मा का विज्ञान, मन का विज्ञान तथा बाद में फिर वातावरण में प्राणियों के व्यवहार का विज्ञान माना था। जहां तक आत्मा का विज्ञान मानने की बात है- आत्मा का अर्थ भी समझ लें तो बेहतर है-

- कुछेक के अनुसार- चैतन्य विशिष्ट देह ही आत्मा है।
- कुछ लोग शरीर में ज्ञान की प्राप्ति के कारणभूत इंद्रियों, प्राण, मन, बुद्धि और अहंकार के समन्वय को आत्मा कहते हैं।
- कुछ लोग मानते हैं कि जहां भूख, प्राण, मन, गति, प्यास, पीड़ा आदि चिन्ह हैं, वहां आत्मा द्रव्य के रूप में विद्यमान रहता है।
- न्यायशास्त्र के अनुसार इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दुख, तथा ज्ञान ही आत्मा के चिन्ह हैं।
- सांख्यशास्त्र के अनुसार आत्मा एक अकर्ता, साक्षीभूत प्रसंग, तथा प्रकृति से भिन्न एक अतींद्रिय है।
- योगशास्त्र में भी इसे अतींद्रिय पुरुष कहा गया है। जिसमें क्लेश, कर्मविपाक और आशय होता है। इसी मत मे इसे कर्मों का कर्ता और फलों का भोक्ता माना जाता है।
- वेदांत के अनुसार इसे नित्य, बुद्ध, शुद्ध, स्वतंत्र, एवं ब्रह्म का अंश विशेष माना जाता है।
- बौद्ध मत के अनुसार यह अनिर्वचनीय शून्य पदार्थ है जिसके आदि और अंत का पता नहीं है।
- जैन लोग इसे अरूपी पदार्थ मानते हैं जो अपने कर्मों से बंधन और मोक्ष को प्राप्त होता है।
- आत्मा के भी कई स्वरूप माने गये हैं- जीवात्मा-(शरीर में), विश्वात्मा या शिवात्मा (जगत में), परमात्मा और निर्मलात्मा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आत्मा के ही बारे में विद्वज्जनों में मतैक्य नहीं है तो इसका ज्ञान जो कि बहुत ही प्रामाणिक, मापकीय और प्रक्रियाबद्ध होना अपेक्षित है, वह कैसे विज्ञान हो सकता है? तथापि जब आत्मा की बात चली है तो आपकी रुचि के लिये इतना भी बताते चलें कि अनासक्ति, भूतदया, सहनशक्ति, अनिच्छा, दया, शौच, अस्पृहा, सर्वज्ञता, नित्यतृप्तता, बोधरूपता तथा स्वतंत्रता- ये सभी आत्मा के गुण माने गये हैं। सत्‌चित, आनंद, ब्रह्म, स्वयंप्रकाश, कूटस्थ, साक्षी, द्रष्टा, और एक, तथा अनंत, अखंड, असंग, अद्वितीय, अजन्मा, निर्विकार, और अक्षर, ये आत्मा के विशेषण माने गये हैं।

जहां तक मन की परिभाषा की बात है, भारतीय अध्यात्मवादियों ने इसकी व्याख्या की है जो बहुत कुछ समझ में आती है। उनके अनुसार- **मन एक अप्रत्यक्ष द्रव्य माना गया है, संख्या, परिमाण, पृथक, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, संस्कार तथा प्राण इसके गुण माने गये हैं** और इसे अणु स्वरूप माना गया है। योग शास्त्र में इसे **चित्त** कहा गया है। बौद्ध इसे **छठी इंद्रिय** मानते हैं। महाभारत के अनुसार- धैर्य, उहापोह, भ्रांति, कल्पना, वैराग्य, रागद्वेषादि, क्षमा, स्मरण, और चंचलता इसके गुण माने गये हैं।

4. अब यदि इन गुणों या विशेषताओं का मिलान हम शरीर विज्ञान से करें तो इसमें से अधिकांश का संबंध हमारे मस्तिष्क से है और मस्तिष्क की भी वह रचना या स्थान अथवा केंद्र बिंदु, जिसका संबंध तार्किकता, कल्पनाशीलता तथा स्मरणशक्ति से है, शरीर विज्ञानियों द्वारा सेरेब्रल कॉरटेक्स कहलाती है। यह हमारे ललाट, जहां तिलक किया जाता है, से लेकर सिर के सबसे ऊंचे स्थान, जहां हमें अशीष मिलते हैं, सर पर हाथ रखा जाता है, वहां होता है।

5. यदि हम अपने भारतीय संस्कारों और परंपराओं पर भी एक नज़र डालें तो हम तिलक और राज्याभिषेक माथे पर ही करते हैं क्योंकि इसके अंदर ही हमारा मस्तिष्क अवस्थित होता है। रचयिता ने भी शीष को शरीर के शीर्षस्थल में अवस्थित किया है जो इस बात का प्रमाण है कि यही अवयव शरीर में सर्वाधिक आदरणीय और महत्वपूर्ण है। हम तिलक करके किसी व्यक्ति के शरीर का नहीं बल्कि उसके मस्तिष्क का आदर करते हैं। चिकित्सक भी मानते हैं कि **ब्रेन डेथ** हो जाने पर उस व्यक्ति को मृत माना जाता है तो क्या **मस्तिष्क** ही हमारा **मन** है? शायद हां, लेकिन ऐसा क्यों होता है कि जब हमारा मन नहीं लगता तो हृदय स्थल में कुछ-कुछ होता है? शायद ऐसा इसलिये क्योंकि हमारे मस्तिष्क द्वारा ही हमारी सारी शारीरिक क्रियायें, यहां तक कि रक्त संचरण भी प्रभावित होता है।

इसके बाद से इस पुस्तक में हम **मन** के पर्याय स्वरूप **मस्तिष्क** को ही लेकर आगे चलेंगे और बीच-बीच में जहां आवश्यक होगा, इस परिभाषकीय अध्याय के संदर्भ में मन को और अधिक स्पष्ट करते चलेंगे।

यह तो हुयी अब तक मन की बात। अब मन के बारे में हमें अध्ययन करना हो तो मस्तिष्क का अध्ययन ही काफी है जो शरीर विज्ञान हमें करवा देता है तो फिर मनोविज्ञान

की ज़रूरत क्यों पड़ी? वो इसलिये कि हमारा मस्तिष्क कोई भी प्रतिक्रिया बाहरी वातावरण व परिस्थितियों के प्रतिक्रिया स्वरूप ही करता है तो हमारा व्यवहार बाहरी वातावरण के प्रति हमारी प्रतिक्रिया ही तो होता है। इन्हीं व्यवहारों और प्रतिक्रियाओं का अध्ययन मनोविज्ञान है। यही मत अब तक जोरों पर है कि मनोविज्ञान किसी परिस्थिति या वातावरण विशेष में प्राणियों द्वारा किये जा रहे या किये जाने वाले **व्यवहार का विज्ञान है।**

ग्राहक मनोविज्ञान

ग्राहक शब्द का तात्पर्य- ग्राहक का सामान्य अर्थ है 'ग्रहण करने वाला' अर्थात् हमसे ग्रहण कर रहा है वह हमारा ग्राहक होगा। किंतु यह तो सामान्य अर्थ में है। बैंकिंग वातावरण में 'ग्राहक' वह है जिसका हमारे साथ किसी प्रकार का बैंकिंग सुविधा का लेनदेन हो। बैंकिंग क्षेत्र में 'ग्राहक' मूलभूत इकाई है। कारोबार की हर प्रक्रिया, योजना या विचार ग्राहक से शुरु होकर ग्राहक तक आता है। बीच में जितनी भी प्रक्रियायें, प्रणालियां, उपकरण या नियम चलते हैं, सब ग्राहक को ही ध्यान में रखकर बनाये जाते हैं। यदि हमारी ग्राहक सेवा का परिणाम 'ग्राहक संतुष्टि' और 'ग्राहक आह्लाद' नहीं होता है तो हमारे सारे काम, सारी प्रक्रियायें और प्रणालियां बेकार हैं।

सामान्य कारोबार में उत्पादों का विक्रय किया जाता है जो मूर्त होते हैं, जिनका भौतिक स्वरूप होता है, उनके गुण और उपयोगितायें स्पष्टतया मापी जा सकती हैं किंतु सेवा क्षेत्र में सेवाओं का कारोबार होता है। सेवायें अमूर्त होती हैं। उनकी उपयोगिता प्रत्येक ग्राहक के प्रत्यक्षीकरण व विश्लेषण तथा उस सेवा के प्रति उनके दृष्टिकोण पर निर्भर करती है।

साधारणतया हम यही समझते हैं कि हम जिस सीट पर बैठे हैं, उस सीट का काम ग्राहक को कर दें तो वही हमारे काम या दायित्व की इतिश्री है। किंतु ऐसा नहीं है। हम ग्राहक सेवा को अपनी सप्लाई चेन या सप्लाई मैनेजमेंट अथवा सप्लाई रिसोर्सेज़ से नहीं देख सकते। वस्तुतः ग्राहक सेवा की उत्कृष्टता की कोई परिभाषा नहीं दी जा सकती। सच पूछिये तो **यह ग्राहक की अपेक्षाओं और बैंकर द्वारा दी जा रही सेवाओं का ग्राहक द्वारा उसके अनुभव के आधार पर किये गये मूल्यांकन का अंतर ही है।** उदाहरण के लिये यदि हम यह कहें कि हम तीन मिनट में ड्राफ्ट बनाकर दे देते हैं तो यह हमारी उच्चकोटि की सेवा गुणवत्ता है किंतु यह तो हमारा- यानि बैंकर का नज़रिया हुआ। यदि ग्राहक की यह अपेक्षा है कि उक्त ड्राफ्ट उसे मात्र दो सेकेंड में ए टी एम से बनकर मिल जाये और हम उसे तीन मिनट में देते हैं तो ग्राहक के दृष्टिकोण से हमारी ग्राहक सेवा औसत से भी नीचे रेट की जायेगी। इसलिये बहुत ज़रूरी है कि ग्राहक की सोच क्या है, उसके हिसाब से काम किया जाये। उसके मन में, उसकी अपेक्षाओं को मापा जाये, थाह ली जाये और **जिन खोजा तिन पाईयां, गहरे पानी पैठ...**

बैंक का अर्थ ही है विश्वास करना। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से अर्थ ही है जो सारी व्यवस्था और जन सामान्य को चलायमान रखता है। अपनी गाढ़ी कमाई से प्राप्त हुये अर्थ की व्यवस्था दूसरे के हाथ में सौंप देने के लिये विश्वास की ज़रूरत है। हम यों ही किसी पर पैसे के मामले में भरोसा नहीं कर सकते। उसके लिये ज़रूरी है कि हमारे ग्राहक को हमारी नीयत, हमारी व्यवस्था और हमारी प्रणाली पर भरोसा हो। ग्राहक का हम पर भरोसा निम्नलिखित कारणों से बनेगा -

1. कोर सर्विस या सेवा उत्पाद	1. Core service/service product
2. सेवा प्रदाता मानवीय तत्व	2. Human element of service delivery
3. सेवा सुपुर्दगी की सुव्यवस्था	3. Systematization of service-delivery- nonhuman element
4. सेवा के मूर्त तत्व-	4. Tangibles of service-
5. सामाजिक उत्तरदायित्व	5. Social responsibility
6. निरंतरता	6. Consistency
7. पूर्वानुमानता	7. Predictability

कोर सेवा का संबंध बैंक के मूलभूत परिचालनों से है जैसे - वित्तीय संव्यवहार, उनकी विश्वसनीयता तथा सुरक्षा। मानवीय तत्व सेवाओं के वैयक्तिकरण अर्थात् personalization से संबंधित है। जो स्टाफ ग्राहक को सेवा दे रहा है, वह कैसा है, इससे संबंधित है यह तत्व। तीसरा महत्वपूर्ण तत्व सेवा सुपुर्दगी की व्यवस्था या सुव्यवस्थित सेवा प्रक्रिया से संबंधित है और यह तत्व गैर-मानवीय है अर्थात् इसमें बैंक ऑफिस प्रक्रियायें, सेवा प्रदान करने में लगाया गया समय तथा रिकार्ड का सुव्यवस्थित रखरखाव हैं। सेवा के मूर्त तत्व से तात्पर्य है मूलभूत संरचनायें, सुविधायें- जिसे इन्फ्रास्ट्रक्चर कहते हैं और अंत में, जो सेवा हम प्रदान कर रहे हैं, वह हमारे समाज के लिये कितनी ज़रूरी है, कितनी उपयोगी है- यह सबसे महत्वपूर्ण बात है। हालांकि इसका सीधा सबंध ग्राहक सेवा से या ग्राहक से नहीं है, किंतु बाकी सारे तत्व प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इससे संबंधित हैं। यह सामाजिक उत्तरदायित्व है। मानव समाज के प्रत्येक नागरिक का यह सामाजिक, नैतिक दायित्व है कि वह समाज, मानव जाति तथा देश के उत्थान के लिये लाभप्रद तरीके से जीवनयापन करे। इसके लिये उसे समाज के उत्कृष्ट लोगों, उत्कृष्ट कंपनियों से जुड़ना पड़ता है।

ग्राहक हमेशा अच्छे ब्रांड के साथ जुड़ना चाहता है। अच्छे नाम व प्रसिद्धि वाली

कंपनियों के उत्पाद खरीदना चाहता है। बैंक के मामले में वह ऐसे बैंक के साथ बैंकिंग करना चाहता है जिसकी छवि जनता में अच्छी हो। बड़ा बैंक, तकनीकी बैंक, अच्छा बैंक, सरकारी बैंक, जनता का बैंक आदि कुछ ऐसे विशेषण हैं जो भारतीय समाज के आम ग्राहक द्वारा बैंकों को दिये जाते हैं। यह सारे विशेषण भरोसे के फलस्वरूप ही सृजित हो पाते हैं। ग्राहक के मानसपटल पर हमारे ब्रांड की छवि और विश्वसनीयता निम्नलिखित से मज़बूत होती जाती है-

1. **आश्वासन- Assurance**- अर्थात् हम ग्राहक को कितना आश्वस्त कर पाते हैं अपनी सेवाओं और संबल के बारे में। हम ग्राहक को कितना विश्वास दिला पाते हैं अपनी समस्या सुलझाने की क्षमताओं में। उनकी शिकायत निवारण हेतु अपनी नीति के बारे में। दूसरा आश्वासन ग्राहक की सत्ता को स्वीकारने तथा उन्हें स्वयं से ऊपर व्यवहारने का है, यदि हम दे पायें तो। राजा-रानी की कहानी में राजा की सत्ता सर्वोपरि होती है। इसलिये राजा का चरित्र सबको लुभाता भी है और यदि विकल्प दे दिया जाये किसी को भी नाटक में काम करने का, तो हर कोई राजा का ही रोल करना चाहेगा। क्यों? क्योंकि उसमें ऐश्वर्य है। ऐश्वर्य की लिप्सा सभी को होती है। जैसे-जैसे ग्राहक को अपने राजा होने का एहसास बैंक में आने पर होता जायेगा वह आपसे और अधिक जुड़ता जायेगा। उनका जुड़ाव आपसे, आपकी संस्था से होता जायेगा। उसका एक अनाम रिश्ता आपसे बनता जायेगा। यही है **रिलेशनशिप बैंकिंग**। एक बार नाता रिश्ता बन गया तो फिर कोई भी शक्ति चाहे कितना ही क्यों न लुभाये- आपका ग्राहक कहीं नहीं जायेगा।
2. **भौतिक पहलू- Physical aspects**- अर्थात् बैंक शाखा का वातावरण, जिसे भौतिक वातावरण या ambiance भी कहते हैं। हम जिस जगह को पसंद नहीं करते वहां एक पल भी ठहरना नहीं चाहते। दोबारा जाना तो दूर, एक बार ही चले जायें तो खुद पर कोफ्त होने लगती है। आराम की भावना और जीवों की तुलना में मनुष्य जाति में अधिक है। सौन्दर्य प्रेम तो प्रकृति से पाया ही केवल मनुष्य ने है। बैंक शाखा में मनुष्य की सौन्दर्य व आराम की भूख भी शांत करने वाला वातावरण होना अपेक्षित है। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि शाखा परिसर में आने पर ग्राहक को ऐसा लगे कि वह ऐसे लोगों के बीच आ गया है जहां वह सर्वोपरि है, सर्वश्रेष्ठ है। बैंक का स्टाफ उसके लिये काम करने को तैयार है और अपना काम उसे खुद नहीं करना पड़ेगा। इस एहसास के लिये ग्राहक कोई भी कीमत देने को तैयार हो जायेगा। इसी ambiance का एक और पहलू है- त्यौहारों पर शाखाओं में प्रकाश सज्जा या पुष्प सज्जा करना। यह सभी त्यौहारों में होनी चाहिये। इससे हम बैंकर ग्राहकों के सुख और खुशी के लम्हों के साथी बनेंगे और हर वह वस्तु जो हमारे सुख और खुशी से जुड़ी होती है, हमें प्रिय होती है। ग्राहकों को भी अच्छा

लगेगा। यदि थोड़ा और आगे बढ़ें तो त्यौहारों को मनाया भी जाना चाहिये। नव वर्ष, क्रिसमस, दशहरा, होली, दीपावली, ईद, गुरुपर्व आदि त्यौहार धूमधाम से मनाये जा सकते हैं जिसमें सभी ग्राहकों को आमंत्रित किया जाये तो बेहतर होगा। इसके अलावा भौतिक सज्जा में ही आयेंगे- संप्रेषण कौशल, उपकरण, अन्य सुविधायें जैसे पानी, प्रसाधन, परिवेश का खुशगवार होना, मुस्कुराहट बिखेरते चेहरे, साफ-सुथरा, शांत किंतु सजीव वातावरण आदि।

3. **विश्वसनीयता- Reliability- विश्वसनीयता** से तात्पर्य है कि ग्राहक हमारे वादों पर विश्वास करें, हमारे उत्पाद की गुणवत्ता पर विश्वास करें तथा यह विश्वास करें कि हम जो कहते हैं, वही करते भी हैं। वे हम पर अपने भले के लिये, सेवा गुणवत्ता, हमारी कार्यप्रणाली के दोषमुक्त होने के लिये, समस्या समाधान की नीति और प्रयासों की ईमानदारी पर भरोसा कर सकें। इसके लिये हमें रिस्पॉन्सिव होना पड़ेगा।
4. **अनुक्रियाशीलता- Responsiveness**- अनुक्रियाशीलता से तात्पर्य है कि हमें ग्राहक सेवा देने के लिये ज़िम्मेदार, उत्सुक और इच्छुक रहना पड़ेगा और दिखना पड़ेगा। यह हमारी ग्राहक सेवा के दौरान ग्राहकों पर ध्यान देने, त्वरित ग्राहक सेवा प्रदान करने, सजग रहने, खुद नयी-नयी सूचनाओं से अद्यतन रहने, उनके अनुरोध पर त्वरित कार्यवाही करने, उनकी शिकायतों और समस्याओं के निस्तारण करने में परिलक्षित होता है।
5. **समानुभूति- Empathy**- समानुभूति का अर्थ है समान+अनुभूति। अर्थात् ग्राहक की जगह खुद को रखकर देखना। जो एहसास काउंटर पार खड़े ग्राहक को हो रहा है, उसे महसूस करना और फिर निष्पक्ष भाव से उसका विश्लेषण करना कि आपकी ग्राहक सेवा कितनी अच्छी या बुरी है। यह भी सोचना, कि आपको कैसा लगेगा जब आपके साथ यही व्यवहार किया जायेगा जो आप सामने खड़े ग्राहक के साथ कर रहे हैं।

ग्राहक को अपनी सेवाओं के बारे में निम्नलिखित तरीकों से आश्वस्त बनाया जा सकता है-

1. **मानव संसाधन का उन्नयन**- प्रशिक्षण तथा कौशल विकास के द्वारा उनकी कार्यक्षमता को बढ़ाकर प्रेरणा व प्रोत्साहन देकर। इससे खर्च तो बढ़ेगा किंतु खर्च कर लेना बेहतर है बजाय किसी ग्राहक को सदा खो देने के। एक ग्राहक खोने का अर्थ है बैंक की कार्यप्रणाली के प्रति नकारात्मक नज़रिया, जो अन्य ग्राहकों को भी प्रभावित कर सकता है।
2. **सिस्टम मेन्टेनेंस**- जिस तरह मां बच्चे की कोमल और सुरक्षित देखभाल करती है, वैसे ही हमे अपने सिस्टम की देखभाल करनी होगी क्योंकि सेवा प्रदान करने का आधार ही वही है। बैंकों को अब अस्पताल जैसे वातावरण में काम करना होगा जहां हर समय इमरजेंसी की तैयारी रहती है। जब यह

मुस्तैदी हमारी तकनीकी टीम में दिखेगी तो काम करने वाले स्टाफ का भी हौसला बुलंद रहेगा।

3. **ब्रांड बिल्डिंग-** जिस तरह से कुछ कंपनियों के उत्पाद उनके नाम से ही बिक जाते हैं, उसी तरह बैंकों को भी अपने ब्रांड की छवि को निरंतर मज़बूत करते रहना चाहिये। खासकर तकनीक व प्रौद्योगिकी के मामले में।

जहां तक मनोविज्ञान का प्रश्न है, कोई भी ग्राहक उसी उत्पाद को खरीदना चाहेगा जो उसके लिये लाभप्रद होगा- (कोर उत्पाद), जो उसे आदर और प्यार से दिया जायेगा- (मानवीय तत्व), उसे बिना हीले-हवाले, सुव्यवस्थित तरीके से सरलतापूर्वक प्रदान किया जायेगा- (सुव्यवस्था), ग्राहक जिसे उच्च तकनीक और बेहतर मूलभूत सुविधाओं से युक्त पायेगा तथा जो अंततः उसके लिये, परिवार के लिये और पूरे समाज व देश की अर्थव्यवस्था के लिये उपयोगी होगा। **सोशल रिस्पांसिबिलिटी** का बहुत बड़ा हाथ है ग्राहक मनोविज्ञान में। मनोवैज्ञानिक रूप से हम उसी वस्तु, स्थान या समय अथवा तरीके को पसंद करते हैं, जिसे हमारा समाज मान्यता देता है क्योंकि कहीं न कहीं प्रत्येक ग्राहक में सुपर ईगो तो अपना प्रभाव बनाये रखता ही है। हम लाख चाहें, **इड या ईगो** से हम लाख संचालित होते हों किंतु **सुपर ईगो** अथवा **चाहिये शास्त्र** को हम छोड़ ही नहीं सकते। यह तीनों मानसिक अवस्थायें हमारे **चेतन अवचेतन या अचेतन मन** में कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में क्रियाशील रहती ही हैं और अपना कार्य करती रहती हैं। कोई भी व्यक्ति या ग्राहक इनसे अछूता नहीं रह सकता। मान लिया कि यदि कोई सेवा या उत्पाद बहुत ही लाभप्रद है, उसमें अधिक वित्तीय लाभ मिलने वाला है किंतु उक्त योजना या स्कीम को समाज उपयोगी नहीं मानता, जैसे कि न्यूक्लियर बम बनाने वाली कंपनी के शेयरों में पैसा लगाना, तो कोई ग्राहक उसमें निवेश नहीं करना चाहेगा क्योंकि इस कंपनी के शेयरों में निवेश करके वह समाज में किसी को बता नहीं सकेगा और बतायेगा तो सम्मान नहीं पायेगा। यही सामाजिक उत्तरदायित्व है - समाज के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह समाज में अच्छे कार्यों को बढ़ावा दे और उन्हीं में संलिप्त रहे। इसी सामाजिक उत्तरदायित्व को जब कंपनियां या कॉरपोरेट्स वहन करते हैं तो इसे **कॉरपोरेट सोशल रिस्पांसिबिलिटी** कहते हैं।

हर ग्राहक को हमें यह भी एहसास दिलाना चाहिये कि वह हमारे लिये खास है। आप इसे खुद पर लागू करके देखें। आप किसी होटल में जाते हैं और खाने का ऑर्डर देते हैं। होटल का रिसेप्शन आपको जिस टेबल पर बिठाता है उसका एक खास नाम है और उस टेबल के बिल के लिये या तो कुछ खास छूट है या खाने में कुछ एक्सट्रा है। अब यदि आपको उस टेबल का ग्रुप नाम या नामकरण मिल जाता है तो चाहे आपका आर्डर सर्व होने में थोड़े देर भी होगी तो आप झल्लायेंगे नहीं क्योंकि देर के बावज़ूद आपको एक अच्छा सा नाम मिला है। याद रखिये यह नाम किसी सेलिब्रिटी का हो सकता है, किसी

अच्छी जीवन दशा का हो सकता है या खुशनुमा बहार का हो सकता है। दूसरा फायदा आपको यह हो रहा होगा कि आपको कुछ छूट या कुछ एक्स्ट्रा मिल रहा है। अब इस पूरी प्रक्रिया में दो प्रेरक हैं- पहला तो नाम का एहसास, खास होने का एहसास और दूसरा वित्तीय फायदा मिलने का एहसास। हम अपने ग्राहकों को दोनों प्रेरक दे सकते हैं या कोई एक भी दे सकते हैं। यकीन मानिये- शिकायतों में पर्याप्त कमी आयेगी, संतुष्टि का स्तर बढ़ेगा, इन बिंदुओं पर भी बैंकों को विचार करने की ज़रूरत है।

ग्राहक की ज़रूरतें निम्नलिखित होती हैं-

1. समस्याओं का निस्तारण
2. सक्रिय प्रयास
3. पावती और परस्पर समझ
4. विकल्प और विविधता
5. सुखद आश्चर्य
6. निरंतर अनुकूल सामंजस्य, विश्वसनीयता और पूर्व सूचनीय व्यवहार/संस्कृति
7. मूल्य (आवश्यक नहीं कि वह वित्तीय ही हो)
8. तार्किक सरलता
9. गति
10. गोपनीयता
11. महत्वपूर्ण होने का एहसास

ग्राहक की सामाजिक, आर्थिक, वैयक्तिक और बैंकिंग आवश्यकताओं की पूर्ति तभी की जा सकती है जब हम उन आवश्यकताओं के कारणों और उनकी तह तक पहुंच सकें। यही ग्राहक मनोविज्ञान है। ग्राहक के व्यवहार को समझना, उसके व्यवहार और क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं की समझ ही **ग्राहक मनोविज्ञान है।** इसमें ग्राहक का संप्रेषण, उसका वक्तव्य, हस्तलिपि, संवेग, प्रत्यक्षीकरण, बॉडी लैंग्वेज आदि सभी शामिल होते हैं।

2. अचेतन मन का विज्ञान

मनोविज्ञान के अनुसार मन के दो क्षेत्र होते हैं- (1) चेतन मन (2) अचेतन मन। कुछ मनोवैज्ञानिक अवचेतन मन सहित तीन क्षेत्रों की अवस्थिति प्रतिपादित करते हैं। चेतन, अचेतन और अवचेतन। सिद्धांत चाहे दो माने जायें या तीन- चेतन मन को सभी ने एक मत से स्वीकार किया है। वह मन - जिसे हम महसूस कर सकते हैं, जो हमारे व्यक्तित्व को प्रत्यक्षतः प्रभावित करता है, जिसके अच्छा होने या न होने को हम जान सकते हैं, जिससे हम ऐच्छिक क्रियायें और प्रतिक्रियायें करते हैं, वह चेतन मन कहलाता है। इसे निर्विवाद रूप से सभी मनोवैज्ञानिक मानते हैं लेकिन मन का वह क्षेत्र भी अत्यंत महत्वपूर्ण है जिसे हम महसूस नहीं कर पाते, जिसे हम जान ही नहीं पाते। वह अचेतन मन है। सरल शब्दों में मानव मन की तुलना एक विशालकाय वटवृक्ष से की जा सकती है।

इस वटवृक्ष का हरा-भरा भाग, जो डालियों पत्तों से युक्त है, वह मानव का चेतन मन है और जमीन के अंदर ही अंदर दूर-दूर तक फैली हुयी सशक्त भूमिगत जड़ें, जो पूरे वृक्ष को खड़ा रखने में सक्षम बनाती हैं, वे जड़ें अचेतन मन हैं और इस वटवृक्ष की हवाई जड़ें, जो निकलती तो वृक्ष के शिरोभाग (चेतन मन) से हैं किंतु कालक्रम के साथ ये जमीन तक पहुंचकर भूमिगत जड़ों का रूप ले लेती हैं, वे अवचेतन मन की तरह हैं।

'फ्रायड' असामान्य मनोविज्ञान के जनक कहे जाते हैं। उनके अनुसार व्यक्ति के व्यक्तित्व को यदि प्रतिशत में विभाजित किया जाये तो केवल 5 प्रतिशत भाग ही चेतन मन के द्वारा निर्देशित और संचालित होता है जबकि शेष 95 प्रतिशत व्यक्तित्व अवचेतन और अचेतन मन के द्वारा नियंत्रित, मार्गदर्शित और क्रियाशील होता है जिसे हम समझ ही नहीं पाते और कहते हैं- जाने क्यों- जाने क्यों? बहुत से प्रश्न अनायास ही हम दोहराते रहते हैं लेकिन कारण नहीं जान पाते। एक बार यदि बीमारी पहचान ली जाये तो इलाज

तो संभव हो ही जाता है। ग्राहक का व्यवहार और वैयक्तिक भिन्नताओं का कारण क्या है, उसके प्रत्यक्ष व्यवहार के परोक्ष कारण क्या हैं, यह जानने के बाद हम अपनी क्रियाओं को तदनुसार निर्देशित कर सकते हैं। इस अध्याय में इसी दिशा में प्रयास किये जायेंगे।

चेतन मन- चेतन मन मनुष्य मन का वह भाग है जिसे आम तौर पर प्रत्यक्षतः मन के रूप में जाना जाता है, जो हमारे चैतन्य स्वरूप का कारण है। हम उस मन के निर्देशानुसार ही सजग रहकर और निर्देशित होते हुये क्रियाशील होते हैं। उदाहरण के लिये कहीं जाना, चलना-फिरना, समस्याओं पर तार्किक विचार करना, योजना बनाना। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि यह हमारे व्यक्तित्व का सतर्कता कक्ष है। इस मन में तार्किक शक्ति का आधिक्य होता है और यह सारी क्रियायें सायास करता है। कोई भी कार्य या क्रिया इस मन के द्वारा अनायास ही नहीं हो जाती। यह हमारी ऐच्छिक क्रियाओं का कारण है। साथ ही हमारे अवचेतन तथा अचेतन मन में जाने वाले विचारों का द्वारपाल भी है। निर्णय लेने की अद्भुत शक्ति है इस मन में। यह चेतन मन ही तय करता है कि हमारे अवचेतन और अचेतन मन में कौन से विचार जाने हैं और कौन से अस्वीकार किये जाने हैं? हम जिस वस्तु या विचार के बारें में ईमानदारी से सोचते हैं, वे ही विचार बारबार दोहराने, उन पर आस्थापूर्वक विश्वास करने से वे हमारे अवचेतन मन में मशीनीकृत हो जाते हैं तथा बारंबारता बढ़ने से हमारे अचेतन मन की तहों में जाकर समाहित हो जाते हैं (जैसे टाईपिंग, कार ड्राइविंग और तैराकी आदि)। एक बार अचेतन मन में बैठ जाने पर वे हमारे व्यक्तित्व तथा शारीरिक क्रियाओं और उपलब्धियों को नियंत्रित करने लगते हैं और वह भी बिना हमारे चाहे, इसलिये यह बहुत ज़रूरी है कि हम अपने चेतन मन में आने वाले विचारों पर कड़ा पहरा रखें। हमारा चेतन मन जैसे विचारों को हमारे अवचेतन और तदंतर अचेतन मन में भेजेगा, वैसे ही परिणाम हमें प्राप्त होंगे। **गारबेज इन गारबेज आउट।** शायद इसीलिये भारतीय अध्यात्म में सदा इस बात पर बल दिया जाता रहा है कि अच्छा सोचो, अच्छा देखो और अच्छा सुनो ताकि न बुराई देखो, सुनो और कहो और न ही आंतरिक व्यक्तित्व बुरा बने।

हमारा चेतन मन, अचेतन और अवचेतन- दोनों की रिप्रोग्रामिंग करने की क्षमता रखता है। यह रिप्रोग्रामिंग अधिकांशतः दोहराव की प्रक्रिया से होती है। शायद इसी सिद्धांत के आधार पर पहले के ज़माने में प्राथमिक स्कूलों में रोज़ाना पहाड़े दोहरवाये जाते थे। रोज़ाना दोहराने-गाने से बच्चों को अचेतनतया भी बड़े-बड़े गुणनफल निकालने में आसानी होती थी। यह तो पिछले ज़माने की बात थी। आज़ भी हम यह देख सकते हैं कि एक बार गाड़ी चलाना सीखने के बाद हम अचेतनतया उस राह पर बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के ड्राईविंग कर लेते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि चेतन रूप से सायास किये गये कार्यों को बार-बार सायास दोहराये जाने से वे हमारे अवचेतन तथा अचेतन मन में मशीनीकृत हो जाते हैं तथा अनैच्छिक क्रियाओं के रूप में संचालित होने लगते हैं।

ग्राहकों के साथ यदि हम सजग रहकर विनीत, शिष्ट और शालीन व्यवहार करें तो बार-बार ऐसा करने से हमारा अचेतन मन इसका आदी हो जाता है और हम अंतरतम् से अर्थात् अचेतन रूप से भी ग्राहकोन्मुखी व्यवहार करने लगते हैं। हमें इसके लिये अपने उग्र स्वभाव के विरुद्ध कृत्रिम व्यवहार नहीं करना पड़ता। स्पष्ट है कि यदि हम ग्राहकों से शालीन और शिष्ट व्यवहार करना चाहते हैं तो हमें इसके लिये ईमानदारी से प्रयास करने पड़ेंगे और अपने चेतन मन को बार-बार निर्देश देने पड़ेंगे। यदि हम ग्राहक की किसी बात या व्यवहार से चिढ़ते भी हैं तो हमें स्वयं को इसके लिये तैयार करना पड़ेगा कि हम अपनी इस आदत को बदलें। हमें अपने अंदर की तहों से ग्राहक का भला चाहना होगा। ग्राहक को प्यार करना होगा। उसकी सुख सुविधाओं और बैंकिंग आवश्यकताओं का ध्यान रखना होगा। जब हम कुछ दिन तक सायास इस कार्य को करेंगे तो हमारा अवचेतन तथा अचेतन मन इसके लिये मशीनीकृत हो जायेगा और फिर हमारा व्यवहार सचमुच ग्राहकोन्मुखी हो जायेगा। हमारा आंतरिक व्यक्तित्व ही बदल जायेगा। हम सचमुच सेवक, सहायक, संरक्षक और मार्गदर्शक की भूमिका का निर्वाह करने लगेंगे। इसके लिये हमें कार्यालयीन संस्कृति और आवश्यकता को दरकिनार करके सबसे पहले अपने व्यक्तित्व के परिवर्तन और विकास की क्रिया को प्रारंभ करना होगा। जब हम अंदर से बदलेंगे, हममें सकारात्मक परिवर्तन होंगे तो हमारा संपूर्ण बाह्य व्यक्तित्व और व्यवहार भी बदल जायेगा। संक्षेप में, हमें पहले खुद को अच्छा बनाना होगा तभी हम अच्छी ग्राहक सेवा प्रदान कर सकेंगे। वैसे भी, यह तो स्थापित तथ्य है कि जो चीज़ हमारे पास नहीं होती, उसको हम किसी दूसरे को दे भी नहीं सकते। जब हम खुद ही अच्छे नहीं हैं तो दूसरों को अच्छी बैंकिंग या अच्छी ग्राहक सेवा कैसे दे सकते हैं?

अवचेतन मन- यह चेतन और अचेतन मन के बीच का क्षेत्र है। इसे अर्धचेतन भी कहा जा सकता है। चेतन मन के द्वारा हम वे काम करते हैं जो हमें समाज अनुमत करता है। ये कार्य सामाजिक दायरों, नियमों, प्रावधानों तथा परंपराओं के अनुकूल होते हैं किंतु जो इच्छायें समाज द्वारा स्वीकार्य नहीं होतीं, उन्हें हम दबा देते हैं परंतु यह कभी नहीं सोचते कि इन इच्छाओं को हम कहां दबाते हैं? ये अचेतन मन में चली जाती हैं। ये अचेतन मन मे चली तो जाती हैं किंतु मरती कभी नहीं। कोई भी इच्छा बिना पूर्ण हुये नहीं मर सकती। वह किसी न किसी रूप में पूरी ज़रूर होती है। चाहे छद्म वेश में ही क्यों न हो? जिन इच्छाओं को चेतन मन असामाजिक मानता है और अचेतन मन में दबा दी जाती हैं, वे ही नींद में या बेहोशी में, जब चेतन मन का सेंसर कमजोर हो जाता है, तो छद्म वेश में पूरी होती हैं। यही 'अवचेतन' या 'अर्धचेतन' मन है। यह न तो पूरी तरह से चेतन है, न ही पूरी तरह से अचेतन। स्वप्न अचेतन मन की उपज होते हैं किंतु अवचेतन मन में क्रियाशील होते हैं वह भी छद्म रूप में, इसीलिये स्वप्न में दृश्य-श्रव्य अनुभूतियों का प्रधान्य रहता है क्योंकि अचेतन मन में इनका अभाव है। जागना, हल्की याद्दाश्त, अस्पष्ट संदेश, स्वप्न, उनींदापन, सम्मोहन आदि अवचेतन मन

की क्रियायें हैं। हालांकि स्वप्न, नींद में चलना, नींद, कॉमा आदि अचेतन मन से संबंधित लग सकते हैं किंतु ये अचेतन मन के नहीं है बल्कि अचेतनता का लक्षण मात्र हैं।

अवचेतन मन निम्नलिखित पांच प्रकार से कार्य करता है-

1. यह हमारे शरीर का हितैषी है और शारीरिक स्वास्थ्य का ध्यान रखता है। शरीर में होने वाली उपचारात्मक क्रियायें, जो बिना हमारे चेतन प्रयासों के होती हैं, उन सबका कारण यही अवेतन मन है। यह शरीर की किसी भी बीमारी का इलाज कर सकता है। शरीर विज्ञान या अन्य सभी चिकित्सकीय पद्धतियों का मूल यही है।
2. यह हमें व हमारे प्रियजनों को आपात स्थितियों तथा खतरों से आगाह करता तथा बचाता है।
3. यह हमारे सभी पुराने अनुभवों का भंडार घर है।
4. इसमें अद्भुत चुंबकीय शक्ति है जो इसके विश्वासों और आस्थाओं से मिलते-जुलते विचारों को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है।
5. यह रडार की तरह कार्य करता है। यह अचेतन मन से संदेश व संकेत प्राप्त करता तथा वहां इनका प्रेषण भी करता है।

अचेतन मन- अचेतन मन, मानव मन का वह भाग है जिसके बारे में आम तौर पर होने का विचार ही लोगों के मन में नहीं आता। जबकि सच्चाई यह है कि हमारी क्रियाओं का 95 प्रतिशत मूल हमारे अचेतन मन की उपज होता है। हम केवल 5 प्रतिशत का इलाज करते रहते हैं और 95 प्रतिशत को छोड़कर बैठे रहते हैं तो परिणाम अनुकूल कहां से होंगें? पारिभाषिक तौर पर अचेतन मन को निम्नानुसार पारिभाषित किया जा सकता है-

"अचेतन मन, मन का वह भाग है, जो व्यक्ति के मन में उठने वाले विचारों/ घटनाओं को उक्त व्यक्ति के आभास के बिना स्वयं में सहेज कर रखता है तथा अनायास ही उनका विभिन्न अवसरों पर प्राकट्य कर देता है। सहेजी जाने वाली घटनाओं में अचेतन अनुभव, अचेतन कौशल, अनायास ही प्राप्त किये गये प्रत्यक्षीकरण, अचेतन विचार, आदतें, स्वचालित प्रतिक्रियायें, हीन भावनायें, छुपे हुये फोबिया तथा दबी-छुपी हुयी इच्छायें, अप्रिय अनुभव, समाज द्वारा अमान्य इच्छायें हो सकती हैं।"

अचेतन मन को स्वप्नों तथा स्वचालित विचारों का उद्गम स्रोत माना जाता है। ये विचार वे होते हैं जो बिना किसी कारण के उत्पन्न होते हैं। साथ ही, इसी भाग में वे संस्मरण भी रहते हैं जो समय के साथ भूल चुके होते हैं किंतु कभी बाद में अनायास ही बैठे-बैठे याद आ जाते हैं। अचेतन मन को ज्ञान का अथाह भंडार भी कहा जा सकता है क्योंकि हमने जो कुछ भी जीवन में आज पर्यंत सीखा है, वह अचेतनतया संपूर्ण कौशल के साथ करते रहते हैं बिना अतिरिक्त प्रयास के। चलना, खाना आदि ऐसी ही क्रियायें हैं। यह अचेतन मन का ही प्रताप और प्रभाव होता है कि हम कभी-कभी किसी समस्या

विशेष का समाधान बहुत प्रयास करने के बाद भी नहीं ढूंढ पाते और वह बैठे-बैठे ही अचानक याद आ जाता है। यह इस बात का परिचायक है कि हमारे बिना चाहे और जाने भी, हमारे मन के भीतरी हिस्से (अचेतन मन) में कुछ न कुछ प्रक्रियायें होती रहती हैं जिनके परिणाम हमारे सामने इस प्रकार आ जाते हैं। पूर्वाभास जैसी चीज़ भी अचेतन मन की ही उपज होती है जिसका कारण हमें पता नहीं होता।

कुछ विद्वानों ने इसे अनंत बुद्धि का नाम दिया है। वैज्ञानिक इस मन को वैश्विक मन भी कह कर संबोधित करते हैं। कुछ इसे अचेतन मन तो कुछ इसे सुपर कॉन्शियस माइंड भी कहकर बुलाते हैं। नाम कुछ भी हो, कोई अंतर नहीं पड़ता। सच्चाई तो यह है कि हमारे चेतन और अवचेतन दोनों मन अचेतन से पूरी तरह से संबद्ध रहते हैं। यह निम्नलिखित रूप से कार्य करता है-

1. चूंकि यह अनंत बुद्धि का पर्याय है, इसलिये इसके पास आपके सभी प्रश्नों का उत्तर है चाहे वह प्रश्न कल के शेयरों के दाम के बारे में ही क्यों न हो?
2. सभी अन्वेषणों का स्रोत यही अचेतन मन है। थॉमस एडीसन तथा अलबर्ट आईंसटाईन जैसे वैज्ञानिकों ने अपने अचेतन मन से संदेश प्राप्त करने की विधा में महारथ हासिल कर ली थी अन्यथा इस सृष्टि में नयी-नयी खोज करना कहां से संभव हो पाता।
3. यह हमें हमारे लक्ष्यों की प्राप्ति में सफल बनाता है। यदि एक बार हम अपने अवचेतन मन को अपने लक्ष्यों के बारे में विश्वास दिला देते हैं तो हमारा अवचेतन मन हमारी उस इच्छा को अचेतन मन में प्रत्यारोपित कर देता है। अचेतन मन उस लक्ष्य को पूरा करने के लिये प्रयास शुरु कर देता है। हमें अपना लक्ष्य पूरा करने के लिये राहें मिलने लगती हैं, उससे संबंधित लोग मिलने लगते हैं और तदनुरूप सारे कार्य होने लगते हैं। तब हम कहते हैं कि **मैं अकेला चला था जानिबे मंजिल, लोग साथ आते गये, कारवां बनता गया।** इस दृष्टि से यदि हम देखें तो पायेंगे कि सफलता भाग्य का खेल नहीं बल्कि प्रयासों का प्रतिफल है। तभी हम कहते हैं कि हम अपने भाग्य के निर्माता हैं।

चाहे मनोविज्ञान हो या शरीर विज्ञान- सभी मस्तिष्क के दो भागों या प्रकारों को स्वीकार करते हैं। चाहे वस्तुनिष्ठ (ऑब्जेक्टिव) या व्यक्तिनिष्ठ (सब्जेक्टिव) कहें या अचेतन मन और चेतन मन, जाग्रत और सुषुप्त मन, सतही और गहरा मन कुछ भी कह लें, पर यह तय है कि ये दो हैं। मस्तिष्क या मन के द्वैत सिद्धांत को स्वीकार करना परम आवश्यक है और दोनों की प्रकृति को समझना और जानना जीवन की प्रकृति को जानने के बराबर है।

अपने मन के दोतरफा कार्यों को समझने के लिये ज़रूरी है कि हम इसे एक बगीचा मान लें। हम माली हैं। हम अपने अचेतन मन में हर दिन विचारों के बीज बो रहे हैं।

ज्यादातर समय हमें इसका एहसास ही नहीं होता है क्योंकि ये वैचारिक बीज आदतन बोये जा रहे हैं। हम जैसे बीज अपने अचेतन मन में बोते हैं, उसी की फसल चेतनतया हमें अपने शरीर और परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में काटनी पड़ती है। हमारा अचेतन मन ऐसी उपजाऊ भूमि है जो हर तरह के बीज को परवरिश देती है चाहे बीज अच्छे हों या बुरे, तदनुसार फसल उगेगी। अर्थात् हमारा प्रत्यक्षीकरण जैसा होगा, वैसा ही अनुभव और छाप हमारे अचेतन मन पर पड़ेगी। यह भी एक सच है कि हमारे चेतन मन के पास तो तर्कशक्ति है किंतु अचेतन मन के पास तर्क शक्ति का अभाव है। हम इसे जैसा फीडबैक देंगे, हमारा अचेतन मन उसी को सच करने में अपनी पूरी शक्ति लगा देगा। इसलिये यदि हम आध्यात्मिक दृष्टि से देखें तो शायद इसीलिये कहा जाता है कि **बुरा मत देखो, बुरा मत सुनो और बुरा मत बोलो।** यह दोतरफा चैनल है। एक ओर हमारी कर्मेंद्रियां हमारे अचेतन मस्तिष्क के द्वारा निर्देश पाकर क्रियाशील होती हैं तो दूसरी ओर हमारी कर्मेंद्रियों के द्वारा किये जाने वाले सभी कार्यों की छाप अचेतन मन पर अनिवार्यतया पड़ती रहती है। यही कारण है कि अच्छा व्यक्ति अच्छे प्रभावों के कारण और अच्छा होता जाता है तथा बुरा व्यक्ति बुरे प्रभावों के कारण और बुरा होता जाता है। जब यह अच्छाई या बुराई सामान्य या औसत मानवीय व्यवहार से अधिक या कम हो जाती है तो इसे मनोविज्ञान असामान्य व्यवहार कहता है और फिर समान्य जीवन जीने के लिये व्यक्ति को मनोचिकित्सक की सहायता लेनी पड़ती है। **हर विचार एक कारण और हर परिस्थिति एक परिणाम है।** इसका अर्थ तो यह हुआ कि हम अपनी परिस्थितियों के निर्माता हैं। हमारे विचार जैसे होते हैं, वैसी ही परिस्थितियां हमें प्राप्त होती हैं। इसी वजह से यह ज़रूरी है कि हम अपने मन और विचारों पर नियंत्रण करें। यदि सकारात्मक विचार रखेंगे तो अनुकूल परिस्थितियां मिलेंगी और यदि नकारात्मक विचार रखेंगे तो प्रतिकूल परिस्थितियां मिलेंगी। मन में एक बार विचार आ जाने पर पूरी कायनात उसको सच करने में हमारा साथ देने लग जाती है। इसका जीवंत उदाहरण भी लेखक ने अपने व्यवहारिक जीवन में अनुभव किया है। एक बार तन-मन से सोचकर, चाहकर तो देखिये- सारा ज़माना आपका। बड़े ही रोचक प्रयोग हैं अचेतन मन के। करके देखने की ज़रूरत है। हम इसे अतिशयोक्ति न कहें तो हम यह भी कह सकते हैं कि हमारी सुख-समृद्धि का खज़ाना भी हमारे अंदर ही है। जब हम अपनी आंतरिक इच्छाओं और कथनी में अंतर रखते हैं तभी हमें अनुकूल परिणाम प्राप्त नहीं हो पाते। जैसे हमारी एक सामान्य सी आदत है कि हम हमेशा धन की बुराईयां निकालते रहते हैं। **अधिक धन सारी बुराईयों की जड़ है। अधिक पैसा नहीं होना चाहिये। आदि-आदि** वाक्यांश दोहराकर एक ओर तो हम चेतन रूप से बार-बार कहते रहते हैं कि धन बुरा है और दूसरी ओर अंदर ही अंदर हम यह चाहते हैं कि हम धनवान हो जायें। बाफरात संपत्ति के मालिक हो जायें। कैसे हो सकता है? सीधी-सादी बात तो यह है कि हम जिस चीज़ की बुराई करेंगे वह हमारे पास क्यों

आयेगी? हमारी ही बुराई जो करता है क्या हम उसके पास जाना पसंद करते हैं? इसलिये धनवान होने के लिये अति आवश्यक है कि आप धन से प्यार करें और धन को सराहें.ऐसा चेतन और प्रत्यक्ष रूप में होना ज़रुरी है। फिर देखिये कैसे धन आपकी झोली में आकर गिरता है!

यही प्रक्रिया ग्राहकों के साथ व्यवहार करने में भी होती है। ग्राहकों के बारे में यदि हम पहले से ही यह धारणा बना लेते हैं कि सामने की कतार में अगला आने वाला ग्राहक नकारात्मक प्रवृत्ति का है तो उसकी क्रिया से पहले हमारी ही प्रतिक्रिया नकारात्मक हो जायेगी और नकारात्मक प्रतिक्रिया का परिणाम सकारात्मक कैसे हो सकता है! **संघर्ष अवश्यंभावी** है। इसे टालने के लिये यह ज़रुरी है कि हम अपने अचेतन मन से, सच्चे दिल से यह विश्वास कर लें कि आने वाले सभी ग्राहक अच्छे हैं। वे बुरे या नकारात्मक हो ही नहीं सकते। ऐसा विश्वास हमारे अचेतन मन में ग्राहकों के प्रति सकारात्मक छवि का निर्माण कर देगा और हमारे शरीर और मन से ग्राहकों के प्रति सकारात्मक तरंगें उर्जस्वित होंगी। ये तरंगें सामने खड़े नकारात्मक मनोवृत्ति वाले ग्राहक को भी सकारात्मक मनोवृत्ति वाले ग्राहक में बदल देंगी। (याद रखें कि बाहर की दुनिया हमारे अंदर से ही पैदा होती है और वैसा ही स्वरूप लेती है जैसा हमारा आंतरिक मन होता है) लेकिन इसके लिये हमें अपने अचेतन मन को विश्वास दिलाना होगा कि सभी ग्राहक अच्छे हैं। यह विश्वास ही नहीं बल्कि आस्था होनी चाहिये। आस्था में **हां- ना- हां ना** नहीं होते बल्कि सिर्फ और सिर्फ **हां हां** और **शत प्रतिशत हां** होती है। संशय या आंशिकता की कोई गुंजाइश ही नहीं होती आस्था में। यह निरपेक्ष विश्वास होता है जिसका कोई कारण नहीं होता। ग्राहकों की अच्छाई में बैंकर की यही आस्था होनी ज़रूरी है। होता यह है कि काउंटर पर बैठा बैंकर स्वयं को ग्राहक का भाग्यविधाता **यदि न भी कहें** तो दाता, तो मान ही लेता है और यह याद रखता है कि देने वाले का हाथ हमेशा ऊंचा होता है। इसीलिये बैंकर के मन में, क्रियाओं और हाव-भावों में अहंकार के लक्षण परिलक्षित होने लगते हैं जिसे ग्राहक सहन नहीं कर पाता और तत्काल बैंकर के प्रति चिड़चिड़ा व्यवहार करने लगता है। बैंकर के सामने खड़ा ग्राहक वस्तुतः बैंकर को कारोबार देता है, इसलिये वास्तविक प्रदाता तो ग्राहक है न कि बैंकर, जबकि व्यवहारिक रूप इसका उलट ही होता है। यदि बैंकर इस सत्य को मन से अर्थात् अचेतन मन से भी, आस्थापूर्वक स्वीकार कर लें कि उसकी रोज़ी-रोटी ग्राहक के कारण चल रही है तो शायद कोई संघर्ष ही न हो। किंतु सच तो यह है कि आज लाख कोशिशों के बावज़ूद, प्रशिक्षण के बावज़ूद बैंकरों के मन मानस में ग्राहक की छवि बैंकिंग सेवाओं के प्रति आशापूर्वक अनुग्रह पाने की चाह में लंबी-लंबी कतारों में खड़े होने वाले हैरान-परेशान ग्राहक की बनी हुयी है। बैंकर आज तक भी ग्राहक के प्रति अपनी रोजी-रोटी के प्रदाता की छवि निर्मित नहीं कर पाया है। बैंकों ने प्रशिक्षण पर बहुत ध्यान दिया है और इसके परिणामस्वरूप अब चेतनतया बैंकर के मन में यह धारणा जन्म तो ले

लेती है लेकिन इस पर उसका मन विश्वास करने को तैयार नहीं हो पाया है। जब विश्वास ही नहीं जन्म ले सका है तो आस्था तो बहुत दूर की बात है और यह जान लीजिये कि जब तक बैंकर और ग्राहक के प्रति आस्थावान नहीं होगा तब तक बैंकिंग सेवाओं का स्वरूप थोड़ा तो बदल सकेगा किंतु उसकी गुणवत्ता और ग्राहक संतुष्टि का स्तर कभी नहीं बदल सकेंगे। जब तक हर बैंकर ग्राहक के प्रति समर्पित भावना से बैंकिंग सेवायें नहीं देगा, तब तक बैंकर और ग्राहक के संघर्ष होते रहेंगे। बैंकर के मन में नाहक उठे अहं और भ्रांतियों के कारण हमारे ग्राहक शिकायतें करने पर बाध्य होते रहेंगे। गांधी जी ने कहा कि **बैंक परिसर में आने वाला हर ग्राहक ईश्वर का रूप है।** लेकिन क्या सचमुच बैंकर अपने ग्राहक को ईश्वर मान सकता है? या मानता है? यदि ईश्वर सामने खड़ा हो जाये तो एक आदमी दंडवत करने लगेगा, करबद्ध खड़ा हो जायेगा, उठकर बैठने के लिये उन्हें आसन दे देगा। पर क्या बैंकर ग्राहक के आने पर ऐसा ही व्यवहार करते हैं? नहीं न! तो फिर ग्राहक हमसे संतुष्ट कैसे हो सकता है?

व्यवहारिक बैंकिंग में यदि वैयक्तिक भिन्नताओं पर ध्यान दें तो वे ही बैंकर ग्राहकों द्वारा सराहे जाते हैं जो ग्राहकोन्मुख व्यवहार करते हैं। न केवल व्यवहार करते हैं बल्कि वे बैंकर स्वभाव से ही सहायक, समर्पित और हितैषी प्रकृति के व्यक्ति होते हैं। इनका आंतरिक व्यक्तित्व एक बैंकर के रूप में ही नहीं बल्कि एक व्यक्ति के रूप में भी वैसा ही उदात्त होता है जैसा दिखायी देता है और जैसा ग्राहक सेवा के समय अनुकूल प्रतीत होता है। चूंकि इस प्रकार के बैंकरों ने अपने अचेतन मन को ग्राहकोन्मुखी व्यवहार के लिये मशीनीकृत कर लिया है इसलिये न केवल इनका चेतन मन बल्कि इनका अचेतन मन भी ग्राहकों के प्रति अनुकूल व्यवहार करता है। परिणाम निस्संदेह अनुकूल प्राप्त होते हैं। हमारे स्वभाव का प्रभाव कई गुना बढ़कर सामने आता है चाहे हम अच्छा व्यवहार करें या बुरा। प्रकृति या ईश्वर जो भी कह लें, वह इतना दयालु है कि हमारे प्रयासों और कामों में गुणनफल में बढ़ोत्तरी करके वापस करता है। अच्छे बैंकर को अच्छाई का असर कई गुना होकर प्राप्त होता है। बैंकर को अच्छा वातावरण, अच्छा सौहार्दपूर्ण व्यवहार, आदर, सम्मान मिलते हैं, उनसे जुड़े ग्राहक उनपर विश्वास करते हैं, उनसे ही कारोबार करना चाहते हैं इसलिये कारोबार की अधिकता मिलती है, ग्राहक संतोष बढ़ता है और आपसी संबंध भी परिपक्व और मज़बूत होते हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में ही रहना और व्यवहार करना चाहता है। जब किसी व्यक्ति को समाज से स्वीकार्यता प्राप्त होती है, प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, प्यार मिलता है तो उसके जीवन की मौलिक आवश्यकता पूरी होने लगती है जो उसे पूर्ण पुरुष बनाती है। पूर्णता ही मानव जीवन का लक्ष्य है। युग निर्माण योजना, शांति कुंज, हरिद्वार का एक नारा किसी दीवार पर लिखा मिला था- **हम सुधरेंगे- युग सुधरेगा।** इसकी उपादेयता समझनी चाहिये और इस पर काम करना चाहिये।

हमने खुद इस पर सोच-विचार किया है और लगभग 22 वर्षों तक इस पर व्यवहार

किया है। अब हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं होता कि **ऐ जज़्ब-ए-दिल गर मैं चाहूं- हर चीज़ मुकाबिल आ जाये, मंज़िल के लिये दो गाम चलूं, और सामने मंज़िल आ जाये।**

हमारे अचेतन मन ने हमारा मार्गदर्शन किया है। हमारा सारा सुख, पूर्णता हमारे अचेतन मन से हमें मिली है। ग्राहक, स्टाफ, अधिकारी सभी हमसे खुश रहते हैं। आप भी आज़माईये न!

3. असामान्य मनोविज्ञान और सामान्य व्यक्ति

"यह मानकर चलें कि वैयक्तिक भिन्नतायें सर्वत्र हैं और होंगी। हमारा कार्य किसी के व्यवहार का परिष्कार करना नहीं है बल्कि यथासंभव सामने खड़े 'असामान्य' व्यक्ति को जहां तक हो सके, भावात्मक संबल प्रदान करना है। यह बहुत बड़ा अस्त्र है जो सकारात्मक परिणाम लाता है। किसी व्यक्ति के 'असामान्य' होने का एक मूल कारण जो उसके व्यवहार में होता है, वह है भावात्मक खालीपन। उसके इस खालीपन को भर दीजिये अपनत्व से, मित्रता से, हितकारी संबंधों से और अपने विश्वास से। बहुत अधिक संभावना है कि एक 'असामान्य' व्यक्ति को आप सामान्य कर सकें- भले ही आप एक बैंकर हैं मनोचिकित्सक नहीं।"

असामान्य मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसमें व्यक्ति के असामान्य व्यवहारों और व्यवहारों की असामान्यता के कारणों और लक्षणों का अध्ययन किया जाता है। यह व्यक्ति के व्यवहारों की असामान्यता संबंधी अनेक समस्याओं का वर्णन, विवेचन और विश्लेषण कराता है। असामान्यता को हम निर्धारित सामाजिक व्यवहारों और साधारणतया किये जाने वाले व्यवहारों और प्रतिक्रियाओं से भिन्न व्यवहार के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। यदि व्यवहारों को एक लाइन में मापा जाये तो बीच के औसत आंकड़े, जिनमें अधिकांश सामाजिक व्यवहार आते हैं, वे सामान्य की कोटि में आयेंगे तथा इसके अलावा निम्नतम तथा उच्चतम आंकड़े असामान्य की श्रेणी में आयेंगे। सामान्य बुद्धि का बालक औसत होता है किंतु मंद बुद्धि और कुशाग्र बुद्धि के बालक असामान्य बालकों की श्रेणी में आते हैं। असामान्यतायें किसी भी प्रकार की हो सकती हैं जैसे संवेदनात्मक प्रत्यक्षीकरण संबंधी असामान्यतायें, संज्ञान से संबंधित असामान्यतायें, मनोगत्यात्मक प्रक्रियाओं से संबंधित असामान्यतायें, अभिप्रेरणात्मक तथा मनोवैज्ञानिक कार्यों से संबंधित असामान्यतायें, सामाजिक व्यवहारों से सबंधित असामान्यतायें यथा मद्यपान, अपराध तथा अन्य सामाजिक व्याधिकीय व्यवहार आदि। असामान्य व्यक्ति कई बार इस बारे में सूचित ही नहीं होते कि वे असामान्य हैं। हालांकि उन्हें विशेषज्ञों की

सहायता लाभान्वित कर सकती है तथापि चूंकि वे इस बात से सहमत ही नहीं होते कि वे असामान्य हैं, इसलिये वे इस प्रकार की चिकित्सकीय सहायता भी नहीं लेना चाहते। असामान्य व्यक्ति अपने ही विरोध में कार्य करता रहता है। असामान्य व्यक्ति सामाजिक व सांस्कृतिक मानदंडों का भी बहिष्कार करता है तथा समय पाने पर उन्हें तोड़ने में भी नहीं हिचकता। समाज के नैतिक तथा परंपरागत नियमों को न मानने वाला भी असामान्य कहलाता है तथापि नियम तोड़ने की बारंबारता तथा गंभीरता व उससे होने वाली हानि पर भी असामान्यता निर्भर करती है। यदि ऐसा कभी-कभार ही होता हो तो यह सामान्य व्यवहार की श्रेणी में आयेगा किंतु यदि ऐसा बार-बार होता हो, इतनी बार कि वह कर्ता की आदत या स्वभाव लगने लगे तो निश्चित रूप से यह असामान्यता की श्रेणी में लिया जायेगा। असामान्य व्यवहार से समाज के अन्य लोगों को, जो असामान्य व्यक्ति के संपर्क में आते हैं, को उलझन महसूस हो सकती है। असामान्य व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य भी खराब होता है जिस कारण से वह असामान्य व्यवहार करता है। असामान्यता को निर्धारित करने में संस्कृति के अलावा स्थान तथा संदर्भ का भी महत्व है। कोई व्यक्ति यदि शौचालय में नित्य क्रिया करता है तो यह सामान्य व्यवहार कहा जायेगा किंतु यदि वह ऐसा किसी मॉल के बीचोंबीच या सुपरमार्केट के बीच वाले हॉल में करता है तो यह घोर आपत्तिजनक तथा अत्यंत असामान्य व्यवहार कहा जायेगा। असामान्यता का एक प्रभावकारक आयु भी है। जिस कार्य (जैसे कपड़े उतारना) को बालक जनसामान्य के बीच कर सकते हैं, उसी कार्य को वयस्क यदि जनसामान्य के बीच करें तो वयस्कों का व्यवहार असामान्य कहा जायेगा। अवसादग्रस्त व्यक्ति असामान्य कहा जायेगा क्योंकि उसकी सामान्य मानसिक और सामाजिक क्रियायें अवरुद्ध हो जाती हैं।

इसके अलावा असामान्य मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यक्तित्व की असामान्यताओं का अध्ययन भी करता है। इनमें प्रमुख हैं- साईकोसिस, न्यूरोसिस, साईकोसोमेटिक डिस्ऑर्डर,मानसिक दुर्बलतायें और चारित्रिक दोष आदि। असामान्य मनोविज्ञान में कई प्रकार की मनोविश्लेषणात्मक तथा चिकित्सकीय पद्धतियों का उपयोग किया जाता है जैसे फिजियोलॉजिकल, बिहेव्यरल, साईकोडायनेमिक, सोशियोकल्चरल, एक्सपेरीमेंटल तथा ओबसर्वेशनल। मानसिक रोगों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन वैज्ञानिक आधार पर अठारहवीं सदी के अंत में प्रारंभ हुआ। अब आजकल असामान्य मनोविज्ञान संबंधी समस्याओं का अध्ययन कारण विश्लेषण द्वारा उच्च सांख्यिकीय विधियों के द्वारा किया जाना प्रारंभ हुआ है।

सामान्य व्यक्ति का सामान्य व्यवहार, वह व्यवहार है जो अधिकांशतया व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। जैसे सांप को देखकर भयभीत होना- एक आम आदमी का डर है। यह एक सामान्य सी प्रक्रिया है जो सांप को देखने पर सभी व्यक्तियों में पायी जाती है। इसी प्रकार जंगली जानवरों से एक आम आदमी डरता है। जंगल में अकेले जाने से हर व्यक्ति डरता है। समाज में उत्सवी माहौल में हर व्यक्ति आनंद महसूस करता है। माता-

पिता के साथ रहकर हर बालक सुरक्षित महसूस करता है। भूख लगने पर हर आदमी कुछ खाने की इच्छा और प्रयास करता है। ये सभी व्यवहार सामान्य हैं किंतु यही व्यवहार असामान्य माने जायेंगे यदि रस्सी को देखकर व्यक्ति सांप की तरह से भयभीत होने लगे। सांप की सोच या स्मरण से कोई व्यक्ति यदि भय के अतिरेक का प्रदर्शन करे तो वह व्यवहार असामान्य व्यवहार कहा जायेगा। जंगली जानवरों से तो हर आम आदमी डरता है किंतु यदि कोई व्यक्ति खूंखार जंगली जानवरों से अत्यंत नज़दीकी से व्यवहार करता आये, प्रेम करने लगे और उन्हीं के साथ जीवनयापन करे तो वह असामान्य व्यवहार कहा जायेगा। हर व्यक्ति 24 घंटों में से कम से कम 5 से 8 घंटे की नींद लेता है। यह सामान्य व्यवहार है किंतु यदि कोई व्यक्ति 24 घटों में से 20 घंटे सोये या फिर 1 घंटा सोये तो यह दोनों ही प्रकार का व्यवहार असामान्य कहा जायेगा। स्वयं को चोट पहुँचाने वाले का प्रतिकार करना आम व्यवहार है किंतु स्वयं की ओर देखने वाले व्यक्ति को मात्र देखने से गाली गलौज करने लगना और जान से मारने की धमकी देना या प्राणघातक आक्रमण करना असामान्य व्यवहार हैं। कल्पना करना सामान्य व्यवहार है किंतु दिवास्वप्न देखना असामान्य व्यवहार है। कल्पना, स्वप्न और दिवास्वप्न में बहुत ही बारीक अंतर है। स्वप्न रात को होते हैं जिनमें बहुत कुछ अंश हमारी कल्पनाओ से मिलता-जुलता भी होता है किंतु दिवास्वप्न जागते हुये होते हैं और कहा जा सकता है कि ये कल्पना का अतिरेक होते हैं तथापि कल्पना व स्वप्न अपेक्षाकृत सार्थक होते हैं जबकि दिवास्वप्न निरर्थक होते हैं। स्वप्नों में कल्पना का भाग बहुत कम होता है या नहीं होता है किंतु दिवास्वप्न में कल्पना का अतिरेक होता है, इसलिये दिवास्वप्न से संबधित व्यवहार असामान्य व्यवहार है। असाधारण परिस्थितियों में भावों, आवेगों और संवेदनाओं से उद्दीप्त होकर क्रिया और अनुक्रिया करना सामान्य व्यवहार हैं किंतु इस अनुक्रिया की अतिशयता और मात्रात्मक रूप से अधिकता असामान्य व्यवहारों की श्रेणी में आयेगी।

असामान्य व्यवहार के कारण -

- **शारीरिक तथा आनुवंशिक कारण** - जन्म से ही मस्तिष्क की बनावट में कमी या दोष, आनुवंशिक बीमारियों, न्यरोट्रांसमीटर के असंतुलन, तथा अन्य जैविक असंतुलनों के कारण भी व्यक्ति का व्यवहार असामान्य हो सकता है। कम विकसित या अर्धविकसित मस्तिष्क के कारण व्यक्ति मंदबुद्धि और अतिविकसित मस्तिष्क के कारण व्यक्ति मेधावी या असामान्य रूप से कुशाग्र बुद्धि हो सकते हैं। किसी दुर्घटना के फलस्वरूप शारीरिक या मस्तिष्कीय चोट के कारण आयी अपंगता भी असामान्य व्यवहार का कारण बन सकती है।
- **मनोलैंगिक विकास प्रक्रिया** के दौरान व्यक्ति को माता-पिता से उचित व्यवहार न मिलने के कारण भी व्यक्ति अति आक्रामकता, अतिवादी तथा जिद्दी हो जाता है। इन विशेषताओं के आधिक्य से भी उसका व्यवहार असामान्यता की

श्रेणी में आ जाता है।

- **दोषपूर्ण अंतरवैयक्तिक संबंधों** के प्रशिक्षण के कारण बालक वयस्क होने पर दोषपूर्ण व असामान्य व्यवहार के स्वामी हो सकते हैं।
- **संबद्धता तथा सुरक्षा**- जब माता-पिता बच्चों में सुरक्षा, संरक्षा तथा आवश्यकता के समय अपनी उपलब्धता व संबल के विषय में बालकों को विश्वास दिलाने में असफल रहते हैं तो बालक अपने भावों और आवश्यकताओं को नियंत्रित करने में असफल रहते हैं। इससे बालकों में अपने बारे में नकारात्मक विचार, असुरक्षा की भावनायें जन्म लेती हैं। यह अवस्था बालकों के व्यवहारों को असामान्यता की ओर निर्देशित कर सकती है।

शाखा में आये हुये ग्राहक का शीघ्रातिशीघ्र अपना काम करवाने हेतु बैंकर से अनुरोध करना आम व्यवहार है किंतु शाखा में आये हुये ग्राहक द्वारा, काम में देरी होने पर बैंकर के साथ मारपीट करने लगना, मारने की धमकी देना असामान्य व्यवहार है। शाखा में सभी बैंकरों द्वारा उचित व्यवहार का प्रदर्शन किया जाता है तथापि सभी ग्राहकों का काम उनकी अपेक्षानुरूप हो, ऐसा ज़रूरी नहीं क्योंकि ग्राहकों की अपेक्षायें बैंकिंग नियमों व प्रावधानों से बंधी नहीं हैं। वे किसी भी प्रकार की अपेक्षा कर सकते हैं जबकि बैंकर कई नियमों, विनियमों और सीमाओं से बंधा होता है। अब देखा जाये तो ग्राहक स्वतंत्र है, बैंकर स्वतंत्र नहीं है। ग्राहक की अपेक्षायें उसके निहित स्वार्थों से प्रेरित और पोषित होती हैं जबकि बैंकर का कार्य नियमों के दायरे में, नियोक्ता की अपेक्षाओं के अनुरूप और निःस्वार्थ होता है।

कई बार असामान्य व्यवहार मनोरोग में परिवर्तित हो जाते हैं जिनका मनो-विश्लेषणात्मक और मनोचिकित्सकीय विधियों द्वारा इलाज करवाना पड़ता है। सामान्य और असामान्य व्यक्ति में अंतर करने का कोई मापकीय यंत्र या विधि नहीं है। यह तो परिस्थिति विशेष में किसी व्यक्ति के व्यवहार के औचित्य पर निर्भर करता है कि उसका व्यवहार उचित है या अनुचित, सामान्य है अथवा असामान्य। छत गिरने या दीवार गिरने की क्रिया के फलस्वरूप आत्मरक्षा के लिये भागकर एक किनारे हो जाना सामान्य व्यवहार होगा किंतु दूर किसी निर्माणाधीन भवन से गिरते हुये मलबे को देखकर 200 मीटर दूर खड़े व्यक्ति का एक कोने में दुबकना सामान्य व्यवहार नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार शाखा में एक घंटे से लाइन में लगे ग्राहक का देरी के लिये नाराज़ होना सामान्य व्यवहार है किंतु शाखा में आते ही काउंटर पर बैठे बैंकर के ऊपर चिल्लाने लगना और बैंक स्टाफ को अपशब्द कहने लगना पूरी तरह से असामान्य व्यवहार है। इसलिये सामान्य ग्राहक और असामान्य ग्राहक, ग्राहक के सामान्य व्यवहार और असामान्य व्यवहार में अंतर की रेखा बड़ी सूक्ष्म है। यह अनुभव और ज्ञान तथा परिस्थितियों व वातावरण के सापेक्ष निर्धारित किया जा सकता है कि ग्राहक का अमुक व्यवहार सामान्य है और अमुक व्यवहार असामान्य।

सामान्य व्यवहार के प्रति बैंकर व ग्राहक- दोनों की प्रतिक्रियायें भी सामान्य और सामाजिक दायरों के अनुरूप होती हैं।

सामान्य व्यक्ति कब असामान्य व्यवहार करने लगता है?

- **पूर्व अनुभव तथा पूर्वाग्रहयुक्त अवधारणायें -** जब किसी व्यक्ति के मन में किसी परिस्थिति विशेष या व्यक्ति विशेष के बारे में पूर्वाग्रह और पूर्वधारणायें पहले से ही बना ली गयीं हो तो व्यक्ति सही और उचित परिस्थितियों में भी अनुचित और गलत व्यवहार करने लगता है जिसका कारण उनके मन की पूर्व धारणायें होती हैं। उदाहरण के लिये यदि किसी ग्राहक को पहले किसी बैंकर के साथ उलझन भरा और असुविधाजनक अनुभव हुआ हो तो वे ग्राहक जब भी शाखा में जायेंगे, बिना किसी तात्कालिक और स्पष्ट कारण के काउंटर पर बैठे बैंकर के प्रति अशालीन व्यवहार कर सकते हैं।
- **संवेगी व्यवहार -** संवेगों से उत्पन्न अनुक्रियायें जैसे क्रोध, प्रेम, आक्रामकता, भय, जिज्ञासा, चिंता, आश्चर्य, ईर्ष्या, शोक, तनाव, अति उत्साह, प्रसन्नता आदि व्यवहार की सामान्यता को नष्ट कर देती हैं किंतु इस प्रकार की असामान्यता क्षणिक होती है और उस संवेग के धीमे होने या समाप्त होने पर उक्त व्यक्ति सामान्य व्यवहार करने लगता है किंतु उस संवेगात्मक अवस्था में उक्त प्रभावित व्यक्ति के साथ सहयोगपूर्वक व्यवहार करने की आवश्यकता होती है, जैसे किसी ग्राहक को शाखा में आने पर या शाखा में आते समय कोई शोक संदेश प्राप्त हो जाता है तो वह न तो क्यू में आने की कोशिश करेगा और न ही शांति से बैंकिंग नियमों व प्रावधानों के अनुसार क्रिया करने को तैयार होगा।
- **विभ्रम, भ्रम या त्रुटिपूर्ण प्रत्यक्षीकरण -** त्रुटिपूर्ण प्रत्यक्षीकरण के कारण भ्रम उत्पन्न होते हैं तथा भ्रम के कारण व्यक्ति का सामान्य व्यवहार असामान्यतया में परिवर्तित हो जाता है।
- **शारीरिक कारण -** भूख, नींद, पीड़ा तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं के कारण भी कभी-कभी सामान्य व्यक्ति असामान्य व्यवहार करने लगता है। जैसे,

- मस्तिष्क का ट्यूमर या मस्तिष्कीय घात
- भारी दुर्घटना
- विषपान
- समाजविरोधी व्यक्तित्व
- मद्यपान
- ब्लड शुगर की कमी
- मैनिन्जाईटिस (मस्तिष्क और स्पाईनल कॉर्ड के चारों ओर की झिल्ली में सूजन)

असामान्यता के लक्षण -

- पेट दर्द
- भूख से संबंधी परिवर्तन
- मल उत्सर्जन से संबंधित अनियमितातायें
- विस्मरण, भ्रम, चिड़चिड़ापन
- सामाजिक मान्यताओं को समझने में असफलता
- स्मरण, चिंतन, बोलने, लिखने और पढ़ने में कठिनाई
- भ्रम और विभ्रम
- खुद को ना समझे जाने का अनुभव
- खालीपन या बेकार होने का अनुभव
- दोषपूर्ण निर्णय
- पलायन तथा अवसाद
- सिर दर्द
- हृदयाघात
- ऑटिस्म
- श्रव्य और दृश्य समस्यायें
- मांसपेशियों की कमज़ोरी
- संज्ञानात्मक परिवर्तन
- नींद में गड़बड़ी
- निगलने में कठिनाई
- वज़न में गड़बड़ी
- आत्मपीड़न और आत्मघात

यदि आपके आसपास या संबद्ध व्यक्ति का व्यवहार असामान्य दिखे या उसमें आत्मघाती या आत्महत्या जैसे असामान्य व्यवहार के लक्षण दिखें तो तत्काल उन्हें आपात्काल समझते हुये मनोविश्लेषक तथा मनोचिकित्सक और यदि आवश्यकता हो तो चिकित्सक के पास ले जायें अन्यथा प्राणांतक परिणाम भी हो सकते हैं।

असामान्य व्यवहार से निपटने के तरीके

- सबसे पहले, यदि असामान्य व्यवहार का कारण शारीरिक या स्वास्थ्य संबंधी गड़बड़ी हो तो संबंधित व्यक्ति को चिकित्सकीय सहायता दिलवायें।
- आत्मघाती या प्राणांतक अथवा आत्मपीड़क असामान्य व्यवहार करने वाले व्यक्ति को अकेला कदापि न छोड़ें। यदि शाखा में आये ग्राहक में इस प्रकार के लक्षण दिखें तो उस व्यक्ति के परिवारजनों या मित्रों को किसी बहाने से बुलाया जा सकता है और संबंधित व्यक्ति को उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से सौंपा जा सकता है।
- जब भी असामान्य ग्राहक से वास्ता पड़े, उन्हें यथास्थिति स्वीकार कीजिये। उन्हें परिवर्तित करने के बजाय आप उनसे सहयोग बनायें और बैंकिंग नियमों व प्रावधानों के अंतर्गत यथासंभव त्वरित और उनको हितकारी सेवायें और उत्पाद प्रदान करें। उनके असामान्य व्यवहार की चिकित्सा करने या उसे परिमार्जित करने का क्षेत्र बैंकर का नहीं है। वह कार्य मनोविश्लेषक और मनोचिकित्सक का है। एक बैंकर के नाते आपका काम बैंकिंग देना है और वह भी ग्राहक की संतुष्टि के अनुसार। उनके व्यवहार के बारे में आपको काज़ी नहीं बनना, सिर्फ और सिर्फ बैंकिंग। इसके अतिरिक्त सब कुछ परिहार्य है।
- ग्राहक के असामान्य व्यवहार के कारणों को समझने का प्रयास कीजिये। मानसिक रूप से यदि वे अशांत, चिंतित या घबराये हुये हों तो उनके साथ बातचीत करके (विरेचन नामक मानसिक रक्षात्मक संरचना का प्रयोग करके) आप उनका मन हल्का कर सकते हैं।
- उनमें आयी असुरक्षा और अपने जीवन के मूल्यहीन होने संबंधी भावों को आप उन्हें आदर देकर सामान्य वर्ग में ला सकते हैं। यह उनकी तात्कालिक आवश्यकता होगी। इस आवश्यकता की पूर्ति जो भी करेगा, चाहे वह बैंकर हो, मित्र हो या परिजन हो, उसे वे सच्चा हितैषी मान लेंगे तथा उसके साथ उनके चिरकालीन संबंध विकसित होंगे। यह संबंधों पर आधारित ग्राहक- बैंकर के संबंधों की धुरी बन जायेगा।
- असामान्यता यदि प्राणांतक या आत्मघाती न हो तो ऐसे व्यक्तियों के साथ अपनत्व भरा व्यवहार करें, उनको मित्र बनायें, उनका विश्वास जीतें। धीरे-धीरे वे सामान्य होते जायेंगे।
- यह मानकर चलें कि वैयक्तिक भिन्नतायें सर्वत्र हैं और होंगी। हमारा कार्य किसी के व्यवहार का परिष्कार करना नहीं है बल्कि यथासंभव सामने खड़े असामान्य व्यक्ति को जहां तक हो सके, भावात्मक संबल प्रदान करना है। यह बहुत बड़ा अस्त्र है जो सकारात्मक परिणाम लाता है। किसी व्यक्ति के असामान्य होने का एक मूल कारण जो उसके व्यवहार में होता है, वह है भावात्मक खालीपन। उसके इस खालीपन को भर दीजिये अपनत्व से, मित्रता से, हितकारी संबंधों से और अपने विश्वास से। बहुत अधिक संभावना है कि एक असामान्य व्यक्ति को आप सामान्य कर सकें, भले ही आप एक बैंकर हैं मनोचिकित्सक नहीं।
- संयम, धैर्य और अडिगता बनाये रखिये- आप अपने प्रयास में सफल होंगे।

- यदि आवश्यक हो तो ऐसे ग्राहकों को ग्राहक सेवा देते समय अपने सहयोगियों की भी मदद ले सकते हैं ताकि आप उन्हें संतुष्ट कर सकें।

असामान्यता कोई अभिशाप नहीं है। न ही कोई ऐसी बीमारी है जिसका इलाज संभव नहीं है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के अन्य सभी लोगों का दायित्व बनता है कि वे समाज की ही एक असामान्य इकाई को सामान्य होने में मदद करें। यह हमारा कर्त्तव्य है।

प्रयुक्त शब्दावली

चिकित्सकीय सहायता	Medical assisstence
संवेदनात्मक प्रत्यक्षीकरण	sensitive perception
असामान्य	Abnormal
अवसादग्रस्त	Depressed
दिवास्वप्न	Day dreaming
अतिरेक	Excessive
अनुक्रिया	Response
आनुवांशिक	Hereditry
मनोलैंगिक विकास	Psychosexual development
अंतर्वैयक्तिक संबंध	Interpersonal relation
मनोरोग	Psychich desease
पूर्वाग्रह	Prejudices
पूर्वधारणा	Preassumptions
संवेगी	Emotional
विभ्रम	Hallucination
भ्रम	Illusion
प्रत्यक्षीकरण	Perception
परपीड़क	Sadistic

4. अहं की तीन अवस्थायें

कोई भी व्यक्ति यह सुनना पसंद नहीं करता कि वह खुद को नहीं समझता। हर कोई यही कहता है कि मैं खुद को अच्छी तरह समझता हूं और तुमको भी। जबकि कोई भी व्यक्ति अपने 5 प्रतिशत चेतन को तो समझ नहीं पाता, 95 प्रतिशत अचेतन को समझने का दावा कर लेता है।

मनोवैज्ञानिकों द्वारा मानव अहं की तीन अवस्थायें कही गयी हैं- इड, ईगो और सुपर ईगो। ये व्यक्तित्व के तीन भाग भी कहे गये हैं। हर व्यक्ति में इन तीनों की उपस्थिति और अवस्थिति होती है। ये तीनों भाग मिलकर व्यक्ति के व्यक्तित्व को अत्यंत महत्वपूर्ण तरीके से प्रभावित करते हैं। यह **अहं** अहंकार वाला **अहं** नहीं है जिसे हम भाषा के विषय में या अध्यात्म के विषय में पढ़ते हैं। यह मनोचिकित्सकीय शब्द है जो व्यक्तित्व का अनिवार्य अंग है। हर व्यक्ति के व्यवहार में इन तीनों मानसिक विधाओं की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यदि कहा जाये कि **अहं** की इन तीनों अवस्थाओं के बिना व्यक्तित्व की व्याख्या नहीं की जा सकती तो यह अतिशयोक्ति न होगी। ग्राहक के व्यवहार, व्यक्तित्व और ग्राहक सेवा के दृष्टिकोण से इन तीनों को जाने समझे बिना ग्राहक सेवा पर विचार असंभव है, क्योंकि जब तक हम किसी भी ग्राहक के व्यक्तित्व के निर्माता घटकों और उनकी कार्यप्रणाली को नहीं जाने समझेंगे और विवेचित नहीं करेंगे तब तक हम उनके द्वारा प्रदर्शित व्यवहार के कारणों और उनकी अपेक्षाओं तथा उसके अनुकूल वांछित अपने (बैंकर के) व्यवहार को भी नहीं समझ पायेंगे। किसी भी ग्राहक का दर्शित व्यवहार उसके व्यक्तित्व का केवल 5 प्रतिशत भाग ही दर्शाता है, शेष 95 प्रतिशत व्यवहार के कारण को बैंकर को अपने कौशल और सूझबूझ से समझना होता है और उसके अनुरूप व्यवहार-बातचीत करनी होती है। ऐसा न करने से संघर्ष होते हैं, शिकायतों का जन्म होता है। एक बार पारस्परिक व्यवहार में कटुता और नकारात्मकता आ जाने पर दोनों पक्ष एक-दूसरे के विरोधी बन जाते हैं। विरोध में फिर सौहार्द कहां और कहां समृद्धि और सुख-शांति!!

मानव का व्यक्तित्व **इड, ईगो** और **सुपर ईगो**- इन तीन घटकों से निर्मित होता है।

ये तीनों मानवीय व्यक्तित्व की ऐसी विधायें हैं जिनमें से केवल **इड** ही मानव के जन्म के समय उपस्थित रहता है। **'इड'** का प्रभाव बचपन में सबसे अधिक और सबसे स्पष्ट रूप से दिखायी देता है। **'इड'** मनुष्य में जन्म से ही रहता है। यह पूरी तरह से अचेतन होता है। इसमें प्राथमिक, मूल तथा नैसर्गिक व्यवहार रहते हैं। हमारी आत्मिक शक्ति और ऊर्जा, जो कि हमारे व्यक्तित्व का सबसे आधारभूत अंग हैं, का कारण यही **इड** है। यह आनंद के सिद्धांत से संचालित होता है और मनुष्य की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति का कारण बनता है। यदि इन इच्छाओं की पूर्ति नहीं की जाती तो मनुष्य में तनाव और चिंता की उत्पति होती है। उदाहरणार्थ; यदि हमें भूख या प्यास लग जाये तो तत्काल उसकी पूर्ति के उपाय हम प्रारंभ कर देते हैं। कई बार भूख या प्यास लगने की 'अति' में हम मांगकर भी खा-पी लेते हैं। ऐसी दशा में सामाजिक प्रतिष्ठा या नैतिक और सामाजिक मूल्य और नियम हमें ध्यान में नहीं रहते। यह व्यवहार हमारा **इड संचालित व्यवहार** होता है। इसमें तर्कशक्ति नहीं होती। शिशुओं को जब भूख प्यास लगती है तो वे तब तक रोते रहते हैं जब तक कि उनकी भूख या प्यास शांत नहीं हो जाती। इड हमारी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति का बहुत ही महत्वपूर्ण साधन है। जिस ग्राहक में **इड** की प्रधानता होती है, उसके व्यवहार में जिद्दीपन और अतार्किक आग्रहों का बाहुल्य रहता है। **इड** को नियंत्रित करने की कोई विधा नहीं है सिवाय बच्चों की तरह बहलाने के। जिस तरह बच्चों को तरह-तरह से बहलाया जाता है, प्यार से, लुभाकर, बात को टालकर या उन्हें किसी और बात या काम में उलझाकर, वैसे ही **इड** प्रभावित ग्राहकों को भी बहलाना या ध्यान बंटाना उचित होता है चूंकि इनमें तर्कशक्ति का अभाव या अत्यंत कमी रहती है। इसलिये इस प्रकार के ग्राहकों से तर्क करना मूर्खता होती है लेकिन सिक्के का दूसरा पहलू भी है। हर बार यह संभव नहीं हो पाता कि मन में उपजी हर आवश्यकता को तत्काल पूरा कर ही लिया जाये। यदि ऐसा हो सकता तो हर मनुष्य दूसरे मनुष्य से छीन झपटकर खाता नज़र आता किंतु उक्त व्यवहार सामाजिक रूप से मान्य नहीं होता, अतः इड आवश्यकतानुरूप वांछित वस्तुओं या इच्छाओं की पूर्ति संबंधी मानसिक छवि बना लेता है और उससे अपनी ज़रूरत को पूरा मान लेता है। भूख से बिलबिलाते बच्चे को माता बहलाते हुये दूध से भरी बोतल के बारे में बातचीत करके चुप कराती है और बातचीत के दौरान बच्चा दूध पीने की इच्छा की संतुष्टि प्राप्त करता है। **इड** प्रभावित ग्राहकों से भी कुछ इस तरह से ही व्यवहार करना उचित रहता है, हालांकि **इड** प्रभावित ग्राहकों की संख्या बहुत कम या न के बराबर होती है। इसका कारण यह है कि उम्र बढ़ने के साथ साथ मनुष्य में **ईगो** का विकास होने लगता है और वह तर्क करना और समझना तथा समझाना जान सकता है। यदि बड़ी उम्र का व्यक्ति बच्चों की तरह जिद्द करता है तो मनोवैज्ञानिक भाषा में उसे असामान्य करार दिया जाता है। बैंकिंग नियमों के अनुसार असामान्य व्यक्तियों को सामान्य व्यक्तियों के समान बैंकिंग अधिकार प्राप्त नहीं हैं तथापि

किसी भी व्यक्ति में ऐसा नहीं होता कि विशुद्ध रूप से **इड, ईगो** या **सुपर ईगो** का प्रभाव दृष्टिगोचर होता हो। हर वक्त प्रदर्शित व्यवहार में **इड, ईगो** तथा **सुपर ईगो** का सम्मिश्रण ही रहता है। हां उक्त तीनों में से कभी कोई, तो कभी कोई मुख्य रूप से हावी हो सकता है।

'ईगो' व्यक्तित्व का वह तत्व है जो वास्तविक जगत से संबंध रखता है। यह सुनिश्चित करता है कि **'इड'** की आवश्यकताओं की पूर्ति समाज द्वारा मान्य तरीकों से हो। जहां **'इड'** हमारे अचेतन मन में कार्य करता है वहीं **ईगो** हमारे चेतन, अवेतन तथा अचेतन तीनों स्तरों पर क्रियाशील होता है। **ईगो, इड** द्वारा उत्पन्न की गयी नैसर्गिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उपलब्ध विकल्पों के गुण-दोष, हानि-लाभ, मान्यता, अमान्यता आदि का आकलन करता है। अधिकांश मामलों में **ईगो, इड** की आवश्यकताओं की पूर्ति विलंबित तुष्टिकरण की नीति अपनाकर करता है अर्थात् **इड** की नैसर्गिक किंतु समाज द्वारा अमान्य आवश्यकताओं की पूर्ति तो यह करवाता है किंतु समाज द्वारा मान्य तरीकों को अपनाकर वह भी सही समय और सही स्थान पर। इस दृष्टि से यदि देखा जाये तो **ईगो, इड** का बहुत बड़ा सहायक और मार्गदर्शक है। **ईगो** का एक महत्वपूर्ण काम और भी होता है कि यह तुष्टिकरण की गौण प्रक्रिया और विकल्प भी अपनाता है। अर्थात् यदि मनुष्य को उसकी वांछित मूल वस्तु प्राप्त नहीं होती तो उसके मनमानस में बनी उस वस्तु की छवि से मिलती-जुलती उसकी स्थानापन्न वस्तु यह ढूँढ देता है। इससे अप्राप्ति या वंचना अथवा अभाव से उत्पन्न होने वाली चिंता और तनाव से व्यक्ति को मुक्ति मिल जाती है। इस प्रकार **ईगो** हमारा मानसिक संतुलन बनाये रखने और हमको तनाव से दूर रखने और तनाव को हमसे दूर रखने में बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण सहायक है। बैंकिंग जगत में यदि कोई ग्राहक मन ही मन यह सोचता आये कि मुझे 100 रुपये के बदले में खजांची अगर 200 रुपये दे दे तो कितना आनंद आये! यदि उसकी यह मांग **इड** प्रभावित हो गयी तो वह बैंकिंग नियमों और प्रावधानों के उपदेश कतई नहीं सुनेगा और हठ करेगा कि जल्दी से वह उपाय बताओ कि हमारा पैसा दुगुना हो जाये। ऐसे में हम ग्राहक के लिये **ईगो** के तर्ज पर कार्य करते हुये उसके सामने **"जमा करो- दुगुना पाओ"** की योजना रख देंगे तो शायद वह इसमें निवेश के लिये राज़ी हो जायेगा चूंकि उसके **इड** ने पैसा दुगुना करने की इच्छा बतायी। हमने उसका पैसा दुगुना करने की विधि उसको बता दी और वह मान गया। यह बात दीगर है कि समय उसमें बड़ा रोल अदा करेगा। उसको अभी दुगुना पैसा न मिलकर आगे कुछ सालों बाद मिलेगा किंतु वह संतुष्ट इसलिये हो जायेगा क्योंकि पैसा दुगुना करने की उसकी इड प्रभावित इच्छा **जमा करो-दुगुना पाओ** योजना से पूरी हो रही है। उसके मनमानस में बनी दुगुने की छवि से उसके **ईगो** ने विकल्प दे दिया। इससे ग्राहक की इच्छा भी पूरी हो गयी और बैंकर को जमाराशि भी मिली। इस दृष्टि से देखा जाये तो **ईगो** का हमारे जीवन में बहुत ही महत्व है और मनुष्य को समाज द्वारा मान्य तथा सामाजिकता के अनुकूल जीवनयापन करने में सक्षम बनाने में **ईगो** की बहुत बड़ी भूमिका है।

'सुपर ईगो'- मानवीय व्यक्तित्व के विकास की कड़ी मे सबसे अंतिम किंतु सबसे सुंदर कड़ी है। यह इंसान को 'इंसान' बनाने में मदद करता है। मनुष्य जानवरों से इसी के कारण अलग गिना जाता है। यह व्यक्तित्व का वह भाग है जिसमें सभी प्रकार के वे आंतरिक नैतिक मूल्य तथा आदर्श समाहित रहते हैं जिन्हें हम अपने माता-पिता और समाज से प्राप्त करते हैं। बोलचाल की भाषा में यह **'चाहिये शास्त्र'** से संबंध रखता है। सही गलत का निर्णय लेने में हमें यही मदद करता है। निर्णय लेने में दिशानिर्देश प्रदान करता है। सामान्यतया **सुपर ईगो** का विकास बालक की पांच वर्ष की आयु से होना प्रारंभ हो जाता है। सुपर ईगो के भी दो भाग होते हैं-

1. ईगो आईडियल- सुपर ईगो के इस भाग में अच्छे व्यवहार से संबंधित सभी नियम और मानक रहते हैं। इस अच्छे व्यवहार में हमारे माता-पिता तथा अन्य बड़े लोगों द्वारा निर्धारित तथा समझाये गये और उनके द्वारा स्वीकार किये गये नियम तथा व्यवहार होते हैं। इन नियमों को मानने से मनुष्य को गर्व, नैतिकता और पूर्णता की अनुभूति होती है।
2. आत्मा या कॉन्शियस- इसमें माता-पिता तथा समाज द्वारा अस्वीकृत भावनायें, उनके द्वारा बुरा माने जाने वाले व्यवहार शामिल होते हैं। ये व्यवहार सामान्यतया मना होते हैं और इनको करने से दंड मिलता है तथा मनुष्य को दुख और ग्लानि की अनुभूति होती है।

सुपर ईगो हमारे व्यवहार को परिष्कृत करने और सभ्य बनाने में मदद करता है। यह **इड** द्वारा संचालित सभी असामाजिक आवश्यकताओं का दमन करता है तथा **ईगो** को उन्हें वास्तविकता को छोड़कर समाज द्वारा मान्य आदर्श तरीके से पूरा करने के लिये जोर डालता है। **सुपर ईगो** चेतन, अवचेतन और अचेतन तीनों में व्याप्त रहता है अर्थात् हम अचेतन और चेतन दोनों प्रकार से आदर्शों की गिरफ्त में रहते हैं।

उपरोक्त से यह तो स्पष्ट हो ही गया होगा कि इड, ईगो और सुपर ईगो तीनों यदि बराबर जोर लगाकर काम करें तो मनुष्य पागल हो जाये। इन तीनों का आस्तित्व और अस्तित्व का समायोजन तथा संतुलन ही मानव के संतुलित और पूर्ण व्यक्तित्व का आधार है। यदि इड कहेगा कि मुझे मिठाई खानी है। मां बच्चे को मना करेगी तो इड कहेगा मिठाई तो चाहिये ही इसलिये मैं चोरी करके खा लूंगा। तभी ईगो (उस समय तक बच्चे का ईगो जितना विकसित हुआ होगा, उस अनुसार) कहेगा कि मिठाई तो खाना लेकिन मां को जरा इधर-उधर हो जाने दो, तब धीरे से खा लेना। मां को पता भी नहीं चलेगा। और सुपर ईगो कहेगा कि मिठाई नहीं खानी चाहिये क्योंकि मां ने मना किया है। बुरी बात है। अब इस बात पर पूरी कहानी निर्भर करेगी कि उस बच्चे में ईगो या सुपर ईगो किस हद तक विकसित और मज़बूत हैं!

यही बात ग्राहकों के संदर्भ में अगर कही जाये तो ऊपर जो उदाहरण लिया गया है,

उसी को फिर से तीनों के संदर्भ में लेते हैं। जहां इड ने कहा कि मुझे तो पैसा दुगुना करना है चाहे कैशियर से ही मांग लूं, नहीं देगा तो चोरी कर लूंगा। वहीं ईगो कहेगा कि पहले कैशियर से मांगकर देख लो दे देता है तो ठीक है वरना चोरी कर लेना किंतु चोरी अगर करना तो ऐसे करना कि बैंक वाला स्टाफ देखे न वरना फंस जाओगे किंतु इन दोनों के विपरीत सुपर ईगो आदेश देगा कि चोरी करना बुरी बात है। चोरी नहीं करनी चाहिये। तुम्हें अपना पैसा बैंक की किसी योजना में लगाना चाहिये ताकि बैंक के ब्याज से ही वह दुगुना हो जाये। कैशियर से छीनना भी गलत बात है। मतलब यह कि सुपर ईगो इस ग्राहक को गलत काम करने ही नहीं देगा। अब यह ग्राहक के शरीर और मन की आंतरिक संरचना पर निर्भर करता है कि उसके व्यक्तित्व में उसने अपने माता-पिता या बड़ों से कितने संस्कार पाये हैं। जिसे मनोविज्ञान की भाषा में ईगो आईडियल और कॉन्शियस कहते हैं जो ग्राहक ईगो से अधिक प्रभावित होंगे व तर्कबुद्धि लगायेंगे और किसी न किसी युक्ति से बैंकर के माध्यम से अपना मकसद पूरा करने की कोशिश करेंगे। ऐसे ग्राहकों के साथ बैंकर को अत्यंत सावधान रहने की ज़रूरत है। अग्रिम विभाग वालों को खासकर क्योंकि हम बैंकिंग नियम और व्यवहार में कई नियमों को व्यवहारिक रूप देने के लिये तोड़ते तो नहीं किंतु मरोड़ ज़रूर लेते हैं। ऐसे ग्राहक जिनका **ईगो** अधिक सबल होता है, सदा ही बैंकर के लिये खतरे की घंटी हैं। इसके विपरीत **सुपर ईगो** से नियंत्रित व प्रभावित ग्राहक बैंकर के सच्चे दोस्त होते हैं। वे नियमों के अनुसार कार्य करते हैं, आदर्श व्यवहार प्रदर्शित करते हैं तथा किसी प्रकार की समस्या उत्पन्न नहीं करते। इस श्रेणी के ग्राहक शिकायत नहीं करते बल्कि हर परिस्थिति में सदाचारी और सहयोगी बने रहते हैं। बैंकर होने के नाते हमें इस श्रेणी के ग्राहकों पर अधिक ध्यान देना चाहिये क्योंकि सुपर ईगो प्रभावित ग्राहकों को उत्कृष्ट ग्राहक सेवा देकर हम अच्छाई का एक चक्र प्रारंभ कर लेते हैं जिसमें बैंक, बैंकर तथा ग्राहक सबकी भलाई होती है। बैंकर को इस प्रकार के ग्राहक को अच्छी ग्राहक सेवा देकर आत्मसंतोष और खुशी मिलती है। यह खुशी हमें और अच्छे और अच्छी तरह से काम करने के लिये प्रेरित करती है जिससे हमारे काम की मात्रा तथा गुणवत्ता दोनों बढ़ती हैं। इसी खुश मन से हम घर जाते हैं तो बीवी-बच्चों के साथ खुशी से व्यवहार करते हैं और फिर खुशियां बांटते चले जाते हैं क्योंकि हंसी और खुशियां दोनों ही संक्रामक हैं। एक बार उत्पन्न हो जायें तो बढ़ते चले जाते हैं। ग्राहक की दृष्टि से यदि देखा जाये तो खुश और संतुष्ट ग्राहक हमारे लिये वकालत करके और ग्राहक लायेगा। हमारा ग्राहक आधार बढ़ेगा। वैयक्तिक तौर पर हमसे अच्छे आपसी संबंध बनायेगा जो हमें समाज के किसी खास हिस्से में स्वीकार्यता दिलावायेंगे। जब ग्राहक आधार बढ़ेगा तो बैंक को कारोबार और लाभ दोनों मिलेंगे। उससे हमें वेतन बढ़कर मिलेगा। सबका भला है। संतुष्ट ग्राहक पुनः हमारे पास आयेगा और समृद्धि का चक्र फिर से शुरू हो जायेगा। बस! ज़रूरत है तो इन ग्राहकों को पहचानने की।

जहां तक **इड, ईगो** और **सुपर ईगो** के एक साथ क्रियाशील होने का संबंध है, **ईगो** को **इड** तथा **सुपर ईगो**- दोनों से संघर्ष और विरोध का सामना करना पड़ता है। इन दोनों के संघर्ष के बाद भी **ईगो** अपना काम करता रहता है, इसे **ईगो** की ताकत या **ईगो की सामर्थ्य** कहते हैं। अच्छी ईगो सामर्थ्य वाला व्यक्ति प्रभावशाली तरीके से अपने जीवन का प्रबंधन कर पाता है। **ईगो सामर्थ्य** की कमी या अधिकता व्यक्तित्व को असंतुलित बना देती है। **कम ईगो सामर्थ्य** वाले ग्राहक अपने काम नहीं पूरे कर पाते हैं, निर्णय नहीं ले पाते हैं और **अत्यधिक ईगो सामर्थ्य** वाले ग्राहक बैंकर के काम में बाधा उत्पन्न करने लगते हैं। अतः **ईगो सामर्थ्य** का संतुलित होना संतुलित व्यक्तित्व के लिये अतीव आवश्यक है।

व्यक्ति का **ईगो** अपनी सामर्थ्य के अनुसार **इड** और **सुपर ईगो** का संघर्ष झेलता है। ये संघर्ष या चिंतायें कई कारणों से हो सकती हैं, जिनमें से एक कारण मानसिक चिंता है। जब व्यक्ति को यह चिंता होती है कि यदि उसका नियंत्रण **इड** की मांगों पर से उठ गया तो उसे अपमानजनक स्थिति का सामना करना पड़ेगा या दंड भी मिल सकता है तो इसे मानसिक चिंता कहते हैं। वास्तविक चिंतायें वे चिंतायें हैं जो वास्तविक जगत में होने वाले अप्रिय अनुभवों की आशंका से उत्पन्न होती हैं, जैसे सांप न काट ले, पानी में न गिर पड़ूं आदि। इस प्रकार की चिंता को टालने के लिये **ईगो** टालू प्रवृत्ति अपनाता है। उस स्थिति से दूर जाता है या उसका सामना करने से बचता है। तीसरी चिंता नैतिकता के हनन की आशंका से उत्पन्न होती है। जब हम अपने ही नैतिक मूल्यों का ह्रास होने देते हैं। इस झेल के दौरान कई बार ऐसा होता है कि वह संघर्ष को टालने या अनुभूति से दूर भगाने के लिये हमारा मस्तिष्क कई प्रकार की मानसिक विधियां अपनाता है जिसे मनोविज्ञान की भाषा में **मानसिक रक्षात्मक रचनायें** (Mental Defence Mechenisms) कहते हैं। चूंकि इनसे **ईगो** उन संघर्षों से अपनी रक्षा करता है जो **इड** की अनावश्यक मांगों और **सुपर ईगो के आदर्शवाद** के कारण जन्म लेते हैं, इसलिये इन्हें रक्षात्मक संरचनायें कहा जाता है। इन संरचनाओं के कारण भी ग्राहक का व्यवहार अपने मूल कारणों से अलग कुछ और ही दर्शाता है जिसे बैंकर द्वारा समझना बहुत ज़रुरी है। कुछ महत्वपूर्ण रक्षा रचनाओं का उल्लेख नीचे किया जा रहा है-

अस्वीकृति- यह रक्षा रचना व्यक्ति को अप्रिय या अवांछित घटना, वस्तु या व्यक्ति की उपस्थिति को या अस्तित्व को स्वीकार नहीं करती। ऐसा अक्सर दुर्घटनाओं में होता है कि अत्यधिक दर्द या चोट की अनुभूति से बचने के लिये व्यक्ति बेहोश हो जाता है यदि होश में भी रहता है तो उसे दर्द का भान ही नहीं होता किंतु इस मानसिक रक्षा रचना में शारीरिक और मानसिक शक्ति अत्यधिक मात्रा में खर्च होती है।

हमारे पास एक शिकायत आई थी। ग्राहक जब 6 वर्ष का था तो उसके पिता ने स्वयं तथा उस ग्राहक के नाम में रु. 1 लाख की सावधि जमा रसीद बनवायी थी। उक्त सावधि जमा रसीद का पैसा ग्राहक को वयस्क होने पर मिलना था। इस बीच जीवनचक्र के दौरान

ग्राहक के पिता की अकाल मृत्यु हो गयी और कुछ समय बाद ग्राहक की माता ने दूसरा विवाह कर लिया। उस ग्राहक ने वयस्क होने पर अपनी उच्च शिक्षा हेतु शाखा से उक्त परिपक्वता राशि के भुगतान हेतु आवेदन किया तो शाखा द्वारा यह बताया गया कि उक्त डी आर सी का परिपक्वतापूर्व भुगतान उनके पूर्व पिता ने पहले ही ले लिया था। ग्राहक यह मानने को तैयार ही नहीं था कि उसकी इतनी बड़ी राशि का भुगतान उसके पिता ने अपने जीवनकाल में ही ले लिया था और अब उसे कुछ नहीं मिलने वाला था। चूंकि ग्राहक को इस वक्त पैसे की सख्त ज़रूरत थी और उसके पास कोई और विकल्प नहीं था, वह मानने को तैयार ही नहीं था। वह बार-बार विभिन्न मंचों पर एक ही शिकायत कर रहा था। यही अस्वीकृति थी। इस ग्राहक से यदि बैंकर भी रोष में आकर बात करता तो समस्या का हल नहीं निकलना था। इस प्रकार के ग्राहक को ठंडे दिमाग से, जब उसकी समस्या का समाधान निकल चुका होगा तो इस सत्य को स्वीकार करने में आसानी होगी। जब तक **ईगो** संघर्ष की स्थिति से बाहर नहीं आयेगा, वह इसी प्रकार से कृत्रिम बहानों से अपनी रक्षा करता रहेगा। वास्तविकता को वह संघर्ष से बाहर आने पर ही मानेगा इसलिये ऐसे ग्राहक को मानसिक संघर्ष से बाहर लाने का प्रयास चाहे बैंकर (पैसा प्राप्त करने का कोई विकल्प सुझाकर) या उसके परिजन या मित्रगण कर सकते हैं।

विरेचन- 'विरेचन' एक प्रकार की गौण रक्षा रचना है जो व्यक्ति को संघर्ष से बचाती है। 'विरेचन' का अर्थ होता है निकालना। अपने मन की बातों, कुंठाओं को, चिंताओं को कई बार व्यक्ति दूसरे से कहकर हल्का हो लेता है। इससे उसके मन का संघर्ष काफी हद तक कम होता है। मेरी एक परिचित एक बार मुंबई पदस्थी के दौरान तबियत खराब होने पर एक डॉक्टर के पास गयी थी। वह डॉक्टर होमियोपैथ था। उसकी असिस्टेंट ने एक घंटे तक उसे बिठाकर उससे न केवल नाम गांव और उम्र पूछी बल्कि उसका क्या मन करता है- यह भी पूछा। आप मानेंगे या नहीं मानेंगे, उस असिस्टेंट ने क्या-क्या नहीं पूछ लिया उससे, जिसका तबियत से कोई लेना-देना नहीं था। क्या अच्छा लगता है? क्या बुरा लगता है? क्या इच्छा होती है जो आपको लगता हो कि पूरी होनी चाहिये ! उसमें से क्या-क्या इच्छा पूरी हो चुकी है या पूरी नहीं हो रही है? एक घंटे तक उसकी पूरी कहानी लिखने के बाद फिर उसने मेरी परिचित को बिठा दिया और कहा कि आधे घंटे आप और बैठिये और सोचकर अपने बारे में जो कुछ रह गया हो, बताइये। आपको विश्वास हो न हो, उस एक घंटे के बाद मेरी परिचिता की तबियत सुधर गयी और अगले दिन बिना कोई दवा खाये वह बिल्कुल ठीक थी। मनोविज्ञान की छात्रा होने के नाते मैं भी यह समझ पा रही थी कि डॉक्टर 'विरेचन' का प्रयोग कर रहा था। कारण बीमारी का यह था कि वह महिला मुंबई में अकेली थी और परिवार पूना में था। अंतर्मुखी व्यक्तित्व की स्वामिनी है वह। जब तक सामने वाला पहल न करे, वह कम ही बात कर पाती है। इसी वजह से लोगों से बातचीत कम हो पाती थी और चिंतायें मन में बढ़ती जा रही थीं जो उसे बीमार कर रही

थीं। कह लेने भर से तबियत ठीक हो गयी।

बैंकर को यह सामान्य सा अनुभव होता है जब पेंशनर ग्राहक अपने घर की या पिछली नौकरी की बातें उनसे नाहक ही करने बैठ जाते हैं। हालांकि इससे बैंकर को यही लगता है कि बुजुर्ग लोग आ जाते हैं और हमारा समय खराब करने लगते हैं लेकिन इस बात को इतने हल्के में भी लेने की ज़रूरत नहीं है। वे पेंशनर अपने घरेलू जीवन से अप्रसन्न-असंतुष्ट होते हैं। घर में उनकी बात सुनने वाला कोई नहीं होता क्योंकि उनके आगे की पीढ़ी वाले सभी लोगों के पास अपनी-अपनी व्यस्ततायें होती हैं इसलिये वे इन बुजुर्गों के पास बैठने का समय नहीं निकाल पाते। समय निकाल भी लें तो कोई उनकी बातें सुनने में रुचि नहीं रखता। दूसरी बात यह भी है कि किसी भी व्यक्ति के जीवन का सबसे खुशनुमा समय उसका बचपन या यौवन होता है। बचपन और युवावस्था इन बुजुर्गों का अतीत बन चुकी होती हैं इसलिये बुजुर्ग जब भी बात करेंगे, **...हमारे ज़माने में तो... एक बार की बात है...** जैसे जुमलों से शुरू करते हैं। किसी को भी लगता है कि "लो शुरू हो गये"। ऐसे में बैंकर से थोड़े से धैर्य की अपेक्षा होती है। बेहतर होगा बैंकर अपना काम भी करता जाये और उनकी बात भी सुनता जाये। इससे दो फायदे होंगे। ग्राहक अपने मन की बात कह लेगा तो हल्का हो जायेगा और राहत महसूस करने पर उसे सुखद अनुभव होगा। जब बैंक में (किसी भी कारण से) उसे अच्छा अनुभव होगा तो वह हमारा क्लाइंट और बाद में अधिवक्ता हो जायेगा जो हमें भविष्य में और भी ग्राहक लाकर देगा। अगर वह इतना न भी करे तो तात्कालिक प्रभाव इतना तो होगा ही कि वह ग्राहक बैंकर के ऊपर अपनी बात न सुनने, ध्यान न देने का आरोप तो नहीं ही लगायेगा। एक निराधार शिकायत आने से बच जायेगी। यदि बैंकर गलती से भी, उनके बात कहते-कहते न सुनने का प्रदर्शन करता है, या उठकर चला जाता है तो इन बुजुर्गों को अपमानित होने, उपेक्षित होने का अनुभव होता है और इनके घर में जो अनुभव होता है और जिससे बचने और जिसे विरेचित करने के लिये बैंक में आये हैं, वही अनुभव इन्हें बैंक में भी होने लगेगा। ये खुद को अपमानित महसूस करेंगे और बैंकर द्वारा अभद्र व्यवहार किये जाने की शिकायत कर बैठेंगे। **"सब तें कठिन जाति अपमाना"।** इसलिये बुजुर्ग या उन ग्राहकों के साथ- जो मन से भरे होते हैं- सिर्फ उनकी बात सुनभर लेना ही अच्छी ग्राहक सेवा का पर्याय है। आपको कुछ नहीं करना है- सिर्फ सुनना है। इसलिये **अच्छे श्रोता** बनिये- **आप अच्छे बैंकर साबित होंगे।**

दमन- दमन वह मुख्य मानसिक रक्षात्मक रचना है जिसके द्वारा हमारे अप्रिय अनुभव सायास या अनायास ही चेतन या अचेतन मन में दबा दिये जाते हैं। इनके चेतन मन से हट जाने के कारण ईगो इनके संघर्ष से मुक्ति पा जाता है तथा ये कुंठायें और चिंतायें हमारे अचेतन तथा अवचेतन मन मे दमित हो जाती हैं। दमित हो जाने बाद भी ये मर नहीं जातीं। कोई भी इच्छा, एक बार जन्म लेने के बाद बिना अपनी पूर्ति किये मरती

ही नहीं। चाहे प्रत्यक्ष या परोक्ष- किसी न किसी रूप में हर इच्छा अपनी पूर्ति के लिये प्रयासरत रहती है। ये दमित इच्छायें हमारे अवचेतन और अचेतन मन से ही हमारे आचार-व्यवहार को निर्देशित और नियंत्रित करती रहती हैं। इन दमित इच्छाओं के प्रभाव को जाने-अनजाने हम सब स्वीकार करते हैं। मनोवैज्ञानिक ही नहीं, बल्कि आम आदमी भी इसीलिये ''अरे मन में कुछ रहा होगा'' जैसी अभिव्यक्तियां देते हैं। इससे साबित होता है कि हर व्यक्ति यह मानता है कि हमारे मन में कुछ न कुछ चलता रहता है जिससे हम अनभिज्ञ रहते हैं और जो हमें प्रभावित करता है। दमित इच्छायें छद्म वेश में हमारे व्यवहार को कुछ इस तरह प्रभावित करती हैं कि हम उन्हें पहचान ही नहीं पाते। वह हमारा स्वभाव बन जाता है। उदाहरण के लिये यदि किसी ग्राहक को उसकी किशोरावस्था या बाल्यावस्था में बैंक परिसर के अंदर आकर किसी कारण से भी अप्रिय अनुभव हुआ होगा तो वह ग्राहक वयस्क होने पर भी बैंक परिसर में आने से घबरायेगा। यदि जीवन के प्रारंभिक काल में किसी बैंकर ने उसे डांटा-फटकारा होगा या उसके माता-पिता ने ही बैंकिंग न आने के मुद्दे पर उसे बैंकर के सामने एक चांटा जड़ दिया होगा तो वह ग्राहक वयस्क होने पर सभी बैंकरों से चिढ़ने लगेगा। कारण यह कि उसे बैंक और बैंकर के सान्निध्य में कड़वे, अप्रिय और अवांछित अनुभव हुये हैं। ऐसे ग्राहकों की पहचान यह है कि बात-बात में कहेंगे **मैं तो बैंक में आना ही नहीं चाहता, कौन लाईन में लगे! मेरे पास बैंक में आने और लंबी-लंबी लाईनों में लगने का समय नहीं है!** आदि-आदि। ऐसे ग्राहकों को ऑन लाईन बैंकिंग, ई-बैंकिंग तथा वैकल्पिक सुपुर्दगी चैनलों द्वारा बैंकिंग उत्पाद बेचने सरलतम होते हैं। धीरे-धीरे सुखद व सरल बैंकिंग से इनके अनुभव बदलने लगेंगे।

अब जिन ग्राहकों को बचपन या अब से पहले युवावस्था में कटु अनुभव हो चुके हैं, उनका निदान आज के बैंकर के पास तो नहीं है लेकिन उन अनुभवों को आज के अच्छे और सुखद अनुभवों के द्वारा धूमिल तो किया ही जा सकता है। बैंकों में जो आज हम अच्छे वातावरण, अच्छे व आरामदायक फर्नीचर, हवा-पानी, वी आई पी लांज आदि की व्यवस्था कर रहे हैं, इन सबके पीछे भी ग्राहकों के बैंक परिसर के अनुभवों को सुखद बनाने की मंशा ही है। पिछले कड़वे अप्रिय अनुभव समाप्त तो नहीं हो सकते। हां! नये सुखद अनुभवों से उनकी तीव्रता और कड़वाहट ज़रूर कम हो सकती है। इसका दूसरा पहलू भी है। अच्छे और सुखद अनुभव भी अवचेतन मन में दब जाते हैं। जब कभी दूसरे अवसर पर बैंकिंग करने या बैंक जाने की बात हो तो ये संतुष्ट ग्राहक, जिनके अवचेतन में सुखद बैंकिंग अनुभव दबे हुये हैं, वे अपने बच्चों को भी बैंकिंग के लिये प्रेरित करते हैं। हमें बैंकर होने के नाते अवचेतन और अचेतन दोनों में दमित अनुभवों का सकारात्मक प्रयोग करना होगा।

विस्थापन- विस्थापन मुख्य रक्षात्मक रचना है। इसका क्रियान्वयन तथा प्रभाव मनोवैज्ञानिक ही नहीं, हम सब भी रोज़मर्रा के जीवन में देख सकते हैं और महसूस भी

करते हैं। याद कीजिये बैंक में नौकरी का वो दिन जब आपको अपने अधिकारी से खूब डांट पड़ी थी। आप वहां तो चुप रहे थे किंतु घर आकर खूब गुस्सा किया था, पत्नी का बाहर जाने का प्रोग्राम चौपट कर दिया था और बच्चे को भी डांटा था। न आपकी पत्नी कुछ बोली थी और न ही आपके बच्चे ने आपको कोई उत्तर दिया था। बस! सब लोग बिना खाना खाये सो गये थे। यह विस्थापन ही था। आपके अधिकारी ने आपको डांटा तो आप कुछ नहीं कह पाये थे। कहते या उत्तर देते तो नौकरी पर बन आती, मेमो मिल जाता या बात बिगड़ जाती। आपकी इमेज आपके अधिकारी के समक्ष खराब हो सकती थी। इसलिये चुप रहना आपकी मज़बूरी थी लेकिन घर जाकर आप क्यों चिल्लाये- कभी सोचा आपने? आपकी पत्नी या बच्चे का क्या कसूर था? उन्होंने तो आपको डांटा नहीं था! बस! आपका मूड चौपट था! इसलिये आप उन पर बरस पड़े। कारण यह था कि आपके अधिकारी से आपको अहित की आशंका थी किंतु पत्नी और बच्चे से आपको कोई नुकसान नहीं होना था इसलिये आपने अपनी कोफ्त उन पर निकाली। विस्थापन वह रक्षात्मक रचना है जिसमें हम अपनी कुंठा और आवेग अपेक्षाकृत कम हानिकारक व्यक्तियों या वस्तुओं पर निकालकर हल्के या यों कहिये कि सामान्य हो जाते हैं। इस उदाहरण में हमारा अधिकारी हमारे लिये अधिक नुकसानदायक था और पत्नी और बच्चे से हमें कोई नुकसान होना ही नहीं था इसलिये अधिकारी से प्राप्त अपनी कुंठा हमने बिल्कुल निरापद पत्नी और बच्चे पर उतारी।

बैंक में काउंटर पर काम करते हुये यदि कोई ग्राहक हम पर नाहक ही चिल्ला रहा है, या धमकी या घुड़की दे रहा है, तब भी, जबकि हमारा कोई दोष नहीं है, तो इसके लिये प्रतिक्रिया करने की ज़रूरत बैंकर को कतई नहीं है। नाहक उससे बहस करके अपनी बहुमूल्य ऊर्जा खर्च करने की आवश्यकता नहीं है। सामने वाले व्यक्ति की परेशानी तो समझिये। वह अपने घर से, कार्यालय से, किसी मित्र या परिजन या हो न हो किसी और कार्यालय से झींककर आ रहा होगा। वहां वह अधीनस्थ रहा होगा। चिल्लाने वाला उससे सक्षम रहा होगा इसलिये वहां वह कुछ नहीं बोल पाया होगा। अब चूंकि आपसे उसको कोई खतरा नहीं है, किसी प्रकार के नुकसान की आशंका नहीं है, इसलिये वह चिल्लायेगा आपके ऊपर। आप उसके ऊपर इसलिये नहीं चिल्ला सकते क्योंकि आप एक बैंकर होने के नाते अपनी सीट से बंधे हैं और अच्छी ग्राहक सेवा देने के लिये आप प्रतिबद्ध हैं। इसी का फायदा उठाकर आप पर वह ग्राहक चिल्लायेगा। अब यह आपके ऊपर निर्भर करता है कि आप एक आम आदमी की तरह उत्तर देते हुये उस पर चिल्लाना और गुस्सा करना शुरू कर देते हैं या एक समझदार बैंकर की तरह व्यवहार करते हुये शांत बने रहते हैं। मेरी राय में **विस्थापन** को ध्यान में रखते हुये बाद वाला विकल्प ही चुना जाना चाहिये।

प्रक्षेपण- प्रक्षेपण भी एक मुख्य मानसिक रक्षात्मक रचना है जिसमें ग्राहक अपनी आंतरिक कमियों या दोषों को आपके ऊपर प्रक्षेपित करके आपको आरोपित करेगा।

उदाहरण के लिये यदि ग्राहक धोखेबाज है और वह रिश्वत लेने और धोखे से पैसे बटोरने का अभ्यस्त है तो वह काउंटर पर अपना काम न होने या देर होने पर बैंकर को ही 'घूसखोर' या 'धोखेबाज़' कहना शुरू कर देगा या फिर यदि ग्राहक काउंटर पर बैठे बैंकर को किसी भी कारण से नापसंद करता होगा तो वह यही कहेगा कि आप (बैंकर) मुझे पसंद नहीं करते और इसलिये मुझे बैंकिंग सेवायें देर से देते हो या देने में परेशान करते हो। ऐसा करने से वस्तुतः वह अपने बारे में आपको बता रहा है। इस विधा को हम आम बोलचाल की भाषा में भी कहते-सुनते और समझते हैं। **चोर को सब चोर दिखायी देते हैं।** प्रक्षेपण से ग्राहक अपने दोष को, बिना अपने ईगो के संज्ञान के, बैंकर पर मढ़ने की कोशिश करता है। इससे उस दोष से, जो कि समाज द्वारा अस्वीकृत और अमान्य है, उसके अपने ईगो का संघर्ष कम हो जाता है लेकिन वास्तविक जगत में वह संघर्ष बैंकर के ऊपर आ जाता है। बैंकर को यह आक्षेप सहन नहीं होता और वह भी झगड़े में पड़ जाता है। कोई आवश्यकता नहीं है ग्राहकों के साथ बहस करने की। हर उत्तेजित व्यवहार का कोई न कोई मनोवैज्ञानिक या दैहिक अथवा भौतिक कारण हो सकता है। कारण को छोड़कर हम बैंकर परिणाम का इलाज करने की कोशिश करते हैं और अपनी ऊर्जा नाहक ही बर्बाद करते हैं। चिल्लाते हुये ग्राहक की बात शांत मन से सुनिये और शांति से उन्हें बैंकिंग नियमों और प्रावधानों के तहत ग्राहक सेवा प्रदान कीजिये। संतुष्ट न होने पर अपनी असमर्थता आप व्यक्त कर सकते हैं लेकिन शांत व शालीन ढंग से।

ऐसी बानी बोलिये मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै आपहु सीतल होय।।

यौक्तिकीकरण- यह मुख्य रक्षा संरचना है। इसका प्रयोग भी ग्राहक बार-बार और अनेक बार करते हैं। इसमें अपने दोषों, कमियों को तर्कों और कारणों को देते हुये ग्राहक बैंकर पर मढ़ देते हैं। जैसे यदि कोई ग्राहक अपनी डीआरसी का नवीनीकरण करवाना भूल गया और बैंक द्वारा वह ऑटोमेटिक रूप से सिस्टमजनित प्रक्रिया के तहत पहले जितनी ही अवधि के लिये पुनः नवीनीकृत कर दी गयी, जिसमें गणना के अनुसार ग्राहक को ब्याज राशि कम मिल सकती है, तो ग्राहक इस हानि का दोष बैंकर के मत्थे मढ़ने की कोशिश ज़रूर करेगा कि आपको मुझे याद दिलाना चाहिये था। मैं इस डीआरसी को कम समय के लिये फिक्स करता। आपकी वजह से मेरा नुकसान हो गया वरना मैं तो बड़े हिसाब से चलता हूं, आदि-आदि। याने कि ग्राहक आपका दोष निकालने के लिये हज़ारों बहाने और कारण ढूंढ लेगा। अपने आपको महिमामंडित करने के लिये अपने पच्चीसों गुणों का वर्णन कर देगा। ऐसा होने पर कृपया बैंकर के रूप में शांत बने रहें। यह आम मनोवृत्ति है। आप खुद को उसकी जगह पर रखकर देखिये। क्या आप भी 24 घंटों में कम से कम 4 गलतियों के लिये दूसरों को दोषी नहीं ठहराते? यह तो मानवीय प्रवृत्ति है। जब आप ऐसा करते हैं तो ग्राहक क्यों नहीं ऐसा कर सकता? उसे तो ग्राहक बनाकर

बैंकर ने सभी तरह के व्यवहारगत अधिकार दे दिये हैं लेकिन बैंकर के रूप में हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम ग्राहक के इस यौक्तिकीकरण का उत्तर उसी यौक्तिकीकरण से न दें। बीमारी को समझने की कोशिश कीजिये। यदि उसका इलाज आप नहीं कर सकते तो कम से कम अनावश्यक तरीके से उसके बराबर का उत्तर देकर अपनी बहुमूल्य ऊर्जा तो न खराब कीजिये।

यौक्तिकीकरण से न केवल ईगो की संघर्ष से रक्षा होती है बल्कि इसके प्रयोग से ग्राहक के आत्माभिमान तथा अपने सिद्धांतों की रक्षा भी होती है। इसका स्पष्ट प्रयोग सफलता और असफलता के मामलों में देखने को मिलता है। जब ऐसे व्यक्ति सफल होते हैं तो सफलता का सेहरा अपने सर बांधने की कोशिश करते हैं और असफल होने पर उसका दोष दूसरों को ही देते हैं। अगर ब्याज राशि बढ़ गयी, तो यह ग्राहक की सूझबूझ है और यदि कहीं कम हो गयी तो यह बैंकर की गलती है। इसके लिये बैंकर को बहस करने या ग्राहक से लड़ने की कतई आवश्यकता नहीं है। यह सहज मानवीय प्रवृत्ति है।

प्रत्यावर्तन- यह भी मुख्य मानसिक रक्षा रचनाओं में से एक है। इसमें व्यक्ति परिस्थिति विशेष में ऐसा व्यवहार प्रदर्शित करने लगता है जो उसने कही बचपन में किया हो सकता है जो लोग बचपन में खूब डांटे जाते हैं, वे अप्रिय समाचार सुनकर रोना शुरू कर देते हैं। कुछ लोग अत्यधिक सफाई पसंद होते हैं या कुछ लोग अत्यधिक अव्यवस्थित और फैलावा डालने वाले होते हैं। कुछ लोग अत्यधिक धूम्रपान करने लगते हैं तो कुछ लोग बड़बोले, मौखिक रूप से आक्रामक हो जाते हैं। इन सबके मनोवैज्ञानिक कारण हैं। कोई ग्राहक यदि आक्रोश में आकर हमेशा ही कुछ-कुछ बोलता रहता है तो यह बैंकर की कमी नहीं भी हो सकती है बल्कि यह ग्राहक के बचपन में इसे मुखानंद की शैशवावस्था में खूब फटकार लगायी गयी हो सकती है या फिर पिटाई की गयी हो सकती है। उसी का परिणाम आज उसके प्रौढ़ होने पर प्रत्यावर्तन के रूप में दिखायी देता है इसलिये ज़रूरी नहीं कि आपकी सीट के सामने ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने वाला ग्राहक आप पर ही चिल्ला रहा हो। वह बैंक परिसर और बैंकिंग सेवाओं में किसी थोड़ी सी कमी की वजह से अपने बचपन के अप्रिय अनुभवों की ओर लौट गया है और वर्तमान के अप्रिय अनुभव से बचना चाह रहा है। कई प्रौढ़ उम्र के ग्राहक भी बच्चों जैसे हाव-भाव दर्शाते हैं और वैसी ही हरकतें करते हैं। इसे अन्यथा न लीजिये। यह भी उनके ईगो का संघर्ष से बचने का एक तरीका है। उसे विफल न कीजिये।

प्रतिक्रिया निर्माण- इस रक्षा रचना में वास्तविकता से ठीक उलटा व्यवहार किया जाता है। अपनी अप्रिय और सच्ची भावनाओं को छुपाने के लिये हम उसका विपरीत व्यवहार दर्शाते हैं जैसे यदि कोई ग्राहक हमें नापसंद करता है या हमसे बैंकिंग नहीं करना चाहता किंतु चूंकि हम उस सीट पर बैठे हैं जहां पर ग्राहक को काम है। अब ग्राहक की पसंद से स्टाफ बदला नहीं जाता चूंकि ग्राहक की मज़बूरी है। हमसे ही बैंकिंग सेवा लेना

तो वह अत्यधिक प्रेम से कहेगा श्रीवास्तव जी, मैं तो आपको ही ढूंढ रहा था। आपके बिना तो मेरा काम ही नहीं होता, आदि-आदि। अतः जब भी कोई ग्राहक अत्यधिक प्यार दर्शाये तो कहिये कुछ मत, लेकिन सावधान हो जाईये। यही ग्राहक आपकी शिकायत भी भविष्य में करेगा।

क्रियाशीलता- इसमें व्यक्ति अपने मनोवेगों को दर्शाने के बजाय किसी काम में डूबने की कोशिश करता है।

लक्ष्य निषेध- इसमें व्यक्ति अपने लक्ष्य अप्राप्य होने की दशा में उनमें संशोधन और प्राप्य डिग्री तक निर्धारित कर लेता है। यदि बैंक मैनेजर बनने की इच्छा रही होगी तो कम से कम हम लिपिक ही बनकर संतुष्ट हो लेंगे और उसी में बैंक मैनेजर जैसा उत्कृष्ट कार्यनिष्पादन देने लगेंगे। इससे संघर्ष से बचेंगे।

परोपकार- दूसरों की मदद करके आंतरिक सुख प्राप्त करना। इस प्रकार के ग्राहकों का सदुपयोग हम वैयक्तिक और संस्थागत हित के लिये कर सकते हैं।

उपेक्षा- अप्रिय वस्तुओं या परिस्थितियों को टालना भी एक रक्षात्मक रचना है।

विस्तारण- किसी एक भाग में लक्ष्याधिक उपलब्धि कर जीवन के दूसरे भाग की कमी को पूरा करने से भी ईगो की संघर्ष से रक्षा होती है।

हास्य-व्यंग्य- अप्रिय वस्तु या परिस्थितियों का विशेष हास्य-व्यंग्य ढंग से वर्णन करना। यह सृजनात्मक रक्षा रचना है।

निष्क्रिय आक्रामता- अप्रत्यक्ष रूप से क्रोध का, आक्रामकता का प्रदर्शन करना। इसे बोलचाल की भाषा में ''गिरा गधे से, गुस्सा कुम्हार पर'' कहते हैं। कहीं का गुस्सा कहीं निकालना। ग्राहक सेवा में ऐसा कई बार होता है। यकीन जानिये आप पर दर्शाया जाने वाला क्रोध 1 प्रतिशत से अधिक आपके प्रति नहीं होता। उस 1 प्रतिशत की भी बारंबारता बहुत कम होती है।

ग्राहक द्वारा प्रदर्शित किये जाने अप्रिय व्यवहारों में अधिकांश उसके अपने मन के प्रत्यावर्तन, प्रक्षेपण, यौक्तिकीकरण, विरेचन आदि होते हैं जिसका भान उन्हें खुद ही नहीं होता तो फिर आप क्यों हवा में तलवार चलाकर अपनी शक्ति नष्ट करते हैं? शांत रहिये। शालीन रहिये। सिर्फ कारण समझ लीजिये। समझाने न लग जाईये, ग्राहक समझना ही नहीं चाहेगा। ऐसा इसलिये क्योंकि कोई भी व्यक्ति यह सुनना पसंद नहीं करता कि वह खुद को नहीं समझता। हर कोई यही कहता है कि मैं खुद को अच्छी तरह समझता हूं और तुमको भी। जबकि कोई भी व्यक्ति अपने 5 प्रतिशत चेतन को तो समझ नहीं पाता, 95 प्रतिशत अचेतन को समझने का दावा कर लेता है। यह ग्राहक से अपेक्षा नहीं है कि वह इन बातों को समझे, लेकिन एक बैंकर होने के नाते आपसे अपेक्षा है कि आप इन्हें समझें और अपनी शक्ति व्यर्थ न गंवायें।

प्रयुक्त शब्दावली

अहं	Ego
नैसर्गिक	Natural
सामाजिक मूल्य	Social values
समाज द्वारा मान्य	Socially accepted
अमान्य इच्छायें	Illegal desires
इगो सामर्थ्य	Ego power
मानसिक रक्षात्मक रचना	Mental defence machanism
अस्वीकृति	Denial
दमन	Supression
विस्थापन	Substitution
प्रक्षेपण	Projection
यौक्तिकीकरण	Rationalization
प्रत्यावर्तन	Regression
प्रतिक्रिया निर्माण	Reaction formation
क्रियाशीलता	Action
परोपकार	Charity, benevolence
उपेक्षा	Avoidence
विस्तारण	Extension
हास्य व्यंग्य	Humour
निष्क्रिय आक्रामकता	Passive aggresion

5. व्यक्तित्व और व्यक्ति

सामान्य तौर पर कहा जाये तो अंतर्मुखी व्यक्तित्व को सरलता से उद्दीप्त किया जा सकता है। ये सामाजिक निषेधों को भी सरलता से सीखते हैं। बहिर्मुखी व्यक्तित्व पुरस्कार से प्रभावित होते हैं तो अंतर्मुखी व्यक्तित्व दंड से। बहिर्मुखी व्यक्तित्व को सरलता से उद्दीप्त नहीं किया जा सकता। ये सामाजिक निषेधों के प्रति सरल शिकार नहीं होते हैं।

एक बैंकर को अपने दैनंदिन कार्यनिष्पादन के दौरान ग्राहकों के रूप में कई प्रकार के व्यक्तियों का सामना करना पड़ता है। विभिन्न प्रकार के व्यक्ति विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्वों के मालिक होते हैं। 'किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व में उसके शारीरिक व संज्ञानात्मक दोनों प्रकार के गुण सम्मिलित होते हैं। शारीरिक गुणों में शारीरिक संरचना, गठन, आकार आदि शामिल होते हैं तो संज्ञानात्मक गुण में अभिवृत्तियां, मानसिक ग्रंथियां, स्थायी भाव, संवेग, अचेतन रूप से कार्यरत मानसिक रक्षात्मक संरचनायें, रुचियां तथा विचार आदि होते हैं।' हम कह सकते हैं कि **'व्यक्तित्व' मानव व्यवहार का संगठन तथा एक तरीका है।**

प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व में भिन्न-भिन्न गुणों का संयुक्तिकरण भिन्न-भिन्न प्रकार और परिमाण में होता है। यही कारण है कि हर व्यक्ति अपने आप में अनूठा और अभूतपूर्व होता है। किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व शारीरिक तथा मानसिक रूप से शरीर की कुछ अंतःस्रावी ग्रंथियों की क्रियाशीलता पर निर्भर करता है। इन ग्रंथियों में अनैच्छिक क्रियाओं के फलस्वरूप कुछ स्राव निकलते हैं जिनका प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व पर बखूबी पड़ता है। ये ग्रंथियां हैं- थॉयरायड ग्रंथी, पिट्यूटरी ग्रंथी, पैराथॉयरायड ग्रंथी, सर्वकिंवी ग्रंथी (पैन्क्रियास), प्रजनन ग्रंथी तथा एड्रीनल ग्रंथी आदि। दूसरा निर्धारक तत्व शरीर की रचना तथा स्वास्थ्य है। अच्छे स्वास्थ्य व अच्छी शारीरिक रचना व्यक्तित्व के उद्दीपक मूल्य को बढ़ा देती है। अच्छा स्वास्थ्य व्यक्ति की क्रियाशीलता और समायोजन में सहायक होता है इसलिये अच्छे स्वास्थ्य वाला व्यक्ति स्वीकार्य और श्लाघ्य होता है। शरीर रसायन

तथा परिपक्वता भी व्यक्तित्व पर अपने अपने तरीके से प्रभाव डालते हैं।

यह सभी जानते हैं कि हमारे शरीर में विभिन्न प्रकार के रसायन भिन्न-भिन्न अंगों से स्रावित होते रहते हैं तथा इनके फलस्वरूप कुछ रासायनिक प्रक्रियायें भी शरीर में होती हैं। इन रासायनिक प्रक्रियाओं और परिवर्तनों का भी हमारे व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिये रक्त शर्करा ग्लाईकोज़न के रूप में हमारे शरीर तथा मस्तिष्क को चलायमान रखता है। जब रासायनिक क्रियाओं के दोषपूर्ण होने से रक्त शर्करा का ग्लाईकोज़न के रूप में परिवर्तन नहीं हो पाता है तो मांसपेशियों और मस्तिष्क में ग्लाईकोज़न की कमी से थकान, सुस्ती, चिड़चिड़ापन आ जाता है और स्थिति बिगड़ने पर अवसाद की स्थिति भी आ जाती है। इस प्रकार के व्यक्तित्व का समाज में उद्दीपक मूल्य गिर जाता है। इसी प्रकार, व्यक्ति बालपन से बड़ा होते-होते परिपक्व होता जाता है। इस परिपक्वता का प्रभाव भी उसके व्यक्तित्व पर पड़ता है। अधिक परिपक्व ग्राहक अपेक्षाकृत संगठित व्यक्तित्व वाले व समायोज्य होते हैं तथा एक बैंकर के रूप में हमें उनसे समस्यायें अपेक्षाकृत कम होती हैं किंतु अपरिपक्व ग्राहकों में अज्ञानता और अपरिपक्वता के कारण समायोजन की कमी रहती है। अतः बैंकर को सबसे अधिक समस्यायें इसी प्रकार के ग्राहकों से होती हैं। व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कुछ कारकों मे सामाजिक कारक भी हैं जैसे माता-पिता की उपस्थिति, पारिवारिक संबंध, परिवार का आकार, परिवार का आर्थिक स्तर, स्कूल तथा साथी समूह व सांस्कृतिक कारक। माता-पिता की उपस्थिति तथा उनसे अनुकूल भावात्मक संबंध व्यक्ति को समायोजित और संगठित व्यक्तित्व का स्वामी बनाते हैं। इन दोनों महत्वपूर्ण कारकों के अभाव में व्यक्ति हर समय चौकन्ना, भयभीत तथा काकचेष्टा वाला हो जाता है। परिवार के अन्य लोगों का व्यक्ति के प्रति व्यवहार भी उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। यदि परिवार से व्यक्ति को स्वीकृति, सहिष्णुता, साहचर्य, संरक्षण, स्नेह आदि की भावनायें मिलती हैं तो वह संगठित व्यक्तित्व का स्वामी बनता है। इसी प्रकार छोटे परिवारों में रहने वाले व्यक्ति संगठित व्यक्तित्व वाले होते हैं किंतु अकेला बालक या व्यक्ति जिद्दी और असामाजिक बन जाता है। बड़े परिवार में रहने वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व में सहिष्णुता, बांटकर उपयोग करने की आदत, समानुभूति, सहानुभूति तथा सामाजिक गुणों का आधिक्य होने से वह व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक सामाजिक होता है बनिस्बत किसी छोटे परिवार वाले व्यक्ति के। यदि ध्यानपूर्वक पालन-पोषण नहीं किया गया हो तो छोटे परिवारों में रहने वाले व्यक्ति अपेक्षाकृत आत्मकेंद्रित तथा स्वार्थी हो जाते हैं। उनमें समानुभूति व सहानुभूति की कमी पायी जाती है। एक बैंकर के रूप में हमारे लिये बड़े परिवारों से आने वाले ग्राहक छोटे परिवारों में रहने वाले ग्राहकों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक सुविधाजनक होते हैं, तथापि इसका एक और विपरीत प्रभाव भी हो सकता है। सामान्यतया बड़े परिवारों में मूलभूत आवश्यकतायें प्रचुर मात्रा में नहीं होतीं और सीमित साधनों को ही बांटकर उपयोग किया जाता है, ऐसे में तेरा-मेरा, अपना-

पराया, छीनकर खाने की प्रवृत्ति भी जन्म ले सकती है जो ग्राहक और बैंकर दोनों के रूप में व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती है। इस दृष्टि से परिवार का आकार तथा परिवार की आर्थिक स्थिति भी ग्राहक और बैंकर दोनों के व्यक्तित्वों को प्रभावित करती है।

सामान्यतया व्यक्तित्व के लक्षणों में स्थिरता का गुण होता है अर्थात् किसी भी व्यक्ति के गुण चिरकाल तक यथानुसार ही रहते हैं। हालांकि परिवर्तन की कुछ संभावनायें अवश्य विद्यमान रहती हैं तथापि ये परिवर्तन व्यक्तित्व के मौलिक स्वरूप को परिवर्तित नहीं कर सकते केवल उसका बाह्य स्वरूप परिवर्तित कर सकते हैं। छोटे बच्चों में व्यक्तित्व का कोर भाग अच्छी तरह से स्थापित नहीं हुआ होता है, इसलिये उनमें परिवर्तन सरलता से आ सकता है। बालक की आयु वृद्धि के साथ ही व्यक्तित्व के कोर भाग में स्थायित्व और स्थिरता आते जाते हैं। एक बार व्यक्तित्व के कोर भाग के सुदृढ़ और स्थिर होने के बाद उसमें परिवर्तन अत्यधिक दबाव और प्रयास से ही हो सकते हैं। ये परिवर्तन भी तभी होते हैं जब उक्त व्यक्ति अपने प्रति दूसरों की प्रवृत्तियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखता है।

संसार में सभी व्यक्ति सरलतम और जटिलतम परिस्थितियों में स्वयं को समायोजित करने का गुण अपने में संजोये हुये रहते हैं। इस समायोजन में वे व्यक्ति अधिक सफल होते हैं जिनका व्यक्तित्व संगठित होता है और वे व्यक्ति असफल रहते हैं जिनका व्यक्तित्व विघटित होता है। संगठित व्यक्तित्व वह है जिसमें सुरक्षा की भावना, जीवन का वास्तविक उद्देश्य, वास्तविकता से प्रभावपूर्ण संबंध, उपयुक्त स्वछंदता, उपयुक्त संवेगात्मकता, उपयुक्त आत्म मूल्यांकन, उपयुक्त मात्रा में पूर्व अनुभवों से सीखने की योग्यता तथा समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के गुण विद्यमान हों। हर व्यक्ति में उपरोक्त सभी गुण विद्यमान हों- ऐसा संभव नहीं भी होता है। कभी-कभी कुछ व्यक्तियों में कुछ विशेषतायें विघटित व्यक्तित्व की भी हो सकती हैं किंतु उनकी संख्या व मात्रा में कमी हो सकती है। सामान्य जीवन व बोलचाल की भाषा में हम इन व्यक्तियों को भी सामान्य और संगठित व्यक्तियों की श्रेणी में ही गिनते हैं किंतु इन असामान्य गुणों की मात्रा व संख्या अधिक होने पर उक्त व्यक्ति को विघटित व्यक्तित्व वाला ही माना जायेगा। विघटित व्यक्तित्व के व्यक्तियों में स्वप्नचारिता, हिस्टीरिया, स्मृतिभ्रंशता, स्नायु दौर्बल्य, मनोविदलता (अवसाद) आदि लक्षण पाये जाते हैं तथापि इन लक्षणों की संख्या व मात्रा किसी व्यक्ति के 'सामान्य' और 'असामान्य' होने में बहुत बड़ी भूमिका निभाती है।

यह तथ्य कुछ कम लोग जानते हैं कि शारीरिक बनावट देखकर भी व्यक्ति का स्वभाव जाना जा सकता है। इसके लिये शारीरिक बनावट का अध्ययन करना ज़रूरी होता है। यदि सामने खड़े ग्राहक के शरीर की बनावट और संरचना देखकर हम उसके स्वभाव और पसंद को समझ सकें तो संभवतः एक बैंकर होने के नाते हमारे पास बहुत बड़ा हुनर आ जाता है। शारीरिक बनावट व अन्य अंतरों के आधार पर निम्नलिखित प्रकार के व्यक्ति हमारे सामने ग्राहकों के रूप में आ सकते हैं-

- **गुस्सैल-** इस प्रकार के व्यक्तियों में पीले पित्त की अधिकता पायी जाती है। पीले पित्त की अधिक उपस्थिति से ये बेचैन, गुस्सैल, क्रोधी और तुनकमिज़ाज हो जाते हैं तथा छोटी-छोटी बातों पर तुनकने और आक्रामक होने लगते हैं। इनसे संभलकर और कम बात करनी चाहिये क्योंकि पता नहीं कब और कौन सी बात पर ये तुनक जायें।
- **विषादी-** ये काले पित्त की प्रधानता वाले होते हैं। इनके शरीर में काले पित्त की अधिकता पायी जाती है। इससे ये विषादी और निराशावादी हो जाते हैं। इनसे बैंकर को स्वयं उत्साहित होकर व आशावादी तरीके से बातचीत करनी होती है क्योंकि ये हर बात में निराशा ढूँढ लेते हैं।
- **उत्साही-** इन व्यक्तियों में रक्त की अधिकता के कारण अति उत्साह व खुशमिजाजी देखने को मिलते हैं। ये आशावादी होते हैं और हमारे लिये सुविधाजनक ग्राहक होते हैं।
- **विरक्त-** ये कफ प्रकृति वाले लोग होते हैं जिनके शरीर में कफ का आधिक्य रहता है। कफ स्वयं जड़ है और इसमें गति का अभाव है। अतः यह व्यक्ति के शरीर को भी निष्क्रिय बना देता है। ऐसा व्यक्ति शांत, निष्क्रिय तथा भावशून्य होता है। इनसे वार्ता करने के लिये बैंकर को ही पहल करनी पड़ती है। बिना मांगे परामर्श भी देना पड़ता है।
- **स्थूलकाय-** इन्हें पिकनिक टाइप भी कहा जाता है। यह संज्ञा इस प्रकार के व्यक्तियों की बिना कहे ही शीलगुण की व्याख्या करती है। ये मोटे, स्थूलकाय, गोलाकार, छोटे और मोटे होते हैं। यह भरे शरीर वाले तथा गोल मुंह वाले, कोमल तथा मांसल होते हैं। इनकी टांगों और भुजाओं में मांस अधिक होता है। इनका पेट निकला हुआ तथा मांसपेशियां लटकी हुयी होती हैं। इनका शरीर इतना भारी होता है कि इनके उठने-बैठने तथा चलने-फिरने में शिथिलता दिखायी देती है। शारीरिक कार्य करने पर ये शीघ्र ही थक जाते हैं। ये मित्रवत, सामाजिक तथा खुशमिज़ाज होते हैं। दुख-सुख से शीघ्र प्रभावित होने वाले, चंचल प्रवृत्ति वाले तथा खाने-पीने के शौकीन होते हैं। खाने-पीने की वस्तुओं पर अधिक खर्च करते हैं तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यंजन इन्हें बहुत पसंद होते हैं। ये लोग शिष्टाचार वाले, सामाजिक नियमों को मानने वाले, धैर्यवान तथा मर्यादा प्रेमी होते हैं। ये बहिर्मुखी तथा जनप्रेमी होते हैं। सामाजिक कार्यक्रमों में भाग लेने वाले तथा पारस्परिक संबंधों को निभाने वाले होते हैं। चिंता बहुत कम करते हैं तथा स्थितियों का सामना बड़े धैर्यपूर्वक करते हैं। इसलिये समाज में कई बार लोग इनसे ईर्ष्या भी रखते हैं। इनमें सहिष्णुता का गुण अधिक होता है इसलिये इनके लड़ाई-झगड़े कम होते हैं और ये स्वयं भी लड़ाई-झगड़ों से दूर रहते हैं। ये लोगों के बीच बड़े प्रिय होते हैं। किसी रंजिश को मन में

नहीं पालते। ये दुखी व्यक्तियों से न केवल सहानुभूति रखते हैं बल्कि उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाले होते हैं।

एक बैंकर के रूप में हमारे लिये स्थूलकाय ग्राहक सराहनीय, कम असुविधाजनक, व्यवसाय के लिये लाभप्रद, शिकायतों से दूर रहने वाले तथा सहिष्णु साबित हो सकते हैं। साथ ही बैंकों द्वारा आयोजित की जाने वाली ग्राहक बैठकों, संगोष्ठियों तथा दावतों में ये हमारे निश्चित आगंतुकों में से हो सकते हैं। सामाजिक होने तथा अन्य लोगों के बीच में प्रिय होने के कारण इन ग्राहकों को संतुष्ट करके हम इनसे और ग्राहक प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि इनका सामाजिक दायरा और प्रतिष्ठा पर्याप्त विस्तृत होते हैं।

- **कृशकाय-** ये लंबे, दुबले-पतले, कम शारीरिक भार वाले होते हैं। इनकी हड्डियां लंबी, पतली और कमजोर होती हैं। इनकी दुर्बलता इनके चेहरे, गर्दन, हाथों-पैरों तथा जांघों में भी दर्शित होती है। ये आत्मकेंद्रित, शांत स्वभाव वाले, एकांतप्रिय, समाज के नियमों को मानने वाले, अंतर्मुखी तथा अपने काम से काम रखने वाले होते हैं। बहुत अधिक महत्वाकांक्षी और बहुत अधिक भावुक होते हैं। इनमें महत्वाकांक्षा और द्वंद्व की स्थिति अधिक पायी जाती है। सामाजिक उत्सवों में भाग लेना या कहीं आना-जाना इन्हें पसंद नहीं होता। हर चीज़ या बात को गोपनीय रखना पसंद करते हैं। शर्मीले और संकोची स्वभाव के होते हैं। ये अत्यधिक संवेदनशील तथा चिंतालू प्रकृति के होते हैं। जल्दी उत्तेजित हो जाते हैं।

  बैंक प्रबंधन की ओर से यदि इस विशेषता वाले स्टाफ की बात की जाये तो ऐसे व्यक्तियों को मानव संसाधन विभाग, सतर्कता विभाग या अंकेक्षण विभागों की पदस्थी दी जा सकती है, जहां गोपनीयता की सर्वाधिक आवश्यकता होती है। बैंकर और ग्राहक के नज़रिये से यदि बात करें तो इस प्रकार के ग्राहकों से वादविवाद करना शिकायतों को जन्म देना होगा क्योंकि ये संकोची होने के कारण अपनी बात पूरी तरह से कह नहीं पाते और बैंकर बिना कहे समझ नहीं पायेगा। सामाजिकता की कमी के कारण ये अधिक बातचीत भी पसंद नहीं करेंगे और बिना बात किये तो बात बनती नहीं इसलिये ये बेबस होकर अंततः उत्तेजित हो जाते हैं और बैंकर तथा इस प्रकार के ग्राहक के बीच संघर्ष व टकराव की स्थिति आ सकती है। इनसे बातचीत करते समय ध्यान रखने की ज़रूरत होती है क्योंकि ये अतिसंवेदनशील होते हैं। छोटी सी बात का भी बुरा मान सकते हैं। बैंक द्वारा आयोजित किये जाने वाले उत्सवों में यदि इसी प्रकार के सारे ग्राहकों को आमंत्रित किया जायेगा तो पंडाल पूरा खाली ही नज़र आयेगा।
- **पुष्टकाय-** इनकी शारीरिक संरचना कमोबेश खिलाड़ियों जैसी सुगठित और सुदृढ़ होती है। कमर पतली, सीना उभरा हुआ तथा कंधा चौड़ा होता है। इनकी हड्डियां

तथा मांसपेशियां मज़बूत होती हैं। इनके शरीर का अनुपात उचित होने से ये सुंदर दिखायी देते हैं। इनका स्वभाव व व्यवहार अतिउत्साही व जोशीला होता है। साहस भी पर्याप्त मात्रा में होता है इसलिये इस प्रकार के लोग साहसी कार्य खूब कर लेते हैं। ये दूसरों पर प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास करते हैं तथा अपने इस प्रयास में सफल भी हो जाते हैं। निर्भीक व उत्साही होते हैं। ये स्थिर स्वभाव वाले होते हैं तथा सुख-दुख व हार-जीत से अधिक प्रभावित नहीं होते। समाज के अधिकांश नागरिकों द्वारा इन्हें पसंद किया जाता है। इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा अधिक होती है। इनमें संवेगात्मक दृढ़ता पायी जाती है। इन्हें सही मायनों में सफल व्यक्ति कहा जा सकता है।

ये मेहनत के कार्य अधिक संख्या में तथा अधिक मात्रा में सफलतापूर्वक करते हैं। शक्ति और ऊर्जा अधिक मात्रा में होने के कारण ये कर्मवीर होते हैं। इस प्रकार के बैंकर से संस्था को अत्यधिक कारोबार और गुणवत्तापरक कार्य तथा लाभप्रद व्यवसाय दोनों मिलते हैं। ये अपनी संस्था की आस्ति होते हैं। व्यायाम प्रेमी, चुनौतियां स्वीकार करने वाले, संकट को चुनौती के रूप में स्वीकार करने वाले, जोखिम भरे कार्यों को सफलतापूर्वक अंज़ाम देने वाले होते हैं। जब भी इनके सामने कोई समस्या उत्पन्न होती है तो ये भरपूर शक्ति से उसका सामना करते हैं तथा समाधान खोज निकालते हैं। मनोरंजन प्रेमी होते हैं। इनका व्यवहार प्रौढ़तापूर्ण और परिपक्वतापूर्ण होता है।

बैंक प्रबंधन की ओर से स्टाफ के लिये यदि सोचा जाये तो ऐसे बैंकर को ग्राहकों से सीधे जुड़े कार्यों में लगाया जाना उपयुक्त होगा क्योंकि इस प्रकार का स्टाफ ग्राहकों को उत्कृष्ट सेवायें प्रदान करने के लिये, उनकी समस्याओं को सुनने व ग्राहक संतुष्टि के दृष्टिकोण से समाधान निकालने के लिये परम उपयुक्त होता है। उत्साही व कर्मवीर प्रकार का होने के कारण इस प्रकार का बैंकर अपने ग्राहकों का भी प्रिय बन जाता है और संस्था की ब्रांड इमेज को निखारने में दंड पताका की तरह कार्य करता है। एक बैंकर की ओर से यदि ऐसे ग्राहक के बारे में सोचा जाये तो ऐसा ग्राहक हमारे ग्राहक आधार को बढ़ाने में हमें अच्छा सहयोग दे सकते हैं। इनका सामाजिक संपर्क अधिक होता है। इसलिये इनसे हमें और नये ग्राहक मिल सकते हैं। ऐसा ग्राहक हमारे लिये अधिवक्ता का कार्य भी कर सकता है और संस्था की योजनाओं को प्रचारित करने का चलता-फिरता विज्ञापन भी बन सकता है। इससे हमें जमा राशियों व अग्रिमों के लक्ष्य पूरे करने में सहायता मिल सकती है। इसलिये यह ग्राहक हमारे लिये बड़े काम का हो सकता है। ऐसे ग्राहकों को हमें अपने पाले में उसी तरह से रोककर रखने की ज़रूरत है जैसे मुर्गी अपने पंखों के नीचे अंडों को छुपाकर सुरक्षित रखती है।

- **मिश्रितकाय-** इस प्रकार के व्यक्तियों में स्थूल काय, कृश काय तथा पुष्टकाय- तीनों प्रकार के व्यक्तित्वों का सम्मिश्रण होता है, जो परिस्थिति विशेष में प्रकट होता रहता है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि कोई भी व्यक्तित्व पूरी तरह से एक प्रकार का नहीं होता। हमेशा हर व्यक्तित्व में मिश्रित गुण होते हैं और संतुलित व्यक्तित्व भी वही माना जाता है जिसमें तीनों प्रकार के व्यक्तित्व के बराबर-बराबर गुण विद्यमान हों। ऐसे ग्राहक से हमें यथायोग्य यथासमय अवसर प्राप्त होने पर लाभ लेना आना चाहिये।
- **अंतर्मुखी-** इस प्रकार के व्यक्ति कल्पनाशील, एकांतप्रिय, मननशील, अपने ही विचारों, भावनाओं और आदर्शों में लीन रहने वाले तथा मितभाषी होते हैं। ये लोगों से मिलना-जुलना पसंद नहीं करते तथा लोगों की आमद को अपने मनन में व्यवधान के रूप में देखते हैं। ये आत्मकेंद्रित होते हैं तथा अकेले रहना अधिक पसंद करते हैं। हमारी आनंद शक्ति या तो अंतस् की ओर प्रवाहित होती है और या फिर बाहर की ओर। अंतस की ओर प्रवाहित होने वाली लिबिडो अर्थात् आनंद शक्ति व्यक्ति को आत्मसुख में लीन रहने वाला बनाती है तथा इस प्रकार का व्यक्ति सारा आनंद अपने आंतरिक जगत में ढूँढता है। ये खुद से प्यार करते हैं, खुद से खुश रहते हैं। ऐसे स्टाफ को बैंक शाखाओं में उन स्थानों पर पदस्थ करना समीचीन होगा जो ग्राहक सेवा से सीधे जुड़े न हों। असामाजिक होने के कारण ये लोग अधिक घुलना-मिलना पसंद नहीं करते हैं। यदि ग्राहक को देखा जाये तो अंतर्मुखी ग्राहक मितभाषी तथा संकोची होते हैं। इनकी कही और अनकही दोनों बातों को समझना बैंकर की समस्या होती है, न कि इनकी अपनी। अंतर्मुखी भी कई प्रकार के होते हैं जैसे-
    1. **अंतर्मुखी भाव, बहिर्मुखी सोच तथा निर्णय-** ये **कर्त्तव्यपरायण** के नाम से भी जाने जाते हैं। ये अनुभव तो अंतर्मुखी होकर करते हैं किंतु इनकी सोच व क्रियायें बहिर्मुखी होती हैं। अर्थात् अपने कर्त्तव्यबोध को अपनी ज्ञानेंद्रियों द्वारा गहराई से अनुभव कर समाज व देश के प्रति तार्किक रूप से उनका निर्वहन करते हैं। ये चुप रहने वाले, संरक्षा व शांति को पसंद करने वाले जीव होते हैं। इनका कर्त्तव्यबोध इन्हें गंभीर व्यक्तित्व प्रदान करता है। जिस काम को अपने हाथ में ले लेते हैं, पूरा करके छोड़ते हैं। स्टाफ के रूप में ये प्रबंधन के लिये भरोसेमंद स्टाफ साबित हो सकते हैं। ये भरोसेमंद, निष्ठावान तथा विश्वसनीय होते हैं। इनकी नज़र में ईमानदारी तथा सद्भावना का अत्यंत महत्व है। हालांकि ये हर बात को गंभीरता से लेते हैं तथापि परिवार और कार्यस्थल पर अक्सर ये मनोरंजनपूर्ण व्यवहार भी करते हैं। नियमों और परंपराओं का आदर करने वाले, तथा ऐसी ही आशा दूसरों से भी करने वाले होते हैं। यदि नियम से बाहर जाने में इन्हें कुछ अच्छा नज़र आता है तो उसे भी प्रोत्साहित भी करते हैं। यदि

इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले लोग अपने पूर्वानुमान की शक्ति का विकास उचित तरीके से नहीं करते, तो वे किताबी हो जाते हैं और हर काम को लिखित नियमों के अनुसार करते हैं। ऐसे में इनका दृष्टिकोण बहुत अधिक व्यावहारिक न होकर किताबी हो जाता है जो नुकसानदेह साबित होता है। ये वादे के अनुसार काम पूरा करके देने वाले होते हैं। इस वजह से भी, दूसरे, इन्हें ना करना नहीं आता- इस वजह से भी, चाहे-अनचाहे इनके पास काम अधिक रहता है जिसे निपटाने के लिये ये निर्धारित घंटों से अधिक काम करते हैं। लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये ये सारी कायनात एक कर सकते हैं किंतु जो काम इन्हें मतलब का ना लगे, उसके लिये तिनका भी हिलाने में अपनी ऊर्जा नष्ट नहीं करते। वे अकेले काम करना पसंद करते हैं किंतु जब परिस्थिति की मांग हो, टीम में भी बहुत अच्छा प्रदर्शन करते हैं। वे उत्तरदायी बनने में अच्छा अनुभव करते हैं तथा प्राधिकार वाली स्थिति में आनंदित होते हैं। इनके पास तथ्यों की भरमार होती है। वे तथ्य जो ये अभूतपूर्व तरीके से अपनी ज्ञानेंद्रियों द्वारा प्राप्त करते हैं। ये किसी उस विचार या सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते जो इनके विचारों या सिद्धांतों से मेल न खाता हो किंतु यदि वह विचार या सिद्धांत यदि इनके किसी प्रिय या आदरणीय व्यक्ति द्वारा कहा या बताया जाये या उसका महत्व और प्रासंगिकता इन्हें समझा दी जाये तो ये उसे हृदय से अपना लेते हैं तथा उसकी पूर्ति तक उसका समर्थन करते रहते हैं। ये अपने परिवार और प्रिय व्यक्तियों के प्रति कर्त्तव्यबोध से भरे होते हैं। अपने परिवार को सही तरीके से चलाने, माता-पिता की भूमिका को भली-भांति निर्वहन करने के लिये किसी भी हद तक प्रयास कर सकते हैं। जिम्मेदार माता-पिता होते हैं। अपने भावों और स्नेह का प्रदर्शन करने में ये बहुत आगे नहीं रहते। अपनी इन भावनाओं को वे शब्दों से न कहकर क्रियाओं से कहते हैं। यदि परिवार में किसी को इनके सहयोग की ज़रूरत हो और इन्हें इस तथ्य का पता चल जाये तो ये दिल से उसके लिये करते हैं। कठोर परिश्रमी, योजनाबद्ध तरीके से कार्य करने वाले होते हैं। अपने लक्ष्य के आड़े आने वाली बाधाओं को धत्ता बताने वाले, अपने काम का श्रेय खुद न लेने वाले तथा अपनी उपलब्धियों को प्राकृतिक उपहार व प्रक्रिया का फल मानने वाले होते हैं। संक्षेप में, ये सक्षम, शक्ति से भरपूर, तार्किक, व्यवहारी, प्रभावशाली, अकेले तथा टीम दोनों में काम करने वाले तथा जीवन मे शांति व संरक्षा की भावनाओं का संवर्धन करने वाले व्यक्ति होते हैं जो अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में कुछ भी कर सकते हैं। उपरोक्त गुणों और विशेषताओं के कारण प्रबंधन के लिये ऐसा स्टाफ काम का होता है किंतु यदि ऐसा ग्राहक बैंकर के सामने आये तो बैंकर

को उसकी कम कही बातों को अधिक समझना तथा उसके काम को विधिपूर्वक बैंकिंग नियमों के अनुसार करके देना उचित होता है। इनके साथ 'चलता है' वाली अप्रोच नहीं चलती। फिर भी यदि इन्हें जमा राशियां जुटाने या ग्राहक आधार बढ़ाने के लिये उपयोग किया जाये तो बैंकर को बेहतर परिणाम मिल सकते हैं बशर्ते इस कार्य को इस प्रकार के ग्राहक स्वीकार कर लें और करने का वादा कर लें।

- **अंतर्मुखी विचार और बहिर्मुखी ज्ञान**- ये **मिस्त्री** जैसी प्रकृति के होते हैं। इनका विचार अंतर्मुखी होता है किंतु इनका ज्ञान बहिर्मुखी होता है। तार्किक होते हैं। विधियों, प्रक्रियाओं और क्रियाओं को जानने-समझने की प्रबल इच्छा होती है, तार्किक विश्लेषण इनकी शक्ति होता है, इस विश्लेषण को व्यवहारगत क्रियाओं में परिवर्तित करना इनका स्वभाव होता है। वस्तुओं और घटनाओं को नये तरीके से देखने और नये तरीकों को क्रियान्वित करने का इनका शौक होता है। कार्यकारण की प्रबल शक्ति होती है। इनमें साहस का प्राचुर्य होता है। अमूमन ये मोटरसाईकिल, हवाई जहाज, पैराशूट, स्काई डाईविंग, सर्फिंग आदि कार्यों में रुचि लेते हैं। ये चीज़ों को अपने ढंग से करना चाहते हैं इसलिये किसी के अधीन होकर काम करना इन्हें सामान्यतया पसंद नहीं आता। ये नियमों को अधिक नहीं मानते। साहसिक प्रवृत्ति तथा निरंतर क्रियाशील रहने की इच्छा इन्हें एकरस और उबाऊ बनाती है। ये जल्दी बोर होते हैं। ये अपने विश्वासों और कारणों के प्रति निष्ठावान होते हैं। इनका दृढ़ विश्वास होता है कि सभी को समानता और न्याय मिलना चाहिये हालांकि ये समाज में या किसी यंत्र के नियमों को नहीं मानते किंतु ये अपने नियमों के प्रति वफादार होते हैं। ये उन नियमों को नहीं मानते जो इनके व्यक्तिगत नियमों के प्रतिकूल हों। ये अपने भाईयों के लिये अत्यधिक निष्ठावान और विश्वसनीय होते हैं। वैयक्तिक मूल्यों के आधार पर ये कोई निर्णय नहीं लेते। इनका यह मानना होता है कि कोई भी निर्णय बिना किसी भेदभाव के लिया जाना चाहिये। अपने इस गुण के कारण ये कठोरतम निर्णय भी बिना किसी भेदभाव के ले सकते हैं। यही इनका कमजोर बिंदु भी है। ये उच्च कोटि के तकनीकी कौशल से युक्त होते हैं। ये सक्षम व प्रतिभावान तकनीकी नेता हो सकते हैं। औचित्य की भावना इनमें खूब होती है, जिसके कारण ये सक्षम और त्वरित निर्णय ले सकते हैं। ये क्रियाशील होते हैं और टेबल पर बैठकर सारा दिन योजनाओं का निर्माण नहीं कर सकते। इन्हें काम चाहिये जो स्थिति इनके सामने होती है, ये उस पर त्वरित कार्यवाही करते और तत्काल निर्णय लेते हैं।

  ये **मिस्त्री** जब अति तनाव में होते हैं तो क्रोधावेश में आ जाते हैं तथा अति से

युक्त व्यवहार करने लगते हैं। ऐसा करके वे अपने उन भावों को संबंधित लोगों से बांटना चाहते हैं किंतु आवेश के कारण उनका तरीका उचित नहीं होता। फट पड़ते हैं। तनाव की स्थिति में ये अपनी असफलता के प्रति स्वयं की असमर्थता के कारण स्वयं को दोषी ठहराते हैं तथा अत्यंत शोक की अवस्था में कार्य को पूरा करना चाहते हैं, जो अंततः बुरा और अवांछित परिणाम ही लाता है। संकट की घड़ी में ये उत्कृष्ट कार्यनिष्पादन देते हैं। इनके हाथों और आंखों का समन्वय बहुत अच्छा होता है। ये बिखरे ज्ञान या परिस्थितियों को समेटने मे सिद्धहस्त होते हैं। ये धैर्यवान व्यक्ति होते हैं किंतु जब वे अपने ही भावों और संवेगों पर ध्यान नहीं दे पाते, तभी ये फटते हैं। जब इन्हें तकनीकी कार्य के क्रियाशील केंद्र बिंदु के रूप में रखा जाये तो ये अत्यंत प्रसन्न होते हैं। ये आशावादी, प्रसन्न, समकक्षियों के प्रति निष्ठावान, सरल इच्छाओं वाले, उदार, विश्वास करने वाले, आदर देने वाले होते हैं किंतु वादा करने में कम विश्वास करते हैं।

एक स्टाफ के रूप में प्रबंधन द्वारा ऐसे व्यक्तियों को तकनीकी कक्षों या वहां, जहां क्रियाशीलता के लिये अधिक अवसर हों, में पदस्थ करना उचित होगा। ये तार्किक और तकनीकी होते हैं इसलिये कम्प्यूटर कक्षों, डाटा वेयरहाउसिंग कक्षों, डाटा सेंटरों, शाखाओं में कम्प्यूटर या अन्य तकनीकी समस्याओं के समाधान हेतु इन्हें कार्य सौंपे जाने चाहिये। इन स्टाफ सदस्यों को ग्राहक सेवा से सीधे जुड़े कार्यों में लगाना उचित नहीं होगा क्योंकि ये तनाव की स्थिति में क्रोधावेश में फट पड़ते हैं और इनका संवेदात्मक नियंत्रण कमज़ोर हो जाता है। अतः ग्राहक सेवा से सीधे जुड़े कार्यों में इनको लगाने से संघर्ष की स्थिति आ सकती है। ग्राहक के रूप में यदि ऐसा व्यक्ति बैंकर के सामने आता है तो इस प्रकार के ग्राहक का काम शीघ्र से शीघ्र करके देना ठीक रहता है, किंतु ऐसा ग्राहक कभी लाइन नहीं तोड़ेगा, धैर्यवान रहेगा तथापि यदि तनाव में होगा तो क्रोधित होकर चिल्ला भी सकता है। उस समय उसकी चिल्लाहट काउंटर पर बैठे बैंकर के प्रति ही होगी और वह उसे सुननी होगी। बैंकर के लिये उचित होगा वह चुपचाप रहे और उनका काम करके दे दे। वाद-विवाद से मामला संघर्ष में बदल जायेगा। ग्राहक संगोष्ठियों में ऐसा ग्राहक चपुचाप पीछे बैठना पसंद नहीं करेगा। उसे किसी न किसी ऐसे काम में या स्थान पर बिठाना होगा जहां वह क्रियाशील रहे और समूह का केंद्र बिंदु रहे।

- **अंतर्मुखी ज्ञान और बहिर्मुखी भाव** - इन्हें **पोषक** भी कहा जाता है। ये अपनी ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से प्राप्त ज्ञान को अंतर्मुखी बनाते हैं किंतु अपने वैयक्तिक मूल्यों में उन्हें क्रियान्वित बहिर्मुखी रूप से करते हैं। उक्त प्राप्त ज्ञान के प्रति

अपने अनुभव को बाहरी जगत के स्तर पर अपने हिसाब से क्रियान्वित करते हैं। ये ठोस व वास्तविक जगत के प्राणी होते हैं। ये गर्मजोशी वाले तथा दयालु होते हैं। सभी लोगों में अच्छाई देखना पसंद करते हैं। ये सामंजस्य व समन्वय को पसंद करते हैं, दूसरों के अनुभवों और भावों को तरज़ीह देते हैं। लोग इन्हें इनकी जागरूकता व वैचारिकता के लिये पसंद करते हैं। सर्वोत्कृष्ट के प्रति अपने विश्वास के कारण ये दूसरों से भी सर्वोत्कृष्ट कार्यनिष्पादन करवा लेते हैं। इनके अंतरमन को सामान्य लोगों द्वारा आसानी से देखा, जाना नहीं जा सकता। अपने लिये महत्वपूर्ण व्यक्तियों तथा परिस्थितियों के बारे में अधिक से अधिक सूचनायें व तथ्य एकत्र करते हैं। इनकी सूचनायें आश्चर्यजनक रूप से शुद्ध व सटीक होती हैं। इनकी संस्मरण शक्ति अद्‌भुत होती है किंतु केवल स्वयं से जुड़े लोगों, घटनाओं व परिस्थितियों के बारे में। वर्षों पुरानी बात को ये चेहरे के भावों, मौसम तथा वातावरण के दृश्य सहित याद रख सकते हैं। अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु इन्हें क्या करना होता है- इन्हें स्पष्ट होता है। नियमों, प्रावधानों, संरक्षा व दयालुता की ये कद्र करते हैं। ये नयी वस्तुओं, प्रक्रियाओं को तब तक नहीं खरीदते जब तक उसकी नयी उपयोगिता के बारे में आश्वस्त नहीं हो जाते। इनका मानना है कि पुरानी वस्तु अपनी उपादेयता व प्रासंगिकता के कारण ही बनी हुयी है। ये पढ़ने की तुलना में करके अधिक सीखते हैं इसलिये ये वैचारिक विश्लेषण वाले क्षेत्रों में अधिक सफल नहीं होते हैं। इन्हें व्यावहारिक क्रियान्वयन अधिक भाता है। इन्हें एक बार कार्य समझ में आ जाने पर और सीख लेने पर बिना थके उस पर काम कर उसे पूरा कर सकते हैं। ये अति विश्वसनीय होते हैं। ये सौंदर्यपरक होते हैं।ये अच्छे इंटीरियर डेकोरेटर हो सकते हैं। दूसरों के भावों का ख्याल रखने की आदत के साथ जब इनका यह सौंदर्यपरक भाव मेल करता है तो दूसरों के लिये उपहार खरीदने में इनका कोई सानी नहीं होता। ये सामान्यतया अपने भावों को अभिव्यक्त नहीं करते। किसी के बारे में एक बार दुर्भावना बना लेने पर इनके दिल से उस विचार को निर्मूल करना लगभग असंभव होता है। जिस प्रकार ये अपने भावों को अभिव्यक्त नहीं करते, उसी प्रकार ये यह भी दर्शित होने नहीं देते कि वे सामने वाले की भावना को समझ रहे हैं, तब तक, जब तक कि वह व्यक्ति स्वयं नहीं बोलेगा। कहने पर उसकी पूरी मदद करेंगे। ये अति जिम्मेदार व कर्त्तव्यपरायण होते हैं। उनकी इसी विशेषता के कारण लोग उन पर भरोसा करते हैं। इन्हें ना कहना नहीं आता, इसलिये इनके पास काम खूब रहता है। ये अपनी असमर्थता या नापसंदगी दूसरों पर जाहिर नहीं करते क्योंकि ये संघर्ष से बचना चाहते हैं। दूसरों की ज़रूरतों को अपनी ज़रूरतों से अधिक

तरज़ीह देते हैं। इन्हें सकारात्मक फीडबैक की आवश्यकता होती है। इसके अभाव में या आलोचना करने पर ये अवसादी और हतोत्साहित हो जाते हैं। ये तनाव की स्थिति में नकारात्मक सोच रखते हैं और किसी भी कमी के लिये खुद को दोषी ठहराते हैं। ये गर्मजोशी वाले, उदार तथा भरोसेमंद होते हैं। ऐसे लोगों को अपने लिये भी कुछ थोड़ा सा प्यार बचाने की ज़रूरत है जिसे वे दूसरों पर लुटाते हैं। अपनी आलोचना ना करें।

- **अंतर्मुखी भाव और बहिर्मुखी ज्ञान**- ये **कलाकार** होते हैं। इसमें व्यक्ति अंतर्मन से अनुभव करता है और अपनी ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से प्रकट करता है। इसीलिये इस प्रकार को अंतर्मुखी अनुभव और बहिर्मुखी ज्ञान का नाम दिया गया है। जैसे एक **कलाकार** पहले अपने आसपास के जगत का अनुभव करता है और फिर उसे अपनी ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से प्रकट करता है। इस प्रकार के व्यक्ति भी ठीक इसी प्रकार का व्यवहार करते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति किसी न किसी प्रकार के कलाकार अवश्य होते हैं। इनके निर्धारित जीवन मूल्य होते हैं, जिनका वे जीवन भर पालन करते हैं। ये चुप और सीमित रहने वाले लोग होते हैं। इन्हें अच्छी तरह से सरलतापूर्वक जाना नहीं जा सकता। ये सबके सामने अपना मंतव्य प्रकट नहीं करते। वे दूसरों के साथ व्यवहार करने में उदार, दयालु तथा संवेदनशील होते हैं। सौंदर्य व कला के उपासक होते हैं। पशुप्रेमी होते हैं। प्राकृतिक सौंदर्य के उपासक। वे मौलिक होते हैं, आत्मनिर्भर होते हैं। जो लोग उन्हें नहीं जानते, वे उन्हें हल्के से ले सकते हैं किंतु ये लोग जीवन को बड़ी गंभीरता से लेते हैं। लगातार विनिर्दिष्ट सूचनायें प्राप्त करते रहते हैं तथा उन्हें अपने जीवन मे उतारते रहते हैं। ये क्रियाशील होते हैं। वे कर्मयोगी होते हैं और बड़े-बड़े सिद्धांतों से दूर भागते हैं। काम करके सीखना चाहते हैं। अभ्यास इनके लिये उपयुक्त है। दूसरों के प्रति जागरूक, दूसरों के बारे में सूचना लेते रहते हैं तथा दूसरों को भी जानने की कोशिश करते रहते हैं। ये गर्मजोशी वाले तथा सहानुभूतिपूर्ण होते हैं। लोगों की देखभाल करते हैं। दूसरों को प्रसन्न करने के लिये सेवा भाव रखते हैं।

  ऐसे लोगों को ग्राहक सेवा से सीधे जुड़े कार्यों में लगाना बेहतर होगा। ये क्रियाशील भी हैं, सहानुभूतिपूर्ण भी और दूसरों की केयर भी करते हैं और सेवा भाव भी रखते हैं। इनसे अच्छा स्टाफ ग्राहक सेवा के लिये हो ही नही सकता। अपने नज़दीकियों की दिल की गहराईयों से खूब देखभाल करते हैं। अपने भावों और देखभाल का प्रदर्शन शब्दों के बजाय क्रियाओं से करते हैं। दूसरों का नेतृत्व करने या उनका नियंत्रण करने की इच्छा नहीं होती। इसी तरह खुद भी नियंत्रित नहीं होना चाहते, न ही अनुयायी बनना चाहते हैं। वे चिंतन-मनन के

लिये एकांत पसंद करते हैं तथा दूसरों की इस आवश्यकता का सम्मान करते हैं। अपनी अति उत्कृष्ट उपलब्धियों का श्रेय स्वयं नहीं लेते। अपने प्रति कठोर निर्णय वाले तथा अति व्यवसायी दृष्टिकोण वाले होते हैं। इनके पास इस संसार को देने के लिये कई सुंदर उपहार होते हैं। विशेषकर कला, सृजन व दूसरों की सेवा के क्षेत्र में। इनके लिये जीवन सरल नहीं बल्कि संघर्ष का नाम है। ये जीवन को गंभीरता से लेते हैं किंतु ये स्वयं तथा अपने साथ जुड़े दूसरे लोगों के जीवन के अनुभव को भी सुखद बनाने का दम रखते हैं।

- **अंतर्मुखी अंतर्बोध तथा बहिर्मुखी भाव**- ये **संरक्षक** कोटि के लोग होते हैं। ये आंतरिक रूप से अपने अंतर्बोध के आधार पर वस्तुओं, व्यक्तियों और घटनाओं को देखते हैं तथा उन्हीं के परिप्रेक्ष्य में प्रतिक्रिया करते तथा तदनुरूप अनुभव करते हैं। ये उदार, दूसरों की देखभाल व परवाह करने वाले, जटिल व्यक्तित्व वाले तथा अत्यधिक अंतर्बोध वाले व्यक्ति होते हैं। कलात्मक तथा सृजनात्मक होते हैं। बाहरी जगत तथा अपने आसपास के वातावरण में सभी कुछ प्रणालीगत तथा सुव्यवस्थित तरीके से रखने में ये अपनी खूब सारी ऊर्जा लगा देते हैं। अपने जीवन की प्राथमिकताओं को बार-बार निर्धारित तथा पुनर्निर्धारित करते रहते हैं। ये अपने सहजबोध के आधार पर आंतरिक कारणों से क्रियाशील रहते हैं तथा इसका कोई ठोस कारण नहीं बता पाते। तथापि ये आश्चर्यजनक रूप से सही होते हैं और ये यह जानते भी हैं कि वे सही हैं। इनका यह स्वभाव स्वतःप्रवर्तित होता हैं। अपने अंतर्बोध पर इन्हें अत्यधिक विश्वास होता है जो इन्हें कभी-कभी जिद्दी बना देता है तथा दूसरों के विचारों की इन्हें परवाह नहीं करने देता। इनका अपने अंतर्बोध पर विश्वास बाह्य जगत से विरोधाभास देता है जिसके कारण सदा सुव्यवस्थित रहने वाले ये संरक्षक बिल्कुल विपरीत व्यवहार करने लगते हैं अर्थात् हमेशा साफ-सुथरा रहने वाले इस व्यक्ति का टेबल बिखरा हुआ और अव्यवस्थित भी हो सकता है जो इनके अंतर्द्वंद्व की स्थिति का वर्णन करता है। ये लोग अपने अंतर्बोध का कारण और उसे शब्दों में अभिव्यक्त नहीं कर पाते। इसलिये अपने आंतरिक जगत के प्रति ये बड़े संरक्षण की भावना रखते हैं। ये अपने मन की बात जितनी कहना चाहेंगे उतनी ही कहेंगे। जब कहना चाहेंगे तभी कहेंगे। वे गहरे जटिल व्यक्ति होते हैं। इन्हें समझना अति दुष्कर कार्य होता है तथा ये गोपनीय व्यक्तित्व वाले होते हैं किंतु ये जितने जटिल होते हैं उतने ही सहृदय भी होते हैं। अपने उन प्रियजनों, जो इनके देखभाल करने के विशेष गुण को परख पाते हैं, के हृदय में इनके लिये विशेष स्थान होता है। ये लोगों के भावों की परवाह करते हैं तथा किसी भी प्रकार के संघर्ष से बचने के लिये उदार बने रहना चाहते हैं। संघर्ष के प्रति ये

बड़े संवेदनशील होते हैं तथा इस प्रकार की स्थिति का सामना नहीं कर पाते। संघर्ष भरी स्थितियों में ये तनाव से भर जाते हैं तथा सामान्यतया शांत रहने वाले ये संरक्षक क्रोधावेश में आकर विद्रोह कर बैठते हैं। ये कभी-कभी संघर्ष को अपने शरीर पर भी ले लेते हैं जिससे स्वास्थ्य संबंधी समस्यायें भी उत्पन्न हो सकती हैं। ये ऐसा समझते हैं कि इनके जीने का तरीका सर्वोत्कृष्ट है। ये हमेशा कुछ न कुछ करके अपने कौशल और स्व को विकसित करने का प्रयास करते रहते हैं तथा संतुष्ट नहीं होते और आराम नहीं करते। वे लगातार विकास में विश्वास करते हैं। अपने कार्य के दौरान इन्हें मनोरंजन का मौका भी नहीं मिलता। अपने हिसाब से जीवनयापन करना पसंद करते हैं। यदि इनके भाव पक्ष को छोड़ दिया जाये तो कुल मिलाकर ये उदार और सीधे होते हैं। इन्हें अपने तथा अपने परिवार से उच्च अपेक्षायें होती हैं। ये पोषक, धैर्यवान, समर्पित आस्तिक तथा संरक्षक होते हैं। अपने बच्चों के साथ इनका अगाध लगाव होता है तथा ये अच्छे माता-पिता साबित होते हैं तथा अपने बच्चों को उनका सर्वोत्कृष्ट प्रदर्शन करवाने में सहायक होते हैं। अपने इसी स्वभाव के कारण कभी-कभी ये जिद्दी भी लगते हैं। तथापि आम तौर पर इस प्रकार के लोगों के बालकों को समर्पित और ईमानदार दिशानिर्देशन के साथ अगाध स्नेह भी मिलता है। कार्य स्थल में ये वहां चमकते हैं, जहां इनके सृजन और कला को निखार मिले, तथा ये स्वतंत्र रूप से कार्य कर सकें तथा अपने अंतर्बोध का उपयोग कर सकें। ये छोटे-मोटे बारीक कामों तथा किसी बड़े लंबे कार्य को अंजाम नहीं दे सकते। या तो वे इस तरह के कार्यों को टालेंगे या फिर इतना बारीकी में घुस जायेंगे कि वे उसका बड़ा व संपूर्ण रूप देख ही नहीं पायेंगे। ऐसा व्यक्ति जो पर्याप्त विस्तृत विवरण में घुस चुका होता है, उन लोगों की कठोर आलोचना करता है जो इतना विस्तृत ज्ञान नहीं रखते। इनके लिये जीवन सरल नहीं होता तथापि इनमें गहरे भाव तथा अनुभव होते हैं तथा इनसे ये व्यक्तिगत उपलब्धियों की प्राप्ति कर सकते हैं।

- **अंतर्मुखी भाव तथा बहिर्मुखी अंतर्बोध-** ये **आदर्शवादी** होते हैं। इस प्रकार के लोग वस्तुओं को आंतरिक रूप से अपने अनुसार विवेचित करते हैं और फिर बाहरी जगत मे अपने अंतर्बोध के अनुसार उनका क्रियान्वयन करते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य जीवन का अर्थ ढूंढना तथा इस संसार को सुंदर बनाना है। वे मानव की सेवा किस प्रकार बेहतर तरीके से कर सकते हैं? उनके जीवन का उद्देश्य क्या है? आदि-आदि इनकी विवेचना के विषय होते हैं। वे आदर्शवादी और संपूर्णतावादी होते हैं और अपने लिये निर्धारित किये गये लक्ष्यों की प्राप्ति में ये स्वयं भी अथक प्रयास करते हैं। ये अन्य लोगों के प्रति अत्यधिक अंतर्बोधी

होते हैं तथा उन्हें निर्देशित करने के लिये अपने अंतर्बोध पर ही विश्वास करते हैं। वे सत्य की खोज में लगे रहते हैं। संक्षेप में ये साधु, महात्मा तथा समाज सेवक कोटि के लोग होते हैं। एक व्यक्ति के रूप में ये वैचारिक तथा मनस्वी होते हैं। ये बड़ी अच्छी देखभाल करते हैं, भावों को हालांकि बहुत अधिक अभिव्यक्त नहीं करते। अच्छे श्रोता होते हैं। दूसरों को समझना चाहते हैं। ये (अपने परिचितों के) बड़े अच्छे मित्र साबित हो सकते हैं। ये संघर्ष से बचते हैं। यदि संघर्ष का सामना करना ही पड़ जाये तो इनके संघर्ष का अपना अलग तरीका होता है। संघर्ष की स्थिति में कौन सही या गलत, इसके बजाय ये इस बात पर जोर देते हैं कि इन्हें यह संघर्ष कैसा अनुभव दे रहा है! अपने अनुभव और भावों के आगे ये यह भी भूल जाते हैं कि वे खुद भी सही हैं या नहीं। वे बुरा महसूस नहीं करना चाहते। संघर्ष की स्थिति में इनकी यह कमजोरी कभी-कभी इन्हें अतार्किक तथा अवैचारिक बना देती है। दूसरी ओर, इस प्रकार के लोग दूसरों को बेहतर तरीके से समझ पाने तथा मदद करने की इच्छा करने के कारण दूसरों के संघर्षों का समाधान बेहतर तरीके से कर सकते हैं। ये अच्छे मध्यस्थ बन सकते हैं। जब तक इनके मूल्यों पर आघात न किया जाये तब तक ये सुप्तावस्था तथा निष्क्रिय बने रहते हैं। किंतु वैसा होने पर यह आक्रामक हो जाते हैं तथा अपने उद्देश्य की रक्षा के लिये भरसक लड़ाई लड़ते हैं। यदि एक बार किसी परियोजना को ये हाथ में ले लें तो वह परियोजना इनका उद्देश्य बन जाती है। हालांकि ये बहुत अधिक विवरण प्राप्त करने में विश्वास नहीं रखते तथापि अपने उद्देश्यों की रक्षा के लिये ये विस्तृत विवरण हासिल कर लेते हैं। ये इहलौकिक जीवन के प्रति सजग नहीं रहते किंतु अपने उद्देश्य से संबंधित हर छोटे-बड़े परिवर्तन के प्रति अत्यधिक सजग होते हैं। तर्कों से दूर रहते हैं। क्रोधावेश में ये बेकार तर्क देते हैं। इनके उच्च मानक होते हैं तथा ये संपूर्ण होते हैं। खुद को श्रेय नहीं देते। समूह में काम करना इन्हें मुश्किल लग सकता है क्योंकि इनके मानक समूह के अन्य सदस्यों के मानकों से बहुत ऊंचे होते हैं। इन्हें सामान्य जीवन की आवश्यकताओं के साथ समझौता करते हुये अपने आदर्शों और मानकों को नीचे लाना अपेक्षित होता है, अन्यथा ये सांसारिक जीवन में समायोजित नहीं हो सकते और खुश भी नहीं रह सकते। आम तौर पर ये लोग उच्च कोटि के लेखक होते हैं। शाब्दिक संप्रेषण में इन्हें समस्या हो सकती है किंतु कागज-कलम के ये शहंशाह होते हैं। ये समाज सेवा में बेहतर साबित हो सकते हैं। सार्वजनिक हितों के लिये काम करना, किंतु वहां, जहां बहुत अधिक गणित या तर्क न हो, इन्हें अच्छा लगता है। **विश्व के सभी बड़े प्रेरक इसी कोटि के होते हैं।**

जहां तक बैंकर के नज़रिये से इसे देखा जाये तो इस प्रकार का स्टाफ कम समस्यामूलक होता है किंतु उनके अहं को, उनके विचारों को आदर देना पड़ता है। यदि उनके नज़रिये को चुनौती दी जाये तो ये अपने नज़रिये को सही साबित करने के लिये कुछ भी करेंगे। विरोध भी और संघर्ष भी, और तब ये यह भी नहीं देखेंगे कि ये सही हैं या गलत। इनकी एक खासियत और भी होती है कि इनके पीछे जनबल का संबल बहुत होता है। इसलिये बहुत बड़ी बात नहीं कि कार्यालय या शाखा के अन्य स्टाफ भी विरोध के नारे लगाते हुये इनके पीछे हो लें, तब भी यदि अन्य स्टाफ सदस्यों को, जो पीछे आ रहे हैं, संघर्ष के कारण का पता न हो। इसलिये संघर्ष की इस स्थिति को टालने के लिये प्रबंधन की ओर से यही किया जाना उचित होगा कि इन्हें ग्राहक निस्तारण समिति, ग्राहक सहायता डेस्क से संबंधित काम सौंपे जायें जहां इनकी सेवा तथा सार्वजनिक हित व समाज सेवा की भावना की तुष्टि हो सके। ग्राहक के रूप में यदि ऐसा व्यक्ति बैंकर के सामने आता है तो बैंकर को चाहिये कि वे इन्हें सम्मानपूर्वक कार्य करके दें। ये ग्राहक न तो लाइन तोड़ेंगे न ही किसी अन्य प्रकार का शोर मचायेंगे। बस इन्हें विश्वास होना चाहिये कि इन्हें समाज सेवक के रूप में बैंकर द्वारा सराहा और स्वीकारा जा रहा है। लाइन तोड़ना तो दूर, ये अपने से पीछे वाले ग्राहक को भी आगे जाने देंगे, वह भी खुशी-खुशी। ऐसे ग्राहकों से ग्राहक आधार बढ़ाने, अन्य ग्राहकों से मतभेद या शिकायतों के कारण हुये गतिरोध को तोड़ने तथा संस्था की ब्रांड इमेज को निखारने में प्रयोग हो सकता है क्योंकि इनके पीछे एक विश्वसनीय समूह रहता है जो इनके निर्देशन पर चलता है।

- **अंतर्मुखी अंतर्बोध तथा बहिर्मुखी सोच**- ये **वैज्ञानिक** वर्ग के व्यक्ति होते हैं। ये अपने अंतर्बोध के आधार पर समझ विकसित करते हैं तथा बाहरी जगत में प्रत्यक्ष रूप से तर्क एवं कार्य-कारण के आधार पर क्रियान्वयन करते हैं। ये लोग विचारों और रणनीति योजना के जगत में विचरण करने वाले व्यक्ति होते हैं। बुद्धि, सक्षमता तथा ज्ञान का इनके लिये बहुत अधिक महत्व है और इन मामलों में अत्यधिक उच्च कोटि के विचार रखते हैं। ये संसार का अवलोकन करने, नये विचारों और संभावनाओं को जन्म देने में लगे रहते हैं। इनकी अंतर्दृष्टि अत्यधिक विकसित होती है तथा नये विचारों को बहुत जल्दी समझ लेते हैं, तथापि उनकी रुचि तथ्यों को समझने में कम और नये तरीके से क्रियान्वित करने में अधिक होती है। इनके लिये प्रणालियों और प्रक्रियाओं तथा संगठनों का बड़ा महत्व होता है। अपने इसी गुण व विशेष रूप से विकसित अंतर्दृष्टि के कारण ये उच्च कोटि के वैज्ञानिक बनते हैं। ये दूसरे का अनुकरण

नहीं करते बल्कि अपने पीछे दूसरों को लगाते हैं। ये अपने विचारों को शब्दों में नहीं बल्कि प्रणालियों या योजनाओं में बता सकते हैं लेकिन मेहनत करके उनको बतायेंगे जिसको ये सुपात्र समझेंगे। ये नैसर्गिक नेता होते हैं लेकिन जब तक वास्तविक नेतृत्व की आवश्यकता न दिखे, ये पृष्ठभूमि में रहते हैं। दोस्त कम बनते हैं। शीघ्र निर्णय देते हैं। इनके अंतर्बोध विकसित होते हैं और ये इन्हें सही भी मानते हैं। ये महत्वाकांक्षी, आत्मविश्वासी तथा दूरदृष्टि वाले अग्रसोची होते हैं। सामान्यतया ये इंजीनियर या वैज्ञानिक बनते हैं। कुछ व्यवसायों में योजना निर्माण का कार्य भी करते हैं। अक्षमता और घोटालेबाजी से नफरत करते हैं। दूसरों से ये अलग-थलग और सीमित दिखते हैं। प्रशंसा कम करते हैं, किंतु प्यार खूब करते हैं। केवल अभिव्यक्त नहीं करते, ये सत्य का अन्वेषण करते रहते हैं। संप्रेषण की कला के विकास के अभाव में ये एकाकी हो सकते हैं तथा अन्य लोगों द्वारा इन्हें गलत समझा जा सकता है। ये बड़े-बड़े कामों को पूरा करने की हिम्मत रखते हैं। बड़े महान स्वप्नद्रष्टा होते हैं और अपनी महान योजनाओं को स्थूल क्रियान्वयन में परिणत कर सकने की सामर्थ्य रखते हैं।

ऐसे ग्राहक बैंकर के लिये एक चुनौती साबित हो सकते हैं। इनको विधिवत और नियत समय में काम चाहिये होता है। कम बोलने के कारण संप्रेषण में बाधायें आ सकती हैं। स्वयं सक्षम व बुद्धिमान होने के कारण ये बैंकर से भी अपेक्षा करते हैं कि वह भी बुद्धिमानी से काम करे। ऐसे ग्राहकों से वही बैंकर आदर पा सकता है और संबंध बना सकता है जो अपने उत्पादों और सेवाओं के बारे में विशद् ज्ञान रखता हो। इनको मित्र बनाना कठिन तो है किंतु बैंकिंग व सामान्य ज्ञान के आधार पर बैंकर इस कार्य में सफल हो सकता है। ग्राहक आधार बढ़ाने में इनका उपयोग असंभव है। हां, इनको ग्राहक बनाने से एक अच्छे सामाजिक वर्ग में संस्था की ब्रांड इमेज की पैठ ज़रूर हो सकती है, जो एक साथ कई विज्ञापनों का कार्य करेगी।

- **अंतर्मुखी सोच और बहिर्मुखी अंतर्बोध**- ये **विचारक** श्रेणी के व्यक्ति होते हैं। सैद्धांतिक दुनिया में अपने मन में रमण विचरण करते हैं। कठिन समस्याओं को तार्किक व मान्य तरीकों से सुलझाने में इनका कोई सानी नहीं होता। हर चीज़ में इन्हें स्पष्टता चाहिये होती है इसलिये ज्ञान का भंडारण करते रहते हैं। वे 'चक्करघिरनी प्रोफेसर' या 'कन्फ्यूज़ प्रोफेसर' कहे जाते हैं। सिद्धांतों को ठोस तरीके से क्रियान्वित करना वे समाज हेतु अपनी जिम्मेदारी समझते हैं। बुद्धि व ज्ञान इनके लिये सर्वोपरि है। इनका दिमाग हर समय नये विचारों को जन्म देता रहता है। ये वर्तमान सिद्धांतों को प्रमाणित या निरस्त करने में लगे

रहते हैं। ये समस्याओं और सिद्धांतों को संशय की दृष्टि से देखते और वर्तमान नियमों को दरकिनार करते हुये विचार करते हैं तथा अपना ही सिद्धांत चालू करते हैं। नये विचारों से प्यार करते हैं। पुराने सिद्धांतों तथा अमूर्त विचारों को नकारते हुये वे जुनून की हद तक समस्याओं व सिद्धांतों को नये नज़रिये से देखते हैं। ये लोगों पर अपना नियंत्रण नहीं रखना चाहते हैं, सहिष्णु तथा लचीले होते हैं, तब तक, जब तक कि इनके किसी प्रिय विश्वास को चुनौती न दी जाये। ऐसे में ये बहुत ही हठी हो जाते हैं। नये लोगों से मिलने-जुलने में शर्म महसूस करते हैं तथापि ये आत्मविश्वासी तथा अपने परिचितों के समक्ष मिलनसार रहते हैं। विशेषकर तब, जब अपने सिद्धांतों पर चर्चा कर रहे होते हैं। इस प्रकार के बैंकर को संस्था के विज़न, योजनाओं और उत्पादों को संक्षेप में तथा सही-सही बताना होगा ताकि ग्राहकों को उसके बारे में बता सकें। एक बैंकर के रूप में ऐसे लोगों से यह अपेक्षा है कि वे अपनी अवधारणाओं और विचारों को छोटे-छोटे टुकड़ों में ऐसे बताना सीखें जो दूसरों को सरलता से समझ आ सकें। ये एक काम को शुरु करने और उसकी रूपरेखा बनाने के बाद उसे बिना पूरा किये दूसरे काम को करने लग सकते हैं इसलिये ऐसे स्टाफ का कार्य अधूरा बहुत रहता है। इन्हें अपने कामों को बारी-बारी से पूरा करने हेतु अभ्यास करना चाहिये। ऐसे ग्राहकों के समक्ष ज़रूरत है तथ्यों व अवधारणाओं को परिशुद्धता तथा संक्षेप में बताया जाये। सामान्यतया इस प्रकार के बैंकर और ग्राहक दोनों आत्मनिर्भर, गैर-परंपरागत तथा मौलिक होते हैं। इन्हें लोकप्रियता तथा संरक्षा जैसी चीजें लुभाती नहीं। इसलिये इसे ग्राहक को उत्पाद बेचते समय लोकप्रियता तथा संरक्षा संबंधी प्रोत्साहन लुभा नहीं सकेंगे। इस प्रकार का बैंकर संस्था के लिये नयी खोज कर सकता है और इस प्रकार का ग्राहक हमारी संस्था को कुछ नयी अवधारणा या सिद्धांत दे सकता है, अतः इस ग्राहक को ग्राहक-संगोष्ठियों में अवश्य बुलाया जाना और चर्चा की जानी चाहिये। यदि इस बैंकर तथा ग्राहक दोनों को सही वातावरण व स्वायत्तता प्रदान की जाये तो ये संस्था के लिये आश्चर्यजनक योगदान भी दे सकते हैं।

- **बर्हिमुखी ज्ञान और अंतर्मुखी सोच**- ये **कर्ता** होते हैं। ये अपनी ज्ञानेंद्रियों के द्वारा सूचनाओं को प्राप्त करते हैं तथा तार्किक आधार पर उन पर मनन और व्यवहार करते हैं। ये स्पष्टवादी, मुखर होते हैं। जोशीले और उत्साही होते हैं। ये कर्म में विश्वास करते हैं। मुंहफट, स्पष्टवादी, जोखिम उठाने वाले, हर काम में कूद पड़ने वाले और जिम्मेदार बन जाने वाले होते हैं। उपस्थित स्थिति के तथ्यों को देखते हैं, तत्काल करणीय का निर्णय लेते हैं, क्रियान्वयन करते हैं तथा कार्यवाही चालू कर देते हैं। इसके बाद दूसरे काम के लिये प्रस्थान करते हैं। जल्दी-जल्दी

बोलते और चलते हैं। जीवन की उत्कृष्ट चीज़ों को पसंद करते हैं। कहानी अच्छी कहते हैं। आनंद में मजा लेते हैं, अनजाने में कभी-कभी दूसरों को दुख पहुंचा देते हैं। वे तथ्यों और तर्कों पर निर्णय लेते हैं, लोगों की भावनाओं पर नहीं। इनका अंतर्बोध कमजोर होता है। सिद्धांतों की व्याख्या में इनका धैर्य जवाब दे जाता है। केवल काम करना जानते हैं, ये कुशाग्र बुद्धि होते हैं तथापि लंबे-लंबे व्याख्यान इनको उबाते हैं। इनका अतिरिक्त जोश व उत्साह इन्हें उद्योगपति बनाता है। इनका विपणन कौशल अच्छा होता है। दूसरों को अभिप्रेरित व प्रोत्साहित करने की कला भी आती है। इसलिये ऐसे बैंकर को निश्चित रूप से विपणन विभाग का कार्य सौंपा जाना चाहिये। साथ ही ऐसे कार्य जिसमें समूह के नेतृत्व की संभावनायें विद्यमान हों। ऐसे ग्राहक के साथ बैंकर को अति सावधानीपूर्वक पेश आना चाहिये क्योंकि इनका प्रभावी व्यक्तित्व तथा उत्साह किसी भी बैंकर में हीन भावना को ला सकता है। इन्हें संक्षिप्त तथ्य दिये जाने चाहिये। ये शीघ्र निर्णय ले सकते हैं, अतः इन्हें कोई उत्पाद बेचते समय उसी समय डील को क्लोज़ किया जा सकता है। ऐसे ग्राहक हमारे अच्छे मित्र और परामर्शदाता हो सकते हैं। ये दूसरों को अभिप्रेरित कर लेते हैं, अतः इनके माध्यम से नये ग्राहक प्राप्त किये जा सकते हैं।

- **बहिर्मुखी सोच और अंतर्मुखी ज्ञान**- ये **अभिभावक** होते हैं। ये तथ्यों व ठोस आवश्यकताओं के बीच रहते हैं। वर्तमान में जीते हैं। अपने आसपास के वातावरण की जांच करते रहते हैं कि सब कुछ सही चल रहा है न! वे परंपराओं और नियमों का पालन करते हैं। इनके विश्वास स्पष्ट होते हैं। सक्षमता और कार्यकुशलता का आदर करते हैं। अपने कामों का परिणाम शीघ्र देखना चाहते हैं। ये उत्तरदायित्व लेने वाले होते हैं। नैसर्गिक नेता होते हैं। आत्मविश्वासी, आक्रामक होते हैं। कार्ययोजनायें बनाने तथा काम करने हेतु प्रणाली और प्रक्रिया के निर्माण में दक्ष होते हैं। ये अत्यधिक स्पष्टवादी तथा ईमानदार होते हैं। ये सामान्य तौर पर एक आदर्श नागरिक होते हैं। समाज के आधार स्तंभ होते हैं। वादों को पूरा करते हैं, मिलनसार और मनोरंजक होते हैं। ये परिवार, समाज से जुड़े सामूहिक कार्यों में बहुत अच्छा प्रदर्शन कर पाते हैं। एक बैंकर के रूप में ऐसे स्टाफ को टीम वर्क में, कार्यालयीन आयोजनों का कार्य सौंपा जाना उचित होगा। नीति-निर्माण तथा प्रक्रियागत कार्य भी इन्हें सौंपे जा सकते हैं। ऐसे ग्राहक हालांकि अच्छे मित्र हो सकते हैं तथापि कभी-कभी तनाव की स्थिति में अक्सर इनकी शिकायत होती है कि बैंकर इन्हें समझ नहीं पा रहा। इनकी बात समझी नहीं जा रही है। ऐसे ग्राहक बैंकर की बात नहीं भी सुन सकते हैं और अपना ही पक्ष रोप सकते हैं क्योंकि उनके अपने विश्वास बड़े

सुदृढ़ होते हैं जिनको वे झुठलाना नहीं चाहते। ऐसे में बैंकर से धैर्य की अपेक्षा होगी। ऐसे ग्राहक अनजाने में अपने तर्कपूर्ण स्वभाव के कारण बैंकर का दिल दुखा सकते हैं। इसके लिये बैंकर को बहुत संवेदनशील होने की आवश्यकता नहीं है। तनाव में ये अपनी बात भी नहीं ठीक से कह पाते। ये कई संस्थाओं, बैठकों के सदस्य होते हैं इसलिये हमारे लिये नये ग्राहकों को लाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

- **बहिर्मुखी ज्ञान तथा अंतर्मुखी अनुभव**- ये **कार्यनिष्पादक** होते हैं। ऐसे व्यक्ति अपनी ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से सूचनायें प्राप्त करके उनके बारे में अपने आंतरिक अनुभव के अनुसार कार्य करते हैं। ये लोगों से तथा नये अनुभवों से प्यार करते हैं। जीवन का केंद्र होना पसंद करते हैं। जीवन में नाटक को पसंद करते हैं। इनके अंतरवैयक्तिक संबंध बड़े ही उत्कृष्ट कोटि के होते हैं। शांतिदूत के रूप में कार्य करते हैं। सहानुभूतिपूर्ण, परोपकारी होते हैं। उदार तथा मिलनसार होते हैं। किसी भी व्यावहारिक आवश्यकता का तत्काल समाधान निकाल लेते हैं। व्यावहारिक रूप से दूसरों की देखभाल कर सकते हैं किंतु बहुत अच्छे परामर्शदाता नहीं हो सकते हैं क्योंकि ये भविष्य की योजनायें नहीं बनाते, ये आशावादी होते हैं। मनोरंजन प्रिय होते हैं। दूरदृष्टि की कमी होती है। कभी-कभी तात्कालिक रूप से निर्णय लेकर दीर्घावधि प्रभावों को नज़रअंदाज़ कर देते हैं जिससे अपने कर्त्तव्यों को भी भूल जाते हैं। इनके लिये सारा संसार एक मंच है। दूसरों के मनोरंजन के लिये शो करते रहते हैं। दूसरों की संवेदनाओं को जगाते रहते हैं और अपनी इस सक्षमता से इन्हें भी और दूसरों को भी अच्छा लगता है। सबके प्रिय होते हैं। सब इन्हें प्रिय होते हैं। मित्रों से घिरे रहते हैं, किंतु यदि कोई इनका विरोध करे तो वह इनका सबसे बड़ा दुश्मन बन जाता है। प्रवाह के साथ चलते हैं। अभ्यास से खुश रहते हैं, सिद्धांतों से नहीं क्योंकि ये व्यवहारिक होते हैं। ये दूसरों के साथ चर्चा करके अधिक सीखते हैं। ऐसे बैंकर को काउंटर के काम अधिक दिये जाने चाहिये क्योंकि ग्राहक सेवा से सीधे जुड़े कार्यों को बखूबी व सक्षमता से कर सकते हैं। उसी में खुश भी रहेंगे तथा रिलेशनशिप बैंकिंग भी देंगे। ऐसे ग्राहक बहुत अच्छे मित्र होते हैं किंतु अपनी योजनाओं के बारे में इनको बहुत अधिक साहित्य देने की ज़रूरत नहीं। आप असफल होंगे। ग्राहकों हेतु आयोजित किये जाने वाले भोजों में ये प्रसन्न रहेंगे और स्वयं भी प्रदर्शन करेंगे। इन्हे अच्छा खाना तथा अच्छी मदिरा पसंद होती है।
- **बहिर्मुखी अनुभव और अंतर्मुखी ज्ञान-** ये अच्छे **देखभालकर्ता** होते हैं। ये अपने एहसासों के अनुरूप तथ्यों से व्यवहार करते हैं और अपनी ज्ञानेंद्रियों से

सूचनायें आंतरिक रूप से ग्रहण करते हैं। ये लोगों को पसंद करते हैं, मिलनसार होते हैं, दूसरों में रुचि रखते हैं तथा दूसरों के बारे में सूचनायें प्राप्त करते समय अपने ज्ञान तथा निर्णय का उपयोग करते हैं तथा इन्हीं के आधार पर आगे के निर्णय लेते हैं। दूसरों से उनका उत्कृष्ट प्रदर्शन करवा सकते हैं। दूसरों का दृष्टिकोण समझने तथा दूसरों को पढ़ने में अच्छे होते हैं। ये सभी के द्वारा पसंद किये जाते हैं क्योंकि ये दूसरों को उनकी अच्छाईयों से अवगत कराते रहते हैं। अपने उत्तरदायित्वों के प्रति गंभीर होते हैं। संरक्षा और स्थायित्व को पसंद करते हैं। आने वाली आवश्यकताओं को पहले से अनुमान करके उनको पूरा करके रखते हैं। इस प्रकार कार्यों को पूरा करने में इनको महारत होती है। ये आनंदित और ऊर्जावान रहते हैं। अपने बारे में अच्छा महसूस करने के लिये इन्हें दूसरों के अनुमोदन की आवश्यकता होती है। ये निरपेक्षता से, उदासीनता से दुखी होते हैं। जिसके लिये वे जैसे भी हैं तथा जो भी वे देते हैं, उस रूप में प्रशंसित होना चाहते हैं, पसंद करते हैं। दूसरों के प्रति बड़े संवेदनशील होते हैं तथा व्यावहारिक रूप से देखभाल करते हैं। कभी-कभी इन्हें उन्हीं लोगों से कड़वे अनुभव होते हैं जिनकी ये देखभाल करते हैं। दूसरों को जानने-समझने मे रुचि रखते हैं। पसंद किया जाना तथा नियंत्रित होना इन्हें अच्छा लगता है। ये जिसके साथ होते हैं, उसी के हिसाब से परिवर्तन कर लेते हैं खुद में। इनके स्पष्ट विचार होते हैं। बिना शर्म के अपने विचारों को कहते हैं। ये लोकप्रिय होते हैं। ये अपना भला करने के लिये दूसरों का खूब प्रयोग करते हैं तथा नैतिकता का भी दम भरते हैं। सब पर नियंत्रण करना चाहते हैं। ये आदेशात्मक होते हैं। इसलिये ये इसी प्रकार के काम कर सकते हैं। शंकालू होते हैं दूसरों की मंशा के बारे में। लिंग के अनुसार कार्य करते हैं। मर्द ज्यादा मर्दानगी वाले, औरतें अधिक स्त्रैण होती हैं।

- **बहिर्मुखी अंतर्बोध तथा अंतर्मुखी सोच**- ये **द्रष्टा** होते हैं। ये मुख्यतः बाहरी जगत के प्रति अपने अंतर्बोध के अनुसार क्रिया करते हैं तथा बाद में तथ्यों को तार्किक आधार पर सोचते हैं। इनका अंतर्बोध बर्हिमुखी होता है तथा ये जीवन को, संसार को समझने में रुचि रखते हैं। वे अपने जीवन में आने वाली घटनाओं परिस्थितियों के दृश्यों को लगातार देखते समझते रहते हैं और इन सूचनाओं को अपने सहजबोध के आधार पर तेजी और कुशलता से प्रसंस्करण करते हैं तथा परिस्थितियों को सरलता से समझ लेते हैं। ये दूरदृष्टि वाले होते हैं। तथ्यों को तेजी से गहराई समझते हैं। ये लचीले और विभिन्न प्रकार के कार्यों को कर सकते हैं। संभावनाओं का पता लगाने में अव्वल होते हैं। समस्याओं का समाधान नवीन तरीके से कर सकते हैं। इनके पास नये विचारों की भरमार

रहती है। प्रत्यक्षीकरण की क्षमता के कारण ये सभी जगह संभावनाओं का पता लगा सकते हैं। वे अपने विचारों के प्रति बड़े उत्साहित तथा जोशीले रहते हैं और अपने से संबंधित लोगों में इनका प्रचार-प्रसार भी करते हैं। इसीलिये इनके विज़न को पूरा करने हेतु इन्हे भरपूर समर्थन मिलता है। अपने विचारों को क्रियान्वित कर अंतिम परिणाम तक पहुंचा सकें, इसके लिये इन्हें कर्ताओं और कार्यनिष्पादकों की आवश्यकता होती है। ये केवल नये विचारों को उत्पन्न कर सकते हैं। योजनाओं के निर्माण में ये कमज़ोर होते हैं तथापि किसी निर्णय पर पहुंचने में ये तर्क और औचित्य को आधार बनाते हैं। संप्रेषण कौशल अत्यंत विकसित होता है। मानसिक रूप से तेज़, शाब्दिक बातचीत पसंद करते हैं। वाद-विवाद अच्छा लगता है। कभी कभी केवल मज़े के लिये अपना पक्ष बदल लेते हैं। इसलिये ऐसे ग्राहकों से वाद-विवाद में पड़ना उचित नहीं होता। इनका स्वभाव अमूमन अधिवक्ताओं के प्रकार का होता है। कई बार इस प्रकार के ग्राहकों या बैंकर दोनों के लिये दूसरे के एहसास महत्व नहीं रखते। जिससे इनके स्वभाव में समानुभूति का अभाव दिखायी देता है। इस प्रकार के ग्राहक, बैंकर की समस्या को और बैंकर, ग्राहक की समस्या को समझ नहीं पाते। अतः दोनों पक्षों की समझ में अंतर आ सकता है। ये ज्ञान को बहुत अधिक महत्व देते हैं इसलिये इस प्रकार के ग्राहकों से बात करते समय बैंकर के पास संस्था के उत्पादों और सेवाओं का भरपूर ज्ञान होना चाहिये। ये सृजनात्मक, चालाक, जिज्ञासु तथा सैद्धांतिक भी होते हैं। ऐसे ग्राहकों से बिना डाटा और तथ्यों के बात करना परिणामदायक नहीं होगा।

- **बहिर्मुखी सोच और अंतर्मुखी अंतर्बोध**- ये **कार्यपालक** होते हैं। ये नैसर्गिक नेता होते हैं। चुनौतियों के विजेता, विजय का श्रेय लेने वाले, जटिलताओं को तेजी से समझने वाले, प्रभार संभालने वाले होते हैं। तेज़ निर्णय लेते हैं। ये अपने व्यवसाय पथ के बारे में बड़े सजग होते हैं इसलिये कॉरपोरेट जगत में फिट बैठते हैं। ये दूरगामी नज़रिये से तथ्यों को देखते हैं तथा कॉरपोरेट प्रकार की समस्याओं को बड़े अच्छे तरीके से सुलझाते हैं। खुशमिजाज होते हैं। ये कारोबारी जगत में भी बड़े सफल होते हैं। काम के लिये सतत प्रयासरत रहते हैं और संगठन के भविष्य को देख सकते हैं। इसलिये ही ये **कॉरपोरेट नेता** के नाम से जाने जाते हैं। ये गलतियों को दोहराना बर्दाश्त नहीं करते। अकर्मण्यता को सहन नहीं कर पाते। ऐसे मामलों मे रुक्ष और कठोर भी हो सकते हैं। ये व्यक्तियों के वैयक्तिक आधार पर निर्णय नहीं लेते, इसलिये इनके निर्णयों में मानवता का अभाव भी दिख सकता है। ये डामिनेटिंग होते हैं। अपने चश्मे से बाहर देखना नहीं चाहते। शीघ्र निर्णय लेने और शीघ्र बता देने के कारण इनके कार्य शीघ्र परिणाम लेने लगते हैं। कई बार इनके विचार बड़े ही सुंदर और उपयोगी होते हैं, किंतु उनके क्रियान्वयन का पक्ष उन्हें स्पष्ट नहीं होने से मामला खटाई में पड़ जाता है। ये तानाशाह होते हैं। अहं की भावना भी अधिक होती है। इनके संवेग तथा भावनायें बहुत होती हैं किंतु उन्हें एक कमजोरी मानकर जनसामान्य के समक्ष प्रदर्शित नहीं करते। एक जीवंत और चुनौतीपूर्ण संभाषण से अच्छा इनके लिये कुछ नहीं हो सकता। ये उन लोगों को पसंद करते हैं जो इनके पक्ष के लिये अपनी बात के लिये बहस करके इन्हें राजी कर सके। किंतु ऐसे लोग बहुत कम हो पाते हैं क्योंकि इनका अपना अत्यधिक आत्मविश्वास दूसरे को डॉमिनेट कर जाता है। कई बार सक्षम से सक्षम व्यक्ति भी इनके सामने अपनी सही बात की सत्यता पर भी संदेह करने लगता है। ये अपना रहने का स्थान सुंदर सजीला रखते हैं। ऐसे दंपत्ति के बीच में स्नेह, बच्चों की शिक्षा के प्रति अधिक जोर होता है। घर में भी तानाशाही होती है। घर से दूर भागा करते हैं। ये निश्चयपूर्ण, नवोन्मेषी, दूरदृष्टि वाले, विचारक, सिद्धांतों को कार्य रूप देने में पारंगत होते हैं। अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में शत-प्रतिशत सफल होते हैं। ऐसे स्टाफ को नीति-निर्माण के बजाय विज़न निर्माण तथा भावी योजनाओं की रूपरेखा तैयार करने में लगाया जाये तो बेहतर कार्य निष्पादन देंगे। नेतृत्व वाले कार्य भी अच्छी तरह करेंगे। अच्छे वक्ता होते हैं। उच्च अधिकारियों को अपनी बात अच्छी तरह समझा सकते हैं। दूसरे समकक्षी बैंकों के मध्य ये अपनी संस्था को बेहतर तरीके से प्रतिपादित कर सकते हैं और लीड ले सकते हैं। ऐसे ग्राहक बैंकर के लिये चुनौती हो सकते हैं। इनसे वाद-विवाद करना, हारने के लिये तैयार रहना होगा। ऐसे ग्राहक संख्या में कम हो सकते हैं किंतु इनके लिये सक्षम बैंकर द्वारा सेवा दी जानी उपयुक्त होगी। इनसे संव्यवहार करते समय बातचीत कम, विनम्रता अधिक होनी चाहिये। टालू रवैया नहीं चल सकता।

सामान्य तौर पर कहा जाये तो अंतर्मुखी व्यक्तित्व को सरलता से उद्दीप्त किया जा सकता है। ये सामाजिक निषेधों को भी सरलता से सीखते हैं। बहिर्मुखी व्यक्तित्व पुरस्कार से प्रभावित होते हैं तो अंतर्मुखी दंड से। बहिर्मुखी व्यक्तित्व को सरलता से उद्दीप्त नहीं किया जा सकता। ये सामाजिक निषेधों के प्रति सरल शिकार नहीं होते हैं।

प्रयुक्त शब्दावली

उद्दीपक मूल्य	Stimuli Value
सहजबोध/अंतर्बोध	Intution
समानुभूति	Empathy
संगठित	Organized
विघटित	Deorganized
अंतर्मुखी	Introverted
बहिर्मुखी	Extraverted

6. प्रत्यक्षीकरण, भ्रम और विभ्रम

यदि हमें ग्राहकों को अपनी हर योजना, हर परिवर्तन, हर व्यवसायिक प्रयास का प्रत्यक्षीकरण सकारात्मक तथा अपने लाभ के अनुकूल करवाना है तो हमारा भरसक प्रयास होना चाहिये कि हमारी ग्राहक सेवा ऐसी हो जो ग्राहकों को हमारे बारे में सरल, सकारात्मक, लाभोन्मुख, आनंददायक तथा सुखद अनुभव प्रदान करे।

इस पुस्तक में प्रत्यक्षीकरण की जानकारी व चर्चा इसलिये ज़रूरी है क्योंकि यह ग्राहकों के प्रत्यक्षीकरण, उनके ध्यान, अभिप्रेरणा व रुचियों के नज़रिये से बैंकिंग जगत में विज्ञापन व बैंक की योजनाओं के प्रचार व प्रसार से संबंधित है। आज के बैंकिंग युग में विज्ञापन व प्रचार का विशेष महत्व है। इसी दृष्टि से ग्राहक सेवा पर चर्चा करते समय प्रत्यक्षीकरण व भ्रम तथा विभ्रम पर चर्चा अनिवार्य है।

हमारे चारों ओर के वातावरण में विभिन्न प्रकार के उत्प्रेरक और उद्दीपक हमें विभिन्न प्रकार की उत्तेजनायें प्रदान करते रहते हैं। उन उत्तेजनाओं से संवेदनायें पैदा होती हैं, संवेदनाओं से भाव तथा भावों का प्रत्यक्षीकरण होता है। किसी भी उत्तेजना से सबसे पहले जो अनुभूति होती है, वह संवेदना कहलाती है जो अमूर्त होती है। संवेदनायें शरीर की ज्ञानेंद्रियों से मस्तिष्क में प्रदान की जाने वाली मौलिक व प्राथमिक सूचनायें हैं। इनका पुनः विभाजन नहीं हो सकता। संवेदनाओं में जब हमारी अनुभूति जुड़ती है, सुख, दुख, प्रिय, अप्रिय आदि भावनायें जुड़ती हैं तो वह भाव बन जाती है। भाव एक सरल प्रक्रिया है। भाव केवल वैयक्तिक होते हैं अर्थात् किसी परिस्थिति या वातावरण से हर व्यक्ति को अलग-अलग भाव होंगे। भाव विशुद्ध रूप से मानसिक उत्पति है। जब हमारी संवेदनाओं को, भावों को अर्थ मिलने लगते हैं तो यह प्रत्यक्षीकरण कहलाता है। या हम यह भी कह सकते हैं कि हमारी संवेदनाओं को सार्थक रूप से समझने का नाम ही प्रत्यक्षीकरण है। प्रत्यक्षीकरण एक ज्ञानात्मक प्रक्रिया है। हमारी ज्ञानेंद्रियां वातावरण से उद्दीपकों के द्वारा उत्तेजित होती हैं तथा प्राप्त सूचनाओं को संवेदनाओं के रूप में हमारे मस्तिष्क तक पहुंचाती हैं। हमारा मस्तिष्क हमारे पूर्व अनुभवों तथा ज्ञान से उनका साहचर्य स्थापित

करता है तथा उन संवेदनाओं का पुनर्गठन व एकीकरण करता है। जैसे यदि हमें गुलाब का फूल दिखाया जाये तो आंखें इस फूल को देखने के बाद उसकी संवेदना मस्तिष्क को देंगी। मस्तिष्क में ज्ञानेंद्रियों का नियंत्रक भाव सक्रिय हो जायेगा तथा हमारे पूर्व अनुभवों और ज्ञान के आधार पर गुलाब के फूल की किस्में, रंग, सुगंध तथा आकार आदि हमारे दिमाग में आ जायेंगे। इसे ही पुनर्गठन व एकीकरण कहते हैं। एकीकरण के फलस्वरूप हमें उस फूल का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। यही प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया है। केवल संवेदना या भाव प्रत्यक्षीकरण नहीं है। या केवल देखना भी प्रत्यक्षीकरण नहीं है जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है। वातावरण की सभी चीजों को देखने से प्रत्यक्षीकरण नहीं होता है। ज़रूरी नहीं कि हम जिस वस्तु को देख रहे हों, वह हमें दिखायी दे ही। कभी-कभी हम किसी भवन या स्थान के सामने से गुज़र जाते हैं किंतु वह हमारे ध्यान में ही नहीं आता। इसका अर्थ यह नहीं कि हमने उस भवन को देखा नहीं या हमारी दृष्टि उस पर नहीं पड़ी। हमारी दृष्टि उस पर पड़ी किंतु हमारा उस ओर ध्यान नहीं गया जिससे हमें उससे संबंधित संवेदना नहीं हुयी। संवेदना की अनुपस्थिति में भाव भी उत्पन्न नहीं हुये और न ही संवेदना और भाव को अर्थ मिल सका। कहने का तात्पर्य यह है कि वातावरण में उपस्थित सभी उत्तेजनायें हमारे ध्यान को प्रभावित नहीं करती हैं। वे ही उत्तेजनायें हमें आकर्षित करती हैं जो :

- हमारे लिये रुचिकर होती हैं।
- हमारे लिये उपयोगी होती है।
- जो हमारे लिये अर्थपूर्ण होती हैं।
- जो परिवर्तनशील होती हैं।

किसी उत्तेजना की ओर हमारा ध्यान जाने पर ही हमें उसका प्रत्यक्षीकरण होता है। अतः कहा जा सकता है कि प्रत्यक्षीकरण चयनात्मक व ध्यानात्मक होता है। जब प्रत्यक्षीकरण त्रुटिपूर्ण होता है तो वह भ्रम कहलाता है, जैसे रस्सी को सांप समझना, दीवार को शीशा समझना, पेड़ के ठूंठ को अंधेरे में भूत समझना, पीतल को सोना समझ लेना आदि। जब किसी उद्दीपक का त्रुटिपूर्ण प्रत्यक्षीकरण होता है तो वह भ्रम कहलाता है और जब किसी उद्दीपक की अनुपस्थिति में ही कोई संवेदना होने लगती है तो वह विभ्रम कहलाता है। विभ्रम असामान्यता या बीमारी की भी निशानी है। यहां हमारी चर्चा का केंद्र बिंदु प्रत्यक्षीकरण ही रहेगा।

प्रत्यक्षीकरण में दो प्रकार की घटनायें होती हैं। वह वस्तु जिस पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, मुख्य चित्र के रूप में दिखायी देती है तथा दूसरी वस्तु, जिस पर ध्यान नहीं दिया जाता, उसकी पृष्ठभूमि में दिखायी देती है। जो चित्र या वस्तु मुख्य रूप से दिखायी देती है, वही हमें अधिक आकर्षित करती है तथा दूसरी, जो पृष्ठभूमि में दिखायी देती है, वह उसकी भूमिका तैयार करती है। बैंकों में विज्ञापन देते समय उपरोक्तानुसार

निम्नलिखित बिंदुओं का ध्यान रखा जा सकता है-

- चूंकि प्रत्यक्षीकरण एक मनोवैज्ञानिक क्रिया है इसलिये विज्ञापनों में तथा शाखाओं/कार्यालयों में प्रचार या अन्य किसी उद्देश्य से प्रदर्शित की जाने वाली सामग्री/संदेशों में इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिये कि वह सामग्री ग्राहक और बैंकर दोनों को मनोवैज्ञानिक रूप से सकारात्मक तरीके से प्रभावित करे।
- प्रत्यक्षीकरण का पहला चरण वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों/उत्तेजनाओं का ज्ञान कराना है। इनसे संवेदनायें और संवेदनाओं से भाव तथा भावों के साथ जब अर्थ जुड़ते हैं तो प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया पूरी होती है। इस दृष्टि से शाखाओं/कार्यालयों में ऐसा वातावरण बनाया जाना चाहिये जो ग्राहक और बैंकर दोनों के लिये अपने सभी संदेशों और उद्देश्यों सहित न केवल आरामदेह हो बल्कि सुखद व आनंददायक अनुभव प्रदान करने वाला होना चाहिये। हालांकि इस दिशा में बैंकों ने कुछ प्रयास भी आरंभ कर दिये हैं और शाखाओं के वातावरण तथा प्रदर्शन को सुखद व प्रिय बनाने में काफी ध्यान भी दिया जा रहा है, तथापि शाखा का वातावरण ऐसा होना चाहिये जो बोझिल न हो, उसमें प्रदर्शित सामग्री ग्राहकों की थकान को दूर कर उन्हें आराम से कुछ आगे, विकास तथा ऐश्वर्य के बारे में सोचने के लिये प्रेरित करे। यदि मैस्लो के पदानुक्रम पिरामिड का ध्यान किया जाये तो व्यक्ति की सोच के मूल में सबसे पहला प्रयास रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये होता है। इसी के बाद घर तथा घर के बाद सामाजिक प्रतिष्ठा का सवाल आता है। सामाजिक प्रतिष्ठा के बाद ही आत्मसिद्धि की बात आती है। यदि शाखाओं में प्रदर्शित सामग्री इस दृष्टि से हो कि वह ग्राहक की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद उनकी संरक्षा व सुरक्षा तथा सामाजिक प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिये प्रोत्साहित व प्रेरित करे तो बैंकों के विज्ञापन व संदेश अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली सिद्ध होंगे। उदाहरण के लिये यदि हम सिर्फ इतना लिखें कि आपका धन 90 माहों मे दुगुना हो जायेगा तो यह उतना प्रभाव न छोड़ेगा यदि इसके स्थान पर हम यह लिखें कि **'पहले भरपेट खाना, फिर दावत का खजाना, और सुंदर सा घर बनाना, समाज में सभी से प्रतिष्ठा पाना'** यह अधिक प्रभावशाली होगा। बाद वाले विज्ञापन में व्यक्ति को रोटी, कपड़ा व मकान से लेकर हमने समाज का बड़ा और संतुष्ट आदमी बनाने के लिये सपना दिखाया है। यह सपना पूरा हो न हो, कम से कम हर ग्राहक को इस योजना में धन जमा करने के लिये लालायित ज़रूर बनायेगा। दूसरी बात यह भी होती है कि हर व्यक्ति उच्च व प्रतिष्ठित योजनाओं, संस्थाओं से जुड़ना चाहता है। यदि

हमारे विज्ञापनों में उन्हें प्रतिष्ठा और आत्मसिद्धि की झलक दिखायी देगी तो वे ज़रूर सकारात्मक प्रत्यक्षीकरण करेंगे।

- प्रत्यक्षीकरण का अगला चरण ज्ञानेंद्रियों द्वारा ग्रहण की हुयी भौतिक ऊर्जा (उद्दीपक) को स्नायु आवेग में परिवर्तित कराना है। इस दृष्टि से शाखाओं कार्यालयों में प्रदर्शित सामग्री ऐसी हो जो दर्शनीय तथा नज़रों को आकर्षित करने वाली हो। हर व्यक्ति का ध्यान उस ओर अनायास ही जाये। प्रत्यक्षीकरण का एक नियम परिवर्तनशीलता भी है। इसलिये हर प्रदर्शित सामग्री में एक समान रंगों और आकारों का प्रयोग नहीं होना चाहिये। इससे शाखा के वातावरण में नवीनता के स्थान पर एकरसता आ जायेगी, जो प्रत्यक्षीकरण में बाधक सिद्ध होगी और ग्राहकों का ध्यान उधर जायेगा ही नहीं। प्रदर्शित सामग्री उद्देश्यहीन हो जायेगी।
- प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया के दौरान जब कोई स्नायु आवेग हमारे मस्तिष्क में पहुंचता है तो हमारे पूर्व अनुभव उस आवेग के साथ एकीकृत होना प्रारंभ कर देते हैं। इससे उस आवेग को तदनुरूप अर्थ मिलना प्रारंभ हो जाता है। इसलिये हमेशा यह प्रयास होना चाहिये कि हमारी संस्था से ग्राहक और स्टाफ दोनों को सुखद संस्मरण और सकारात्मक अनुभव ही मिलें। जब हमारी संस्था से जुड़े किसी लोगो, योजना या प्रतीक को देखने पर ग्राहक को भी और स्टाफ दोनों को सकारात्मक अनुभव होगा, तभी हमसे और अधिक कारोबार करने का प्रयास करेगा।
- प्रत्यक्षीकरण में उद्दीपक से संबंधित संवेदनाओं में एकता और संगठन पाया जाता है। अर्थात् उद्दीपकों से संबंधित संवेदनायें अलग-अलग और बिखरी न होकर संगठित रूप में होती हैं। किसी एक उद्दीपक के रंग, गंध, आकार, स्पर्श आदि से संबंधित सूचनायें जब एक साथ प्रस्तुत होती हैं तो उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण होता है। हाथी को देखने पर देखने वाले को हाथी का रंग, आकार, उसकी त्वचा तथा शरीर के विभिन्न अंगों को हम अलग अलग नहीं जानते या देखते। इन सबको एक बार ध्यान से देखने पर, उनके सहज समन्वय में ही हमें हाथी का प्रत्यक्षीकरण होता है। अतः विज्ञापनों में जितने भी तथ्य होते हैं, वे एक संगठन के रूप में दिखायी देते हैं। यदि एक ही विज्ञापन में एक से अधिक योजनाओं का प्रचार हो तो ग्राहक को खिचड़ी प्रत्यक्षीकरण होगा। इसी प्रकार एक ही पत्र में कई बिंदुओं/विभागों से संबंधित काम का उल्लेख हो तो वह पत्र भी प्रभावहीन हो जाता है। पत्राचार व विज्ञापन प्रदर्शन में एक स्थान पर एक ही पहलू केंद्र में होना चाहिये।

- वातावरण में उपस्थित सभी उद्दीपक हमारे ध्यान को आकर्षित नहीं करते। केवल उन्हीं उद्दीपकों/उत्तेजनाओं की तरफ हमारा ध्यान जाता है, जो हमारे लिये अर्थपूर्ण और आकर्षक होती हैं। किस वस्तु का हमारे लिये क्या अर्थ है? कौन सी वस्तु हमें आकर्षित करेगी- यह हमारी रुचि और पसंद पर निर्भर करता है। अतः कहा जा सकता है कि प्रत्यक्षीकरण चयनात्मक होता है तथा ध्यानात्मक भी होता है। प्रत्यक्षीकरण के लिये ध्यान केंद्रित होना ज़रूरी है।
- जो उद्दीपक हमारे लिये अर्थपूर्ण होते हैं, जिनसे हमारा पूर्व परिचय हुआ होता है, वे हमारे ध्यान को तत्काल आकर्षित करते हैं। इसके विपरीत बिल्कुल अपरिचित और नयी चीज़ों को हम पहले जानना चाहते हैं, उसे छूकर, देखकर, सूंघकर उसके गुणों के बारे में समन्वित प्रत्यक्षीकरण करते हैं। अगली बार जब वही वस्तु दोबारा दिखायी देती है तो हमें उसका प्रत्यक्षीकरण तुरंत हो जाता है। किंतु पहली बार में प्रत्यक्षीकरण होने में देर लगती है। यही बात बैंक की योजनाओं, प्रक्रियाओं और नीतियों के बारे में भी लागू होती है। पहली बार जब कोई नया विचार आता है तो बहुसंख्यक स्टाफ द्वारा उसके बारे में केवल जानकारी चाही जाती है। उसके बारे में कोई विशेष रुचि नहीं दिखायी जाती। इसके स्थान पर पुरानी लागू योजनाओं, नीतियों और प्रक्रियाओं को चूंकि पहले से स्टाफ जानता होता है, उन्हीं में परिवर्तन/परिमार्जन और संशोधन करके यदि दोबारा नये कलेवर में लाया जाये तो उनकी स्वीकार्यता इसलिये बढ़ सकती है क्योंकि उसकी आधी विशेषताओं से सभी स्टाफ पहले से भिज्ञ होते हैं। पूरी योजना/प्रक्रिया को फिर से पढ़ने और जानने की आवश्यकता नहीं होगी। नयी प्रक्रिया, नीति को लागू करने के लिये प्रबंधन को अपेक्षाकृत अधिक परिश्रम करना पड़ता है और कभी-कभी उसके लिये प्रोत्साहन भी देना पड़ता है।
- यह भी पाया गया है कि प्रत्यक्षीकरण की क्रिया को हमारे पूर्व अधिगम तथा पूर्व अनुभव बहुतायत से प्रभावित करते हैं। जो अनुभव हमें पहले से हुये होते हैं, उनसे संबंधित उद्दीपकों का हमें बहुत शीघ्र ही प्रत्यक्षीकरण हो जाता है। इसलिये बैंक की योजनाओं के प्रचार-प्रसार में बैंक के पूर्व ग्राहक-इतिहास, ग्राहक सेवा संबंधी पूर्व प्रक्रियाओं तथा घटनाओं का उल्लेख ग्राहकों को बैंक के नये परिवर्तनों से जोड़ेगा। बोलचाल की भाषा में बैंक और ग्राहकों के मध्य **प्रोसीज़रल गैप** की स्थिति नहीं आयेगी।
- लगातार परिवर्तित हो रही वस्तुओं के प्रति हमारा प्रत्यक्षीकरण शीघ्र होता है। एक सा कुछ भी हमें दिखायी नहीं देता। विज्ञापनों में एक ही प्रकार की भाषा, एक ही प्रकार का दृष्टिकोण, एक ही प्रकार का रंग संयोजन हमें आकर्षित नहीं

कर सकता। इसलिये पूरे विज्ञापन में कुछ भागों या संदेशों को रंगीन या विभिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया जाना प्रभावशाली साबित होता है।

- साहचर्य विचारों की उपस्थिति प्रत्यक्षीकरण को विशेष रूप से प्रभावित करती है। जब भी कोई उत्तेजना हमारी ज्ञानेंद्रियों से स्नायु आवेग के रूप में हमारे मस्तिष्क में पहुंचती है तो मस्तिष्क के विभिन्न भागों में संचित अनुभव तथा ज्ञान उस संवेदना से जुड़ने लगते हैं। उस उद्दीपक के बारे में जैसा हमारा पूर्व अनुभव और पूर्व ज्ञान होता है, वैसा ही प्रत्यक्षीकरण हमें उस उद्दीपक के बारे में होता है। इसलिये यदि हम चाहते हैं कि बैंक शाखा/कार्यालय में आने पर यदि ग्राहकों को बैंक शाखा/कार्यालय/बैंकर के बारे में अच्छा प्रत्यक्षीकरण हो, हम उन्हें समग्र रूप से भले दिखें तो बहुत ज़रूरी है कि ग्राहकों को हमारे द्वारा हर समय, हर बार सकारात्मक, सुखद और आनंददायक अनुभव हों। जब उनके मस्तिष्क में हमारे संबंध में पूर्व अनुभव अच्छे होंगे तो हमारी हर नयी योजना का प्रत्यक्षीकरण भी वे उसी के अनुरूप सुखद और सकारात्मक रूप में करेंगे।
- उद्दीपक के आसपास के अवयव एक प्रकार का समूह या उपसमूह गठित करते से प्रतीत होने लगते हैं और उनका प्रत्यक्षीकरण एक इकाई के रूप में होने लगता है। अतः किसी भी विज्ञापन में इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिये जिन अवयवों पर हम ग्राहकों का ध्यान दिलाना चाहते हैं, वे समान गुणधर्म वाले अवयव पास पास दर्शाये जायें। दूरी और सामीप्य विज्ञापन के प्रभाव को गहराई से प्रभावित करते हैं।
- जिन उद्दीपकों में निरंतरता होती है, वे एक इकाई के रूप में दिखायी देते हैं। इसलिये समान तत्वों को निरंतर एक-दूसरे के साथ प्रदर्शित किया जाना श्रेयस्कर है। जैसे किसी बाल ग्राहक का बचत खाता, फिर उसी ग्राहक की किशोरावस्था का डी आर सी खाता तथा युवावास्था का ऋण खाता व वृद्धावस्था का पेंशन योजना- ये सब यदि एक निरंतरता के रूप में एक पोस्टर में प्रदर्शित किये जायें तो उचित प्रभाव उत्पन्न करेंगे। वहीं दूसरी ओर जिन तत्वों पर हम ग्राहक का ध्यान एक-दूसरे के सहअस्तित्व के संदर्भ में नहीं बल्कि उस तत्व के केवल अपने संदर्भ में दिलाना चाहते हैं, वहां इन सभी तत्वों को व्यतिक्रम में दर्शाया जाना चाहिये। जैसे किसान का बचत खाता, फिर फसली ऋण तो एक साथ दर्शाये जा सकते हैं किंतु फसली ऋण के साथ वसूली कार्रवाई संबंधी सरफेसिया एक्ट की कार्यवाही प्रदर्शित किया जाना प्रतिकूल प्रभाव डालेगा। इन दोनों का अलग-अलग प्रचार होना चाहिये- एक साथ नहीं।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि यदि हमें ग्राहकों को अपनी हर योजना, हर परिवर्तन, हर व्यावसायिक प्रयास का प्रत्यक्षीकरण सकारात्मक तथा अपने लाभ के अनुकूल करवाना है तो हमारा भरसक प्रयास होना चाहिये कि हमारी ग्राहक सेवा ऐसी हो जो ग्राहकों को हमारे बारे में सरल, सकारात्मक, लाभोन्मुख, आनंददायक तथा सुखद अनुभव प्रदान करे। ग्राहक सेवा केवल बैंकिंग कार्यों में दी गयी सेवा और ग्राहक की बैंकिंग ज़रूरतों को पूरा करने का नाम नहीं है, बल्कि यह वह पारिभाषिक शब्द है जिसमें बैंकर का संपूर्ण व्यक्तित्व, उसके नैतिक, सामाजिक, आर्थिक व आध्यात्मिक मूल्य, उसकी आस्थायें तथा अंत में उसका स्वत्व सब कुछ सम्मिलित है।

प्रयुक्त शब्दावली

प्रत्यक्षीकरण	Perception
भ्रम	Illusion
विभ्रम	Hallucination
उद्दीपक	Stimuli
संवेदना	Sensation
उत्प्रेरक	Catalyst
भाव	Emotion
साहचर्य	Association
चयनात्मक	Selection
ध्यानात्मक	Cognitive
आत्मसिद्धि	Self actualisation
संरक्षा एवं सुरक्षा	Protection & safety
स्नायु आवेग	Nervous impulse
अधिगम	Learning

7. शब्दों का जादू

जब भी किसी ग्राहक से आपका परिचय करवाया जाये, या हो तो उनके नाम को तत्काल दोहरायें व अभिवादन करें। इससे अभिवादन की शिष्टता भी पूरी हो जायेगी तथा आपको नाम दोहराने का मौका भी मिल जायेगा। फिर बातचीत के दौरान कम से कम उस नाम को तीन बार और कहें। यदि किसी कारणवश आप नाम बातचीत के दौरान भूल रहे हों तो आप ग्राहक से पुनः नाम पूछ सकते हैं। यदि विशिष्ट प्रकार का नाम हो तो आप उच्चारण के बारे में भी पूछ सकते हैं। तत्काल दोहराये जाने के बाद आप नामों को याद रख सकेंगे।

ग्राहक सेवा पर चर्चा करते समय यदि संप्रेषण पर चर्चा नहीं हुयी तो चर्चा अधूरी रह जायेगी क्योंकि संप्रेषण मानवीय संबंधों और व्यवहारों का अहम् हिस्सा है। वैयक्तिक और व्यावसायिक रूप से सभी संबंधों की सफलता का आधार अच्छा व प्रभावी संप्रेषण है। संप्रेषण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति (प्रेषक) अपने विचारों को दूसरे व्यक्ति (प्रापक) को अंतरित करता है और प्रापक, प्रेषक की अपेक्षानुसार ही क्रियाशील होता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि संप्रेषण प्रेषक तथा प्रापक के बीच एक से विचारों के आदान-प्रदान को कहते हैं। संप्रेषण दो प्रकार का हो सकता है। एक प्रकार का संप्रेषण वह है जिसे शारीरिक क्रियाओं द्वारा किया जाता है; दूसरे प्रकार का संप्रेषण वह है जिसे शारीरिक संकेतों द्वारा क्रिया जाता है। शारीरिक क्रियाओं द्वारा दो प्रकार से संप्रेषण किया जाता है- लिखित, सांकेतिक या मौखिक। जो संप्रेषण वार्तालाप के माध्यम से किये जाते हैं, वे मौखिक कहे जाते हैं। लिखकर किये गये संप्रेषण, जिनमें शब्दों का प्रयोग होता है, वे लिखित संप्रेषण कहे जाते हैं। तथापि संकेतों के द्वारा, रेखांकनों के द्वारा तथा तस्वीरों के जरिये किये गये संप्रेषण भी शाब्दिक संप्रेषण कहलाते हैं। इन दोनों संप्रेषणों को शाब्दिक संप्रेषण भी कहा जाता है। दूसरी ओर संप्रेषण अलिखित तथा मौन भी हो सकता है। यही शारीरिक संकेतों, भाव-भंगिमाओं तथा चेष्टाओं द्वारा किया गया संप्रेषण है। इसे **बॉडी लैंग्वेज** के नाम से भी जाना जाता है।

इस अध्याय में मुख्यतया हम मौखिक संप्रेषण पर चर्चा करेंगे। मौखिक संप्रेषण वार्तालाप है। ग्राहकों से संपर्क के दौरान बैंकर को अधिकतर मौखिक वार्तालाप ही करना पड़ता है। इसलिये हमारी चर्चा का मुख्य केंद्र मौखिक वार्तालाप ही होगा। हम विभिन्न प्रकार की उन विधियों के बारे में चर्चा करेंगे जो एक बैंकर के वार्तालाप कौशल को निखारने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

ग्राहकों के साथ वार्तालाप करते समय हमारा संप्रेषण आत्मविश्वासी, सक्षम, विश्वसनीय, पसंदयोग्य तथा भावपूर्ण होना चाहिये। हमारा संप्रेषण ऐसा होना चाहिये कि उसके दौरान हम ग्राहकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सकें तथा ग्राहक और अपने मध्य सीढ़ियां बनाने के स्थान पर पुल का निर्माण करें। पुल का निर्माण परस्पर बराबरी दर्शाता है जबकि सीढ़ी एक पक्ष को ऊंचा और दूसरे को नीचा दर्शाती है। संप्रेषण के दौरान एक अच्छा बैंकर दिखने के लिये ज़रूरी है कि -

- हमारा संप्रेषण दूसरों के साथ संबंधों की स्थापना के उद्देश्य से हो, हम बातचीत के दौरान हेरफेर करके मुख्य बिंदु से दूर हटने के प्रयास करने के स्थान पर मुख्य बिंदु पर चर्चा को प्रोत्साहित करें।
- अपना ध्यान दूसरे पक्ष पर केंद्रित करके बेहतर संबंध बनायें तथा अपने द्वारा किये जाने वाले अच्छे और सराहनीय कार्यों को अनदेखा रखें व स्वयं उनकी बड़ाई न करें। अपनी प्रशंसा स्वयं न करें। यह कार्य आपके सत्कर्म स्वयं करा लेंगे।
- चाहे हम ग्राहकों के समूह के साथ क्यों न मुखातिब हों, हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि संप्रेषण के दौरान हम सभी को व्यक्तिगत रूप से संबोधित करते हुये से प्रतीत हों। इससे सभी ग्राहकों को संतुष्टि प्राप्त हो सकेगी।
- हम ग्राहकों द्वारा कहे गये तथा उनके अनकहे दोनों सदेशों को आंखों व कानों से पूर्ण रूप से जानने में सिद्धहस्त हों। यह हमारे प्रत्यक्षीकरण को विस्तृत व सटीक करता है तथा ग्राहकों से हमारे द्वारा किये जाने वाले संप्रेषण को सरल तथा प्रभावशाली बनाता है।
- ग्राहक से संप्रेषण के दौरान ग्राहक व उसके द्वारा कही जाने वाली बात को हर पल ध्यान से देखें व समझें।
- हम दुराव छिपाव न रखें साथ ही हमारा संप्रेषण कौशल ऐसा होना चाहिये कि हम ग्राहक द्वारा छुपायी जा रही बातों/तथ्यों को भी जान सकें।
- ग्राहकों के साथ हमारा ऐसा संबंध बन जाये कि वे बिना झिझक और हमें निरापद मानते हुये हमसे अपनी पूरी बात कह सकें।
- ग्राहकों की अपेक्षानुरूप और कभी-कभी उनकी अपेक्षा से कहीं अधिक, उन्हें चौंका देने की हद तक उनको हार्दिक गहराईयों से सहयोग दें। ऐसा बैंकर बिन

मोल अपने ग्राहक को खरीद लेता है।

- ग्राहकों से वार्तालाप करते समय हमेशा ऊर्जावान और तत्पर दिखें।

जब भी हमारा संप्रेषण उद्देश्यपूर्ण, प्रस्तुत्य, व्यावसायिक छवि से युक्त होगा और साथ में यदि वैयक्तिकता (पसंद योग्य, विश्वसनीयता, प्राधिकार) का योग भी हो जाये तो बैंकर आत्म जागरूक, आत्मविश्वासी तथा विश्वसनीय हो जाता है तथा ग्राहक का विश्वास भी जीतता है।

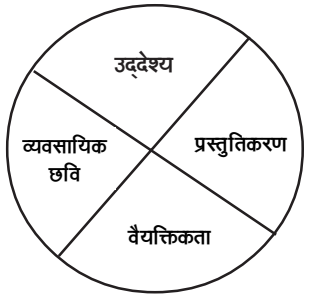

यदि ग्राहक से किसी गंभीर समस्या पर बातचीत हो रही हो तो बेहतर है कि अपने हाथों की क्रियाओं को अपने शरीर की तरफ, अर्थात् अंदर की ओर दिशा दी जाये। जैसे हृदय पर हाथ रखना, गले को छूना आदि। किंतु दूसरी ओर यदि किसी प्रसन्नतादायक बिंदु पर चर्चा हो रही हो तो हमारी क्रियायें शरीर से बाहर की ओर दिशानिर्देशित होनी बेहतर होंगी। यह हमारे संप्रेषण और श्रवण को संपूर्ण बनाता है।

ग्राहकों से बातचीत करते समय सबसे पहले हमें यह तय करना होता है कि हम क्या संदेश देने वाले हैं और साथ ही अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि इस संदेश को देते समय अपने संदेश में हम किन भावों का समावेश करने वाले हैं? यदि हम ग्राहक को उसकी सावधि जमाराशि पर ब्याज की गणना करके उसकी अपेक्षा या अनुमान से कम राशि बताने वाले हैं तो निस्संदेह हमें अपने बॉडी लैंग्वेज तथा भावों को सहानुभूति तथा समानुभूति का रंग देना होगा। यदि हम इसकी विपरीत स्थिति अर्थात् ग्राहक के अनुमान से अधिक राशि उसको देने वाले हैं तो निस्संदेह हमें अपने संदेशों को प्रेषित करते समय प्रसन्नता व उत्साह का समावेश करना होगा। एक बार इस कला का अभ्यास हो जाने पर बैंकर एक कुशल व सशक्त वक्ता माना जाने लगता है। यदि हम अभिप्रेरणात्मक संदेश दे रहे हैं तो हमे ऐसी बॉडी लैंग्वेज का समावेश करना होगा जो हमारे संदेश को और प्रबल बनाये तथा

श्रोता या ग्राहक को अभिप्रेरित करे। वैसे भी ग्राहक से बातचीत करते समय, बैठे हुये हमारी शारीरिक मुद्रा आगे की ओर झुकी हुयी, दोनों हाथ आपस में आलिंगनबद्ध किंतु बाहें कोहनियों के सहारे आगे टिकी हुयीं और चेहरे की भाव-भंगिमा तत्पर तथा सतर्क होनी चाहिये जिससे ऐसा संदेश जाये कि हम ध्यान व तत्परता से ग्राहक की बात को सुन रहे हैं। साथ-साथ ही **हुं! जी! जी हां! हांजी! ओह!** आदि अभिव्यक्तियों द्वारा यह प्रदर्शन भी करना आवश्यक है कि हम उनकी बात को सही अर्थों में समझ रहे हैं।

किसी को भी अपना नाम सबसे अधिक प्यारा होता है। हम बहुत अच्छे बैंकर साबित हो सकते हैं यदि हम अपने ग्राहकों के नाम सही सही याद रखें और उन्हें उनके नाम से पुकारें। नाम पुकारने में भी हमें अपनी सीमाओं का ध्यान रखना है। यदि कोई किशोरवय या बालक ग्राहक है अथवा युवा ग्राहक है तो उन्हें उनके पहले नाम से भी पुकारा जा सकता है। एक बैंकर होने के नाते हमसे अपेक्षा की जाती है कि हम किसी भी उम्र के ग्राहक के नाम के साथ जी जोड़ना ना भूलें। तथापि वरिष्ठ ग्राहकों को प्रथम नाम से पुकारना उचित नहीं होता जब तक कि वे ऐसा विशेष रूप से ना चाहें। अन्यथा उन्हें उनके उपनाम से ही पुकारना उचित रहता है किंतु जी का प्रयोग उसमें भी होना चाहिये।

नामों को याद रखना एक कला है और एक अभ्यास भी। नामों को याद रखने हेतु कुछ उपाय निम्नलिखित प्रकार से हैं-

- मानसिक रूप से तैयार रहें कि आपको खुद से मिलने वाले सभी ग्राहकों के नामों को याद रखना है।
- जब आपका परिचय ग्राहकों से हो या करवाया जाये तो ध्यानपूर्वक सुनें। जब भी हम एक कान से सुनते हैं और दूसरे से निकाल देते हैं तभी हम नाम भूलते हैं। जब हमारा ध्यान कहीं और रहता है और हम सचमुच सुन नहीं रहे होते

तभी हम भूलते हैं। इसलिये पूरे ध्यान से सुनें।

- जब भी किसी ग्राहक से आपका परिचय करवाया जाये, या हो तो उनके नाम को तत्काल दोहरायें व अभिवादन करें। इससे अभिवादन की शिष्टता भी पूरी हो जायेगी तथा आपको नाम दोहराने का मौका भी मिल जायेगा। फिर बातचीत के दौरान कम से कम उस नाम को तीन बार और कहें। यदि किसी कारणवश आप नाम बातचीत के दौरान भूल रहे हों तो आप ग्राहक से पुनः नाम पूछ सकते हैं।यदि विशिष्ट प्रकार का नाम हो तो आप उच्चारण के बारे में भी पूछ सकते हैं। तत्काल दोहराये जाने के बाद आप नामों को याद रख सकेंगे।
- किसी के नाम को याद रखना सबसे सरल है साहचर्य द्वारा। हर किसी का नाम या व्यक्तित्व हमें पूर्व में ज्ञात किसी व्यक्ति के नाम या गुण की याद दिलाता है। शिक्षा का नियम भी **ज्ञात से अज्ञात की ओर** ही है। इसलिये जब भी हमें कोई नया ग्राहक मिले तो उसके नाम व व्यक्तित्व को एक साथ समूह में रखकर देखें तथा पिछले किसी ज्ञात व्यक्ति, व्यवसाय, रिश्तेदार या घटना से संबद्ध करें, साथ ही मस्तिष्क में उनके नाम के साथ एक तस्वीर का निर्माण भी करें। मानव मस्तिष्क उन तथ्यों को कभी नहीं भूलता जो तस्वीरों के रूप में (दृश्य) होते हैं। अतः किसी भी ग्राहक के नाम को याद रखने के लिये उनके नाम, व्यवसाय, व्यक्तित्व, गुण, अवस्थिति, स्थान, प्रदर्शन तथा छवि इन सबका एक सामूहिक प्रत्यक्षीकरण होना चाहिये। हमें नाम याद रहने लगेंगे। किंतु प्रारंभ में कुछ मेहनत करनी पड़ सकती है। अपनी स्मरण शक्ति बढ़ाने में साहचर्य ऐसा उपकरण है जो अचेतनतया हम खूब प्रयोग में लाते हैं।
- **अभ्यास** भी एक सशक्त उपकरण है याद रखने का। एक बार किसी के नाम को याद रखने के बाद उसको याद करने का अभ्यास भी चमत्कारी प्रभाव लाता है। किंतु अभ्यास के दौरान ग्राहक की पोशाक, आभूषण जैसे परिवर्तनीय उपादानों को याद नहीं करना चाहिये बल्कि उसके व्यक्तित्व के उन अभिन्न गुणों और विशेषताओं को याद रखना चाहिये जो अपरिवर्तनीय होंगे और अगली बार उनमें कोई परिवर्तन नहीं होगा।
- **पुनरीक्षण**- जब भी ग्राहकों से भेंट हो या अन्यत्र भी मिलने का अवसर प्रप्त हो, उनके चेहरों को नामों सहित मस्तिष्क में एक तरह से स्कैन करने की आदत डालें तथा घर जाकर या किसी अन्य अवसर पर, थोड़े से अंतराल के बाद उनकी समीक्षा करें कि उनमें से सभी या कुछ आपको याद हैं या नहीं। इससे स्व-मूल्यांकन भी होगा और अभ्यास भी। यदि आपके पास उनके कार्ड हों तो उन्हें देखकर भी उनको व उनके नामों को याद रखा जा सकता है। आप अपनी समीक्षा खुद कर सकेंगे।

चुनौतियां-

- **चुनौती**-1- ध्यानपूर्वक व प्रभावी तरीके से सुनें। यदि आप सहमत न भी हों तब भी, पहले पूरी बात ध्यान से सुनिये तथा श्रवण को प्रदर्शित कीजिये। तनावपूर्ण स्थिति में भी, पहले ग्राहक की पूरी बात सुनिये, अपना वक्तव्य देने से पहले, उसके द्वारा कही गयी बात को, विशेषकर उस बात में छुपे उसके भावों को दोहराकर पुष्टि कर लीजिये कि आपने सही समझा है या नहीं, तब उसके ऊपर अपनी प्रतिक्रिया दीजिये। ग्राहक की पूरी बात को सुनना, सहमति देना या अनुमोदन देना नहीं है बल्कि केवल सुनना मात्र ही है।
- **चुनौती**-2- वार्तालाप का उद्देश्य स्पष्ट कीजिये और उनके विचार आमंत्रित कीजिये। वार्तालाप का उद्देश्य तब स्पष्ट करने की आवश्यकता पड़ती है जब हम वक्ता होते हैं। उस स्थित में जब हम कुछ कहना चाहते हैं तो हमें पहले ही ग्राहक को बता देना चाहिये कि हम कुछ समय उनसे अमुक बिन्दु पर वार्तालाप करना चाहते हैं। इससे ग्राहक मानसिक रूप से बात करने को तैयार हो जाता है और संप्रेषण परिणाममूलक रहता है।

- **चुनौती** 3- वक्ता के रूप में संप्रेषण के दौरान अपना मंतव्य पूरी तरह से स्पष्ट करें। धीरे-धीरे अपनी बात कहें और ग्राहक को स्पष्ट करें कि आप संस्था या बैंक की ओर से उनसे वार्तालाप कर रहे हैं। इससे ग्राहक का आपमें विश्वास बढ़ेगा। धीरे-धीरे कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे दृश्य और श्रव्य अनुभूतियों में अंतर होता है। हमारे देखने की गति सुनने की तुलना में मोटे तौर पर कहा जाये तो लगभग सवा तीन हज़ार गुना अधिक होती है। इसलिये संप्रेषण के समय अपनी दृश्य शक्ति का भरपूर प्रयोग करें।
- **चुनौती**-4- ग्राहक से बातचीत करते समय उसकी शिकायत को अनुरोध के रूप में नोट करें तथा समाधान निकालने की कोशिश करें। सार्वजनीन अभिव्यक्तियों जैसे, किसी ने ऐसा कह दिया होगा! कोई ऐसा कह रहा था कुछ लोग इस काम को कर देंगे, आदि न दें। हमेशा मैं इस काम को करवा दूंगा, मैं

इस समस्या का समाधान खोज निकालूंगा आदि विशिष्ट व व्यक्तिपरक अभिव्यक्तियां दीजिये जो ग्राहकों को संतुष्ट कर सकें।

- **ग्राहकों से खुले प्रश्न पूछें** अर्थात् ऐसे प्रश्न पूछे जाने चाहिये जिनके उत्तर में ग्राहक स्वयं की बात को अधिक से अधिक विस्तार दे सके। **हां, ना** के उत्तर वाले प्रश्न ग्राहक की समस्या को या मंतव्य को आपके समक्ष बेहतर तरीके से खोलकर नहीं रख सकेंगे। और इसी कारण से आप ग्राहक की समस्या की तह तक सही परिप्रेक्ष्य में नहीं पहुंच पायेंगे। उदाहरण के लिये ''आप हमारी इस योजना के बारे में क्या सोचते हैं?'' स्थान पर क्या आपको हमारी यह योजना अच्छी लगी? यह बंद प्रश्न है। इसका उत्तर हां या ना में होगा जो ग्राहक का मुंह ठप्प करवा देगा।
- **अपने संप्रेषण के दौरान** सराहना, अभिप्रेरणा, प्रोत्साहन, आनंद, स्वीकृति, उत्साहवर्धन, तथा आभार प्रदर्शन जैसे सकारात्मक पहलुओं का खूब प्रयोग करें। इस जीवन में और कार्यस्थल पर नकारात्मक तथ्यों, घटनाओं व विचारों की भरमार है और ये आपको बिना ढूँढे मिल जायेंगे। किंतु हमें जीवन के सिर्फ आनंददायक भाग पर ही निगाहें रखनी हैं। साईकिल चलाते समय हमारी निगाह जहां रहती है, वहीं हमारी साईकिल चली जाती है। इसलिये संप्रेषण के दौरान हमारी निगाहें सकारात्मक पहलुओं पर रहेंगीं तो संप्रेषण का परिणाम भी सकारात्मक होगा।
- कार्यस्थल में कई बार ऐसी परिस्थितियां आ जाती हैं जब हमें **कड़वा सच बोलना ही पड़ता है।** सच तो सच ही है। कड़वा हुआ तो भी हमें ग्राहक के सामने तो कहना पड़ेगा ही। यह कई बार संबंधों के टूटने, शिकायतों को जन्म देने तथा ग्राहक के बहिर्गमन का कारण भी बन जाता है। ऐसी अप्रिय स्थिति का सामना करने की तुलना में लगता है कि बेहतर यही है कि इस कड़वे सच को कहने की अपेक्षा अनकहा ही रखा जाये। किंतु हमें यह सोचना चाहिये कि हम जिसे सत्य मान रहे हैं, वह निरपेक्ष सत्य नहीं है। वह हमारे पिछले अनुभवों, जीवन के ज्ञान तथा वर्तमान परिस्थितियों के संघटन का आंशिक पारिणाम है। इसलिये इसे कहने में कड़वा या मीठा जैसी कोई तुलना नहीं होनी चाहिये। जो तथ्य है, वह वर्तमान परिस्थितियों के सापेक्ष है इसलिये अपने भावों, भाव-भंगिमाओं तथा बॉडी लैंग्वेज के उचित प्रयोग द्वारा हम किसी भी कड़वी से कड़वी बात को ग्राहक के समक्ष कह सकते हैं। जिसे हम सत्य मान रहे हैं, वह सामने वाले ग्राहक की नज़र से कुछ और हो सकता है, हमारे ही किसी सहयोगी की नज़र में कुछ और होगा तथा वैसे ही हमारी ही नज़र में कुछ और होगा। इसलिये जिस सत्य को लेकर हम इतने परेशान हो रहे हैं, वह निरपेक्ष सत्य है

ही नहीं! उसे कहिये और अपना नज़रिया मानकर कहिये। ग्राहक को बुरा नहीं लगेगा।

- कोई भी सच कहते समय आप यह याद रखें कि कही जाने वाली बात निरपेक्ष सत्य तो नहीं ही है। यह आपके निहायत व्यक्तिगत तौर पर किये गये अवलोकन का हिस्सा है। जो आपका अवलोकन है, हो सकता है वह दूसरे का न हो या हो भी, तो इसे कहने में भय या उलझन कैसी और क्यों? अपना-अपना अवलोकन है।
- ऐसा अप्रिय सच कहते समय यह मान लें कि आपने व आपकी परिस्थितियों नें उत्कृष्ट परिणामों हेतु भरसक प्रयास किये हैं तो इस अप्रिय सत्य से जुड़े परिणाम तक पहुंच सके हैं। जब भरसक प्रयास कर लिये गये हैं तो फिर पश्चाताप या उलझन के लिये कोई स्थान नहीं रहता।
- कभी भी सत्य बोलते समय कुछ बातों का अवश्य ध्यान रखें कि क्या ग्राहक ने पहले कभी इसे सुना है? क्या वे इस बारे में कुछ कर सकते हैं? क्या वे इस सत्य को सुनने की स्थिति में हैं? आदि-आदि। संप्रेषण का कार्य सिर्फ संदेशों को कह देना मात्र ही नहीं है बल्कि उन्हें सही तरीके, उचित समय व स्थान पर सही व्यक्ति के सामने कहने की कला है।
- कभी-कभी आपका सत्य ग्राहक द्वारा सहमति योग्य नहीं होता। ऐसे में संप्रेषण के दौरान ग्राहक से कुछ और खुले प्रश्न पूछें ताकि ग्राहक की ओर से संप्रेषण में कुछ अतिरिक्त प्रतिभागिता की जा सके। इससे आपको कुछ समय अतिरिक्त मिल जायेगा तथा ग्राहक को अपनी बात कहने का। सहमति की संभावनाओं में वृद्धि होगी। यदि अंततः बैंकर को असहमत होना भी पड़े तो ग्राहक इस बात को मानने में कष्ट न हो कि बैंकर द्वारा पूरे प्रयास किये गये।
- हमेशा अपनी ओर से सत्य न कहें, ग्राहक के सत्य को भी सुनने का साहस रखें। हो सकता है ग्राहक के सत्य में आपका वास्तविक सत्य छुपा हो और विरोध की कोई स्थिति आये ही नहीं तथा संप्रेषण दोनों पक्षों की ओर से सामंजस्यपूर्ण व सौहार्दपूर्ण होने के साथ ही परिणाममूलक भी हो।
- अपनी बात को संप्रेषण के दौरान इस प्रकार रखें कि ग्राहक को ऐसा प्रतीत हो कि उनकी बात भी आपके लिये उतनी ही महत्वपूर्ण और मूल्यवान है।
- हर ग्राहक यह चाहता है कि आप उसका ध्यान दें। बिना इसका **ध्यान दिये**,कि आप क्या जानते है? सुनना भी दूसरे पर **ध्यान देने** जैसा ही है। सुनने के दौरान ग्राहक को नहीं टोकना भी **ध्यान देना** है। कही गयी बात को स्वीकार करना, अनुमोदित करना भी **ध्यान देने** जैसा है। ग्राहक द्वारा पहले बतायी गयी बातों को बिना उनके कहे याद करना भी **ध्यान देने** का भाग है।

- अपना अंतिम मंतव्य और निर्णय देने से पहले अपनी सोच, दृष्टिकोण, सुनी गयी बातों और जानी-समझी गयी परिस्थिति के बारे में ग्राहक से चर्चा करें और उनके अनुमोदन के उपरांत ही अपना निर्णय या मंतव्य दें। आप कह सकते हैं- मैं ऐसा समझता हूं, मुझे ऐसा लगता है, क्या मैं सही हूं? आदि।

संप्रेषण के दौरान ऐसी स्थिति भी आती है जब दोनों पक्ष- ग्राहक और बैंकर सहमत नहीं होते। यह स्थिति संप्रेषण की असफलता का सूचक होती है। इस प्रकार के 5 संप्रेषण होते हैं-

1. **नकारात्मक संप्रेषण**- यह संप्रेषण का वह प्रकार है जिसमें हम नकारात्मक रूप से अपनी बात कहकर उसका सकारात्मक परिणाम पाना चाहते हैं या कम से कम इसकी आशा करते हैं। इसमें मैं से शुरु होने वाले वाक्य बेहतर कारगर साबित होते हैं। जैसे यदि हमारी शाखा में कोई नकारात्मक प्रवृत्ति वाला सहयोगी है तो उसको दूर-दूर से भुनभुनाने के बजाय हम सीधे नकारात्मकता पर उसकी प्रहार करें तो संभवतः वह अपनी नकारात्मक सोच को छोड़ दे। जैसे- मैं जब-जब इस हेड को टैली करने की कोशिश करता हूं, तुम मुझे हतोत्साहित कर देते हो और मैं इस काम को कर नहीं पाता। इस प्रकार के वाक्य संभवतः हमारे नकारात्मक सहयोगी को उसके किये से रोक सकें।
2. **आरोपी संप्रेषण**- इस प्रकार के संप्रेषण में ग्राहक बैंकर पर अपनी ब्याज राशि की दोषपूर्ण गणना या डी डी पर प्राधिकृत हस्ताक्षर न होने के लिये बैंकर को दोषी ठहरा सकता है। वह अपने किसी काम की गलती के लिये बैंकर को दोष देता है। इसके लिये वह किसी भी प्रकार से स्वयं को दोषी नहीं मानता। इसका निवारण करने हेतु ग्राहक की समस्या को बारी-बारी से सुलझाया जा सकता है तथा आवश्यकता पड़ने पर समकक्षों और सहयोगियों की भी सहायता ली जा सकती है।
3. **वरिष्ठीय संप्रेषण**- वरिष्ठ अधिकारी या ग्राहक सामान्यतया आदेशात्मक लहजे में बात करते, सलाह देते तथा दिशानिर्देश देते हैं। साथ ही, इस श्रेणी के ग्राहकों और अधिकारियों द्वारा किये जाने वाले संप्रेषण का एक दोषपूर्ण पक्ष यह भी है कि ये लोग सूचनाओं को अपने पास रोके रहते हैं, सार्वजनिक नहीं होने देते जिस कारण से अधीनस्थ वर्ग में निराशा, विद्रोह तथा विध्वंसात्मक प्रवृत्तियां जन्म लेने लगती हैं। इस प्रकार के संप्रेषण को निश्चयपूर्वक तथा विनम्रतापूर्वक अपनी बात कहकर प्रतिकार किया जा सकता है।
4. **बेईमानीपूर्वक किया गया संप्रेषण**- जब संप्रेषण की प्रक्रिया में समानुभूति तथा श्रव्यता का अभाव हो तो इसे बेईमानीपूर्वक किया गया संप्रेषण मानते हैं। इसे **खाया न पिया- गिलास तोड़ा बारह आना** भी कह सकते हैं। अर्थात् इधर-उधर

की बातें खूब करना और समस्या का निपटान न करना। इस प्रकार के संप्रेषक मैं के स्थान पर **हम** का शब्द प्रयोग करते हैं ताकि उनका संप्रेषण प्रबल बन सके किंतु जबकि सत्य यह होता है कि समस्या केवल उन्हें ही होती है जिसे वे बहुवचन बनाकर प्रभावी बनाना चाहते हैं। इस प्रकार के संप्रेषण का प्रतिकार टीम के सभी सदस्यों द्वारा परस्पर आदर, आरोपों को नकार करके तथा बहानेबाजी से दूर रहकर किया जाना चाहिये।

5. **चयनात्मक संप्रेषण**- इसमें ग्राहक शाखा के हर स्टाफ से आशा करता है कि वह उसके संदेश को समझे और कार्य करे। इसका प्रतिकार शाखा के अन्य सदस्यों द्वारा निश्चयात्मक तथा विनम्रतापूर्वक आग्रह के साथ किया जा सकता है कि वे बैंकर के पक्ष को भी समझें।

संप्रेषण के दौरान यदि ग्राहक बैंकर पर व्यक्तिगत रूप से आरोप लगाये तो बैंकर को तत्काल प्रतिक्रिया नहीं करनी चाहिये। इसके लिये-

1. अपनी आंखों, कानों तथा समस्त ज्ञानेंद्रियों का प्रयोग करते हुये पूरी बात को समझने की कोशिश करें। अपने दिल को किनारे करके सिर्फ और सिर्फ अपना दिमाग लगायें। (याद रखें कि हम जो अनुभव करते और सोचते हैं, हमारा व्यवहार उसी से दिशानिर्देशित होता है) अतः जब बैंकर की आलोचना हो रही हो तो उसे दिल वाला नहीं दिमाग वाला बन जाना चाहिये। कार्यालय में भावनाओं का स्थान अपेक्षाकृत नहीं होता है।
2. समस्या को दूसरे नज़रिये से देखने व निपटाने का प्रयास करें तथा लचीला रवैया अपनायें।
3. अपने द्वारा किये गये निर्णयों को मूल्यांकन करें, विभेद करें तथा परखें।
4. रक्षात्मक रवैये से दूर रहें।
5. **हम** के स्थान पर **मैं** का प्रयोग करें क्योंकि **हम** के द्वारा हम उत्तरदायित्व का वितरण व विभेदन करते हैं जो ग्राहक को पसंद नहीं आता।
6. हर संघर्ष को एक अवसर के रूप में देखें अर्थात् कुछ सीखने की कोशिश करें और सकारात्मक रवैया अपनायें।हमेशा हम यह सोचते हैं कि यदि हमारा ग्राहक से किसी बात पर मतभेद हो गया है तो वह ऋणात्मक ही है, और उसे यों ही छोड़ देने से वह सुलझ जायेगा। साथ ही हमारा यह भी सोच होती है कि संघर्ष में एक की जीत और दूसरे की हार ही होती है तथा यह केवल संबद्ध दोनों पक्षों को ही प्रभावित करता है जबकि यह सब गलत व भ्रामक धारणायें हैं। हम संघर्ष और मतभेदों को नये तरीके से देखें तो परिणाम भी नये-नये होंगे जैसे :

नकारात्मक से	सकारात्मक की ओर
ध्यान भंग करना	अवसर प्राप्त होना
असंगतता	वैविध्य
त्रुटियां	सुधार
सही/गलत	मतांतर
वैयक्तिक	मुद्दे पर

संप्रेषण के स्रोत

अच्छे संप्रेषण के टिप्स

एक सफल व्यक्ति होने के लिये आवश्यक है कि अपने संदेशों को प्रभावी तरीके से दूसरों तक पहुंचाया जा सके। सभी व्यक्ति किसी न किसी तरीके से अपनी बात कहते हैं, किंतु बहुत कम ऐसे होते हैं जो अपनी बात प्रभावी ढंग से कह पाते हैं या वैसे कह पाते हैं जैसे वे कहना चाहते हैं। हमें याद रखना चाहिये कि अच्छा संप्रेषण अच्छे बैंकर का आवश्यक गुण है। यदि आपके संप्रेषण में प्रबलता है अर्थात् हमारे संप्रेषण के दौरान हम ऊर्जावान दिखते हैं तो यह श्रोता को बेहतर अनुभव देता है और वह कही गयी बात को ध्यान से सुनता है। आप वार्तालाप के दौरान कितना सुनते हैं, दूसरे को कितना कहने का अवसर प्रदान करते हैं या अपनी ही बात कहते जाते हैं, दूसरे की बात को आधा सुनने के बाद ही यदि अपनी बात कहनी शुरू कर देते हैं तो यह संप्रेषण में अधूरापन और उबाऊपन लायेगा।

इसके लिये कुछ बिंदुओं का ध्यान रखना जरूरी हो जाता है-

- संप्रेषण के माध्यम का तालमेल संप्रेषण संदेश से ध्यानपूर्वक बिठायें।
- पूछे जाने वाले संभावित प्रश्नों को जानिये। यह आपको सही उत्तर देने में मदद करेगा।
- गलतफहमी तभी होती है जब हम सिर्फ अपने मतलब की बातें सुनना चाहते हैं। इसलिये सारी बातों को बिना किसी पूर्वाग्रह के सुनिये।
- लोगों के कथनों के लिये अपने दिमाग के दरवाज़े खुले रखें।
- आप केवल शब्दों पर ध्यान दीजिये न कि उस व्यक्ति पर, जो उन्हें कह रहा है।
- जहां तक हो सके, वातावरण को सौहार्दपूर्ण बनाने वाले लहज़े में बात करिये।
- हर प्रतिप्रश्न का उत्तर सकारात्मक हो और हर चर्चा का अंत सौहार्दपूर्ण हो- ऐसा हर बार संभव नहीं भी हो सकता किंतु बातचीत का प्रारंभ तो वक्ता के हाथ में रहता ही है। अतः हमेशा स्वागत करने वाले सौहार्दपूर्ण शब्दों से बातचीत को प्रारंभ करें।
- सकारात्मक फीडबैक देते समय अपनी प्रशंसा के कारणों तथा तथ्यों को अवश्य बतायें।
- अधिकतम 20 से 45 मिनट तक ही बोलें क्योंकि यही प्रत्येक व्यक्ति के ध्यान की अधिकतम सीमा है।
- जिस बारे में आपको बोलना (या लिखना) हो उसके बारे में अपना ज्ञान बढ़ाइये।
- स्पष्टतया सुनने योग्य बोलें।
- श्रोता से दो बार सुनिश्चित कर लें कि उसने ठीक-ठीक समझा है या नहीं?
- किसी प्रकार के व्यवधान की स्थिति में, विगत कथन से थोड़ा पहले ही शुरू करें ताकि तारतम्यता बनी रहे।
- सुनते समय वक्ता की बात को पूरे ध्यान से सुनें।
- सुनते समय महत्वपूर्ण बातों को नोट भी किया जा सकता है। इससे आपको याद करने में मदद मिलेगी।
- यदि आप श्रोता की किसी बात को न समझ पायें हों तो आप स्पष्टीकरण के लिये कह सकते हैं।
- वक्ता की बात को दोहरायें ताकि इस बात की जांच हो सके कि जो कुछ भी वक्ता कहना चाह रहा था, वही आपने समझा है।
- बोलने से पहले मन में सोचने की आदत डालें। साथ ही दूसरे के बोलने के साथ-साथ अपने निर्णय पर न पहुंचने लगें। इससे आप सामने वाले की बात पूरी तरह से सुन नहीं पायेंगे और मन में निर्णय लेने में लग जायेंगे।
- वक्ता की बॉडी लैंग्वेज़ तथा स्वर की ध्वनि पर ध्यान दें। बात समझने के लिये

शब्दों की तुलना में इससे आपको अधिक मदद मिलेगी।

- वक्ता जिस बात को दोहरा रहा है या स्पष्ट कर रहा है, आप उसको अच्छी तरह समझ रहे हैं, सुनिश्चित कर लें।
- बातचीत का विषय अचानक न बदल दें। इससे ग्राहक को ऐसा भी लग सकता है कि आप उसकी बात मे रुचि नही दर्शा रहे हैं।
- तत्काल किसी प्रकार की प्रतिक्रिया न करें और न ही बुदबुदायें।
- तकनीकी शब्दों का प्रयोग न करें क्योंकि ये शब्द श्रोता की समझ से परे भी हो सकते हैं।
- बहुत धीमे या बहुत तेज गति से न बोलें।
- शोर-शराबे वाले स्थानों पर न ही बोलें क्योंकि आपकी बात सुनी नहीं जा सकेगी।
- सभी आपको समझ सकते हैं, ऐसी भ्रांति कतई न पालिये।
- ग्राहक की बात सुनते समय आप इधर-उधर न देखें। इससे वक्ता का ध्यान बंट सकता है।
- वक्ता के बोलने में व्यवधान न डालें।
- जल्दबाजी में यह निर्णय न लें कि आपने सारी बातें समझ ली हैं।
- वार्तालाप के दौरान अपनी कथा न शुरू कर दें। इससे सामने वाले का ध्यान बंटेगा और वह चिड़चिड़ाहट भी महसूस कर सकता है।
- संप्रेषण के बाधक तत्वों से घबरायें नहीं क्योंकि प्रत्येक बाधक तत्व एक न एक अवसर अपने साथ लाता है।
- अपनी सोच को सीमित न करें।
- बाधायें सीमित होती हैं, किंतु अवसर असीमित होते हैं - इसे हमेशा याद रखें।
- स्वयं को समझाने से अधिक, दूसरों को समझने का अधिक प्रयास करें।

प्रयुक्त शब्दावली

संप्रेषण	Communication
व्यावसायिक	Professional
प्राधिकार	Authority
विश्वसनीयता	Reliability
साहचर्य	Association
स्वमूल्यांकन	Self Assessment
सराहना	appreciation

अभिप्रेरणा	Motivation
प्रोत्साहन	Encouragement
स्वीकार्यता	acceptability
उत्साहवर्धन	Encourgement
आरोपी	Accused
चयनात्मक	Selective
बेईमानीपूर्वक किया गया संप्रेषण	Insincere communication
वैविध्य	Diversity
असंगत	Incompatible
सुधार	Improvement
द्वंद्व	Conflict
अंतर	Differentiation

8. संवेग और भाव

(फोबिया के विशेष अर्थों में)

कुछ डर ऐसे होते हैं जो हर व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। हमें उस व्यवहार का कारण समझ में नहीं आता इसलिये हम कारण से अनभिज्ञ रहते हैं और अपनी समझ के अनुसार ग्राहक सेवा देने और परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया देने लगते हैं। हालांकि किसी न किसी प्रकार का डर हर व्यक्ति के मन में होता ही है जो सामान्य माना जाता है। किंतु जब यही डर निर्धारित मात्रा से अधिक हो जाता है तो बीमारी बन जाता है। डर की इस बीमारी को फोबिया कहते हैं। ज़रूरी नहीं हर डर फोबिया ही हो। सामान्यतया हम सब किसी न किसी वस्तु से भयभीत होते हैं। इसे फोबिया नहीं कहा जा सकता। किंतु डर की असामान्य मात्रा तथा अत्यधिक प्रतिक्रिया इसे बीमारी बनाती है।

कई प्रकार के फोबिया होते हैं किंतु यहां हम उन्हीं का वर्णन और चर्चा करेंगे जो ग्राहक या बैंकर के व्यवहार को प्रभावित करते हैं, खासकर ग्राहक के परिप्रेक्ष्य में ही चर्चा होगी। किंतु समस्या सिर्फ ग्राहक की ही नहीं, बैंकर की ओर से भी हो सकती है।

अगोराफोबिया (Agoraphobia)- इस फोबिया में व्यक्ति को भीड़ भरी जगहों से डर लगता है। खासकर ऐसी जगहें या परिस्थितियां, जहां से भागना संभव न हो पाये। जो ग्राहक इस फोबिया से पीड़ित होते हैं, शाखा में भीड़ होने पर असहज महसूस करने लगते हैं तथा बैंकर से काम जल्दी-जल्दी निपटाने का आग्रह करने लगते हैं। बैंकर को इसका कारण भी समझ में नहीं आता और वह ग्राहक को लाईन से आने के लिये आग्रह करता है। चूंकि ग्राहक डर रहा होता है, या तो वह काम छोड़कर चला जाता है और बाद में बैंकर के दुर्व्यवहार की और काम न पूरा करने की शिकायत करता है या लाईन तोड़कर, बाकी लाईन में लगे ग्राहकों से झगड़ा कर काम पहले करवा लेता है। इस प्रकार के ग्राहक बहुत कम संख्या में होते हैं। इनको यदि बैंकर द्वारा पहचान लिया जाये तो इन्हें कहीं कम भीड़ वाली जगह पर शाखा में बैठाया जा सकता है और इनका काम करके, उनको उनके

स्थान पर देकर इन्हें शाखा से बाहर पहुंचाने में मदद की जा सकती है। ये इतनी सी सहायता से बैंक और बैंकर- दोनों को हमेशा याद रखेंगे और कृतज्ञ रहेंगे।

एंड्रोफोबिया (Androphobia)- यह **पुरुषों से डर** के कारण होता है। यह फोबिया उन महिलाओं में अधिकांशतया पाया जाता है जो घर से बाहर कम निकलती हैं या जिनको बचपन से पुरुषों से दूर रहने, घर के अंदर ही काम करने और बालिका शिक्षा में पढ़ने दिया जाता है। इस प्रकार की महिला-ग्राहक काउंटर पर बैठे पुरुष ग्राहक से अपनी बात कहने में हिचकती हैं, बात पूरी तरह से समझा नहीं पातीं और टुकड़ों-टुकड़ों में बात पूरी करती हैं जिससे बैंकर पूरी तरह से उनकी अपेक्षाओं को समझ नहीं पाता। यदि ऐसी कोई महिला ग्राहक आये तो उनकी बात समझने और काम करने के लिये किसी महिला बैंकर की सहायता ली जा सकती है।

एंथ्रोपोफोबिया (Anthropophobia)- यह **समाज से या समाज के लोगों से डर** होता है। इस फोबिया से पीड़ित ग्राहक लोगों से, सामाजिक आयोजनों, समारोहों तथा उत्सवों और दावतों से दूर भागते हैं। इस प्रकार के ग्राहक को आप बैंक द्वारा आयोजित की जाने वाली ग्राहक बैठकों, संगोष्ठियों और अन्य आयोजनों में आमंत्रित नहीं कर सकते। यदि आप आमंत्रित करेंगे भी तो ये उपस्थित नहीं होंगे, भले ही वे आपके कितने ही विशिष्ट ग्राहक क्यों न हों!

अफेन्फोस्मफोबिया (Aphenphosmphobia)-इस फोबिया में व्यक्ति को छूने का डर सताता है। शरीर का कोई हिस्सा यदि बैंकर के हाथ से छू गया तो बवाल मच सकता है। यह फोबिया भी, हमारे समाजिक ढांचे के अनुसार, अधिकांशतया महिलाओं में होता है। इसलिये महिलाओं को दस्तावेज़, पेन-पेन्सिल, पिन, गोंद आदि प्रदान करते समय बैंकर को विशेष रूप से सावधान रहने की ज़रूरत है।

अरिथमोफोबिया (Arithmophobia)- **संख्याओं से डर** से संबंधित है यह फोबिया। जिन ग्राहकों को संख्याओं से डर लगता है, वे इस फोबिया से ग्रस्त होते हैं। ऐसे ग्राहक गणनायें नहीं कर पाते, नोट नहीं गिन पाते, हिसाब से दूर भागते हैं। जब भी ऐसे ग्राहक नकदी आहरण या जमा करते हैं - गिनने से दूर भागते हैं और बैंकर से नोट गिनने का आग्रह कर सकते हैं।

अटैक्सोफोबिया (Ataxophobia)- गंदगी, अव्यवस्था का फोबिया। इस फोबिया से पीड़ित ग्राहक फाईलों पर या शाखा के काउंटर पर धूल/ गंदगी या दस्तावेज़ बिखरे देखकर असहज महसूस कर सकते हैं। आप ही के सामने बार-बार हाथ धो सकते हैं। बुरा मानने की आवश्यकता बिलकुल नहीं। शांत और सहज रहिये। यह उनका अपना डर है। तथापि सफाई का कोई विकल्प नहीं। शाखा में साफ-सफाई रखना बैंक स्टाफ तथा प्रबंधन की जिम्मेदारी है।

अटीलोफोबिया (Atelophobia)- अपूर्णता का भय। कोई भी पूर्ण नहीं होता। हम सभी यह मानते हैं। लेकिन इस फोबिया से पीड़ित व्यक्ति नहीं मानते। इस भय से वे किसी के सामने लिखते-पढ़ते और यहां तक कि बोलते भी नहीं। इनसे इन कामों की बलपूर्वक अपेक्षा करना शिकायतों को आमंत्रित करना है। इस प्रकार के ग्राहक विद्ड्रॉल भरने, पेईंन स्लिप भरने में असहज महसूस करते हैं और बैंकर से ही भरने को कह सकते हैं। बैंकर के ऐसा न करने पर वे असहयोग और संतोषदायक ग्राहक सेवा न देने की शिकायत भी कर सकते हैं। सावधान रहें। आप उन्हें किसी और से सहायता लेने का सुझाव दे सकते हैं।

बाथमोफोबिया (Bathmophobia)- ढलान का फोबिया। यदि शाखा के प्रवेश द्वार पर सीढ़ी के बदले ढलान है, तो इस फोबिया से पीड़ित ग्राहक किसी कीमत पर शाखा में प्रवेश करना पसंद नहीं करेंगे। पासबुक अपडेट करवाने के लिये किसी के हाथ भेजेंगे और आपको फोन करके उस काम को करने का आग्रह कर सकते हैं। बुरा मानने की आवश्यकता नहीं है। वे अपने ठाठ आपको नहीं दिखा रहे बल्कि अपने डर के कारण शाखा में नहीं आ पा रहे। कृपया सहयोग बनाये रखें।

बेलोनफोबिया (Belonephobia)- सुईयों और पिनों से डर। ऐसे ग्राहकों को दस्तावेजों में पिन लगाकर न दें। खीझने लगेंगे। नाराज़ भी हो सकते हैं। स्टेप्लर का प्रयोग करें। पिन तो वहां भी होते हैं परंतु नुकीले नहीं होते।

बिब्लियोफोबिया (Bibliophobia)- किताबों का डर। बड़े-बड़े रजिस्टरों, लेज़रों से इस प्रकार का ग्राहक डर सकता है और इस वजह से आपके पास नहीं बैठेगा। वैसे भी अब साफ-सफाई के मद्देनज़र सभी रजिस्टर, बहियां ड्रॉअरों में रखी जाती हैं।

साईबरफोबिया (Cyberphobia)- कम्प्यूटरों से डर। इस फोबिया से पीड़ित ग्राहक कभी भी कम्प्यूटरीकृत पासबुक नहीं बनावाना चाहेंगे, कभी भी ए टी एम का प्रयोग नहीं करना चाहेंगे। उन्हें इसके लिये मज़बूर करना शिकायतों को निमंत्रण देना होगा। ऐसे ग्राहक परंपरागत बैंकिंग पसंद करते हैं।

ईफेबीफोबिया (Ephebiphobia)- किशोरों से भय। इस फोबिया से पीड़ित ग्राहक कम आयु के बैंकर के पास जाने से हिचकिचायेंगे। इन्हें किसी परिपक्व व प्रौढ़ बैंकर के पास भेजा जाना चाहिये।

ग्लोसोफोबिया (Glossophobia)- सार्वजनिक स्थानों पर वक्तृता का डर। इस फोबिया से पीड़ित ग्राहक सार्वजनिक स्थानों पर बोलने से कतराते हैं। आपसे अपनी बात कान में, धीरे से और अकेले में कहना चाहते हैं। इसे अन्यथा न लें। उनको इस प्रकार का अवसर अवश्य दें ताकि वे मुखर हो सकें।

मेलानोफोबिया (Melanophobia)- काले रंग का डर। इस फोबिया से पीड़ित

ग्राहक आपसे दस्तावेज रंगीन प्रिंट में मांग सकते हैं। यथासंभव उनकी सहायता करने की कोशिश कीजिये। यह उनका हठ नहीं, अपना डर है।

पेपरोफोबिया (Paperophobia)- कागज़ से डर- इस फोबिया से पीड़ित ग्राहक ई बैंकिंग तथा तकनीक आधारित बैंकिंग के लिये सर्वथा उपयुक्त होते हैं। आप इन्हें नवोन्मेषी उत्पाद व सेवायें अधिक से अधिक बेच सकते हैं।

टेक्नोफोबिया (Technophobia)-इस फोबिया से पीड़ित ग्राहकों को **तकनीक से भय** लगता है इसलिये ये इससे दूर ही रहना चाहते हैं। इन्हें परंपरागत बैंकिंग अच्छी लगती है।

वेनुस्ट्राफोबिया (Venustraphobia)- सुंदर महिला से डर। यह फोबिया ज्यादातर पुरुषों में पाया जाता है। यदि काउंटर पर कोई सुंदर महिला बैंकर बैठी होगी तो ये ग्राहक अपना काम बिना करवाये ही वापस जा सकते हैं। या फिर दूर बैठे किसी पुरुष ग्राहक को अपना उक्त काम करने के लिये आग्रह कर सकते हैं।

9. सामाजिक अवस्थिति - प्रतिष्ठा और अपेक्षा

समाज में विभिन्न स्तरों, जीवन शैलियों और विचारधाराओं के ग्राहक वर्ग से हमारा सामना होता है। जो जैसा है, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना बैंकर के रूप में हमारी बुद्धिमानी है। मनोविज्ञान के अलावा इसमें एक इंसान के रूप में हमारा दृष्टिकोण भी बहुत मायने रखता है कि हम सामने वाले के आंतरिक व्यक्तित्व को कैसे और कितनी जल्दी समझ पाते हैं।

बैंक शाखा/कार्यालय में आने वाले ग्राहकों की सामाजिक प्रतिष्ठा तथा समाज में उनकी अवस्थिति अलग-अलग होती है। यह भिन्नता आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक हो सकती है। इन्हीं भिन्नताओं के कारण हर वर्ग के ग्राहकों की अपेक्षायें अलग-अलग हो जाती हैं। जब अपेक्षायें अलग-अलग होती हैं तो उनकी पूर्ति का ढंग भी समान नहीं हो सकता। एक बैंकर के रूप में हमारे स्तर पर यह आम गलती होती है कि हम हर वर्ग के ग्राहक की अपेक्षाओं की पूर्ति या ग्राहक सेवा प्रदान करने के लिये एक समान मानदंड अपना लेते हैं। चूंकि अपेक्षा तो कुछ और है और प्रस्तुत कुछ और किया जा रहा है। इसलिये मांग और आपूर्ति के बीच साम्यता न होने से एक खाई पैदा हो जाती है जो शिकायतों, उलझनों, असंतोष और अंततः कारोबारी ह्रास को जन्म देती है। हमारे पास आने वाले सभी ग्राहकों को एक ही तराजू से तौलना हमारे स्तर पर महान भूल होगी। बाल ग्राहक को वृद्ध ग्राहक के समान, महिला ग्राहक को पुरुष ग्राहक के समान, संवेदनात्मक रूप से अतिकोमल किशोर ग्राहक को अनुभवी और वयोवृद्ध ग्राहक के समान, नास्तिक और अविश्वासी ग्राहक को धार्मिक व आस्तिक ग्राहक के समान मानकर व्यवहार करना सरासर भूल होगी। सबके सोचने-समझने, प्रतिक्रिया-अनुक्रिया करने का ढंग, सबकी अपेक्षायें और आशायें, सबकी सोच और सबका व्यक्तित्व अलग-अलग होता है और उन सबसे अलग-अलग सतहों और स्तरों पर जाकर व्यवहार करना उचित होता है। **'जस देवता तस चाहिये पूजा, एहि ते बढ़के धरम न दूजा।'** यह भारतीय संस्कृति का मंत्र वाक्य है। जो ग्राहक जैसा हो, उन्हें वैसा ही मान-सम्मान मिलना

चाहिये और वैसा ही व्यवहार उनसे किया जाना चाहिये। हम सामाजिक अवस्थिति के अनुसार कुछ ग्राहक संवर्गों के संबंध में चर्चा करेंगे-

- **धनाढ्य ग्राहक बनाम निर्धन ग्राहक**- धनाढ्य ग्राहक सामाजिक पदानुक्रम में शीर्षस्थ ग्राहक होते हैं। इनके पास पर्याप्त आर्थिक साधन होते हैं इसलिये इनका जीवन स्तर भी उच्चीकृत होता है। जीवन का स्तर उच्च होने से आवश्यकतायें तथा सोच भी उच्चस्तरीय होती है। इस वर्ग के ग्राहक शुल्क आधारित आय का अच्छा साधन साबित होते हैं क्योंकि इनका उद्देश्य शीघ्र व सरलता से अपने बैंकिंग कार्य करवाना होता है। छोटी राशि के शुल्क इन्हें प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं करते हैं। साथ ही ग्राहकों का यह वर्ग बैंक के लिये मूल्यवान ग्राहकों की श्रेणी में आते हैं क्योंकि बड़ी मात्रा में इनकी जमाराशियां बैंकों में जमा होती हैं या अग्रिमों के रूप में इस वर्ग ने काफी अच्छी सुविधायें बैंक से ले रखी होती हैं। ये हमारे कारोबार का अहम् हिस्सा होते हैं। इसलिये इस वर्ग के ग्राहकों को उचित मान-सम्मान, विशिष्ट व्यवहार तथा त्वरित ग्राहक सेवा उपलब्ध कराना बैंकर की अनिवार्यता होती है। धनाढ्य ग्राहकों का समाज के अन्य वर्गों में अच्छा प्रभाव होता है। इसलिये ये हमें ग्राहक आधार को बढ़ाने में अच्छे सहायक सिद्ध होते हैं। इसके विपरीत निर्धन या आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों के ग्राहकों का जीवन स्तर उच्चीकृत नहीं होता। इनकी अपेक्षायें भी उतनी नहीं होतीं। इनकी अपेक्षा बैंकिंग सुविधाओं और सेवाओं की होती है, उसकी गुणवत्ता की ओर यह वर्ग कम संवेदनशील होता है।
- **महिला ग्राहक बनाम पुरुष ग्राहक**- महिला ग्राहक, पुरुष ग्राहकों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होती हैं। हमारे देश में विशेष रूप से समाज में महिलाओं को उच्च व गरिमामय स्थान प्रदान किया गया है। **जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी** इस घोषवाक्य के बीच हमारी संस्कृति चलती है। ऐसे में यदि कोई महिला ग्राहक हमारे सामने आती है तो एक बैंकर के रूप में हमसे यह अपेक्षा की जाती है कि हमारे व्यवहार में अतिरिक्त विनम्रता और तत्परता दर्शित हो। यदि किसी महिला ग्राहक को एक काउंटर से दूसरे काउंटर और फिर तीसरे पर भटकना पड़ जाये तो वह ग्राहक सेवा किसी दृष्टि से बेहतर नहीं मानी जा सकती। ऐसे में बैंकर को उजड्ड और रुक्ष तथा अकुशल माना जाता है। महिला ग्राहक को दी जाने वाली ग्राहक सेवा भारतीय समाज में महिलाओं की सर्वोच्च स्थिति के अनुरूप ही उत्कृष्ट मानी जाती है। यह कहा जाता है कि जब महिलाओं के साथ आपके बैंक में यह व्यवहार और ग्राहक सेवा है तो बाकी लोगों के बारे में क्या कहा जाये! अतः जहां हम पुरुष ग्राहकों के बारे में थोड़े से सुविधापूर्वक काम कर सकते हैं, वहीं महिला ग्राहकों के बारे में हमें अति तत्पर और अति

विनयशील होना पड़ता है।

- **बाल ग्राहक बनाम वृद्ध ग्राहक**- हमारे पास आने वाले ग्राहकों में बच्चे भी होते हैं। बच्चों में जहां बाल हठ होता है वहीं उनका स्वभाव **इड** प्रभावित भी होता है। **इड** अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति किसी भी कीमत पर भी करना चाहता है। हो सकता है बाल ग्राहकों के साथ हमें **हठ** का भी सामना करना पड़े। ऐसे समय में उनका ध्यान बंटाना पड़ता है जबकि इसके विपरीत वृद्ध ग्राहकों से हमें विनयशील होकर, सम्मान सहित बात करनी पड़ती है। हम बच्चों की तरह वृद्धों को बहला-फुसला नहीं सकते। वृद्धों का स्वभाव सुपर इगो से प्रभावित होता है।
- **निवासी ग्राहक बनाम अनिवासी ग्राहक-** अनिवासी ग्राहक, जो अपने देश से बाहर विदेशों में जाकर बस गये हैं, उनके आचार-व्यवहार, अपेक्षाओं और सांस्कृतिक दृष्टिकोण में अंतर आ जाता है। उनको विदेशी कार्यप्रणालियों की आदत पड़ जाती है। जो भारतीय अमेरिका, जापान, चीन, फ्रांस तथा ब्रिटेन जैसे विकसित राष्ट्रों में किन्हीं उद्देश्यों से जाकर बस गये हैं, उनकी अपेक्षाओं में भारतीय ग्राहकों की तुलना में पर्याप्त अंतर पाया जाता है। हो सकता है हम आमतौर पर इन अंतरों को देख न पाते हों या समझ न सकते हों अथवा हमारी मनोग्रंथियां समझने न देती हों, किंतु यह अंतर तो होता ही है। इसका मुख्य कारण यह है कि इन विकसित राष्ट्रों में जीवन स्तर, कार्यशैली तथा वहां का सामाजिक व आर्थिक व्यवस्थायें संगठित व सुव्यवस्थित तरीके से सतर्कतापूर्वक बनायी गयी हैं जिनमें मानवीय घटक की सुख-सुविधा व समय की बचत का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। जबकि अविकसित और विकासशील राष्ट्रों में ये व्यवस्थायें इतनी संगठित और सुव्यवस्थित नहीं हैं। यही कारण है कि अनिवासी भारतीय ग्राहकों को भारत स्थित हमारी शाखाओं/कार्यालयों में बैंकिंग आनंददायक नहीं लगती। यहां की प्रक्रियायें व नियम उन्हें बोझिल, लंबे, समय की बर्बादी कराने वाले और ऊबाऊ प्रतीत होते हैं। ऐसे ग्राहकों के लिये ग्राहक सेवा देते समय यदि उत्कृष्टता व ग्राहक संतुष्टि का स्तर प्राप्त करना है तो हमें तकनीक का भरपूर सहारा लेना होगा। इस दिशा में भारतीय बैंकों ने काफी कुछ प्रयास कर लिये हैं तथापि अभी लंबी दौड़ बाकी है। जहां तक कम विकसित या विकासशील राष्ट्रों में बसे अनिवासी भारतीय ग्राहकों का प्रश्न है, उनको ग्राहक सेवा देते समय इतनी समस्या नहीं आती।
- **उच्चवर्गीय ग्राहक बनाम निम्नवर्गीय ग्राहक**- समाज का उच्चवर्गीय ग्राहक मूल रूप से धनाढ्य वर्ग का ही ग्राहक है। इस वर्ग का समाज में वर्चस्व होने से, आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होने से यह वर्ग हमारे ग्राहक आधार को बढ़ाने, हमारी

नयी योजनाओं की स्वीकार्यता बढ़ाने के उद्देश्य से बड़ा लाभकारी सिद्ध होता है। सामान्यतया समाज का मध्यम वर्गीय व निम्नवर्गीय ग्राहक इस वर्ग की स्थिति को प्राप्त करने की दिशा में अचेतनतया अग्रसर रहता है और इन्हीं की जीवन शैली तथा आदतों का अनुकरण करता रहता है। हर समाज में, यहां तक कि चाहे वह भारतीय समाज हो या विदेशी समाज हो, यही प्रक्रिया अनवरत रूप से चलती रहती है। इसलिये यह तो निश्चित है कि इस वर्ग के ग्राहक द्वारा अपनायी जाने वाली आर्थिक नीतियां व आदतें ही मध्यम वर्गीय और निम्नवर्गीय ग्राहकों द्वारा अपनायी जायेंगी। अतः इस वर्ग को ग्राहक सेवा प्रदान करते समय बैंक अपनी नयी योजनाओं, नीतियों व प्रक्रियाओं का प्रचार-प्रसार व प्रशिक्षण अच्छे व सरल तरीके से दें तो समाज के अन्य वर्गों में उनका प्रसारण स्वयमेव हो जायेगा। दूसरी ओर निम्नवर्गीय ग्राहक की अपेक्षायें सीमित होती हैं, छोटी होती हैं। उसकी आवश्यकतायें मौलिक आवश्यकताओं के इर्द-गिर्द घूमती हैं। यह वर्ग हमारे सूक्ष्म वित्तीयन, स्वयं सहायता समूहों, छोटे औद्योगिक ऋणों, कृषि सबंधी ऋणों के लिये सर्वथा उपयुक्त रहता है। इनको इन आवश्यकताओं से संबंधित उत्पाद बेचे जाने चाहियें। रु. 25,000 के ऋण के लिये किसान क्रेडिट कार्ड बनवाने वाले ग्राहक को बीमा या पेंशन योजना बेचना कतई उपयुक्त नहीं होगा। वैसे ही 5 लाख की सावधि जमा रसीद धारक को 20,000 का किसान क्रेडिट कार्ड बेचना बेमायने होगा।

- **मध्यम वर्गीय ग्राहक-** इस वर्ग को इतिहास में बुर्जुआ वर्ग के नाम से भी संबोधित किया जाता है। इतिहास में जितनी भी क्रांतियां सफल हुयी हैं, वे इसी वर्ग की प्रधानता, क्रियाशीलता व उस क्रांति के वाहक होने के कारण हुयी हैं। रूस की क्रांति, फ्रांस की क्रांति आदि-आदि इसके उदाहरण हैं, जिनमें बुर्जुआ वर्ग ने शाही खानदानों को नेस्तनाबूद कर दिया था और संबंधित देशों के सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक पटल में आमूलचूल परिवर्तन करवा दिये थे। इसलिये इस वर्ग को कभी भी बैंकर द्वारा कमज़ोर नहीं समझा जाना चाहिये। समाज का बड़ा हिस्सा इस मध्यम वर्गीय ग्राहक के द्वारा बनता है। इसलिये बैंकों की योजनायें, प्रक्रियायें, विज्ञापन, प्रचार-प्रसार की सामग्री में ऐसा दृष्टिकोण व तरीके अपनाये जाने चाहिये जो इस मध्यम वर्ग की नब्ज़ पकड़ सकें। जैसा कि ऊपर भी वर्णन किया गया है, यह वर्ग उच्चवर्ग की श्रेणी में शामिल होने के लिये क्रियाशील रहता है। इसलिये बैंकिंग उत्पादों व सेवाओं की खपत (एक बार उच्चवर्ग द्वारा स्वीकार्यता प्राप्त हो जाने पर) बड़ी संख्या व भारी मात्रा में होती है। इसका कारण समाज में इस वर्ग के ग्राहकों का अपेक्षाकृत अधिक प्रतिशत का होना है। इसलिये हमारी योजनाओं की स्वीकार्यता तो उच्च वर्गीय

ग्राहक से मिलेगी किंतु उनकी भारी मात्रा में खपत के लिये हमें मध्यम वर्गीय ग्राहक पर निर्भर होना पड़ेगा।

- **व्यापारी ग्राहक बनाम नौकरीशुदा ग्राहक**- व्यापारी वर्ग के ग्राहकों का जीवन स्तर और जीवन शैली नौकरीशुदा ग्राहकों से भिन्न होती हैं। छोटा सा उदाहरण लिया जा सकता है कि व्यापारी ग्राहक रात के 11-12 बजे से पहले नहीं सो सकते। कारण, कि उनकी दुकानें, व्यावसायिक प्रतिष्ठान सामान्यतया रात के 8 या 9 बजे तो बंद ही होती हैं। उसके बाद घर जाने, आराम करने और भोजन करने में 2 या तीन घंटों का समय लगता ही है। इसके विपरीत नौकरीशुदा ग्राहक 10 बजे तक सोने का उपक्रम करने लगते हैं। इसका प्रभाव बैंकर की ग्राहक-बैंकर बैठकों पर, आयोजनों पर पड़ सकता है। सामान्यतया ग्राहकों की प्रतिष्ठा में दिये जाने वाले रात्रि भोजों में नौकरीशुदा ग्राहक अनुपस्थित रहते हैं। यह उनकी जीवनचर्या के कारण होता है। इसी प्रकार के कई और अंतर और विशेषतायें हैं जिसका प्रभाव दोनों वर्गों की बैंकिंग आदतों पर भी पड़ता है। व्यापारी वर्ग का ग्राहक शाखा खुलते ही सुबह-सुबह बैंकिंग कार्यों को निपटाते हुये अपनी दुकान खोलना चाहता है तो नौकरीशुदा भोजनावकाश के समय बैंक की ओर रुख करेगा। नौकरीशुदा ग्राहक के पास समय की भी कमी होगी क्योंकि वह अपने कार्यालय के समय से बंधा होता है। दोनों वर्गों को एक समान ग्राहक सेवा देना भारी भूल होगी।
- **युवा ग्राहक**- युवा वर्ग राष्ट्र के निर्माण शक्ति से संपन्न होता है। इनके पास पर्याप्त बुद्धि, नये दृष्टिकोण, नयी तकनीक, शक्ति व समय की पर्याप्तता तथा जीवन के हर पक्ष को देखने-समझने का नया दृष्टिकोण होता है। इस वर्ग के ग्राहकों को जितना अधिक टेक्नोसेवी उत्पाद बेचा जायेगा, ये उतने ही प्रसन्न रहेंगे। ये परंपरागत बैंकिंग से पीछा छुड़ाते हैं। **पुराना सौ दिन, नया नौ दिन**- इनको नहीं लुभाता। ये शक्ति, संपन्नता, नवीनता तथा जोश का सैलाब हैं। इनकी इन सभी विशेषताओं को बांध की तरह जो बैंकर अपने पास रोककर उनका सृजनात्मक उपयोग कर सकेगा, वही बैंकर आने वाली एक पूरी पीढ़ी के ग्राहकों को भी अपना बना लेगा। ग्राहकों का यह वर्ग भावी पीढ़ी का आधार है। इसलिये कल की बैंकिंग के दृष्टिकोण से यह वर्ग आज के बैंकर के लिये अत्यंत उपयोगी साबित हो सकता है। ज़रूरत इस वर्ग को अपनाने, इनसे मित्रता करने और अपना बनाने की है।
- **बुद्धिमान ग्राहक बनाम कम बुद्धि वाले या मंदबुद्धि ग्राहक**- बुद्धिमान ग्राहक अपेक्षाकृत कम बुद्धि वाले या मंद बुद्धि ग्राहकों की तुलना में अधिक चुनौतीपूर्ण होते हैं। बुद्धिमान ग्राहकों को बैंकर द्वारा सब्ज़बाग दिखाकर, लुभावने प्रलोभनों

द्वारा भ्रमित नहीं किया जा सकता और न ही किसी ठोस लाभ के अभाव में लुभाया जा सकता है। इसलिये इस वर्ग के ग्राहकों से अत्यधिक तत्परता, ईमानदारी से वार्ता-चर्चा करने की आवश्यकता होती है।

- **वित्तीय रूप से साक्षर बनाम निरक्षर ग्राहक**- जो ग्राहक वित्तीय रूप से साक्षर हैं, जिन्हें बैंकिंग और अन्य वित्तीय संस्थानों की प्रक्रियाओं का ज्ञान होता है, उन्हें वित्तीय प्रक्रियाओं से कम शिकायतें होती हैं। उन्हें प्रताड़ित किये जाने, खुद को मूर्ख बनाने या बैंकिंग सेवाओं के उलझे होने सबंधी शिकायतें नहीं होती हैं। इन्हें बैंकिंग सेवाओं और उत्पादों के बारे में जानकारी देने में भी कोई कठिनाई बैंकर को नहीं होती। किंतु इसके विपरीत वित्तीय रूप से निरक्षर या अपेक्षाकृत कम साक्षर ग्राहकों को बैंकिंग प्रक्रियाओं, सेवाओं और उत्पादों के बारे में समझाने में बैंकर को अच्छी-खासी मशक्कत करनी पड़ सकती है और कभी-कभी धैर्य की परीक्षा भी देनी पड़ सकती है।
- **प्रथमागत ग्राहक बनाम पुनरागत ग्राहक**- शाखा में पहली बार आने वाले ग्राहक को ग्राहक सेवा देने में इसलिये ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि उस ग्राहक के समक्ष बैंक की छवि पहली बार प्रस्तुत की जानी है। पहला प्रभाव सदा के लिये स्थायी हो जाता है। इसलिये उन्हें ग्राहक सेवा प्रदान करने में सजग रहना पड़ता है। जबकि बार-बार या दूसरी बार आने वाले ग्राहक के साथ इतनी सतर्कता की आवश्यकता नहीं होती।
- **समाज के अगुआ ग्राहक बनाम प्रजा ग्राहक**- समाज के उच्चवर्गीय ग्राहक, नेता, राजनैतिक पदों पर आसीन ग्राहक समाज में अपना अलग प्रभाव रखते हैं और समाज के अन्य नागरिक इनका अनुकरण करते हैं। इसलिये समाज के अगुआ वर्ग के ग्राहकों का अहं तुष्ट करना ही अच्छी ग्राहक सेवा प्रदान करना है। अनेक कारणों से इस वर्ग का अहं बहुत अधिक बढ़ा हुआ होता है। समाज को निर्देशित करने का ये भ्रम पाले हुये होते हैं। इनके अहं की तुष्टि ही ग्राहक-सेवा का पर्याय है।
- **आवेशी ग्राहक बनाम शांत ग्राहक**- आवेशी ग्राहकों का व्यक्ति अधिकांशतया आवेशयुक्त होता है। ये संवेगी व्यवहारों के स्वामी होते हैं। बैंकिंग कार्यों को करते हुये इनको शांत रखना चाहिये। जरा सी बात पर ये आवेशित हो जाते हैं और बैंकर की बात, बैंकिंग नियमों और प्रावधानों के बारे में ज़रा सा भी नहीं सुनना चाहते। छोटी-छोटी बातों पर यह वर्ग अत्यधिक क्रोधित हो जाता है। इन ग्राहकों से विवाद करना या जिस समय ये आवेश में हों, बैंकिंग नियमों के बारे में समझाने की कोशिश करना बेमानी है। कोई प्रभाव नहीं होता विशेषकर उस समय जब ये आवेश में हों। उस समय जितनी हो सके, बिना नियमों की

परिधि से बाहर गये इनका काम करके इन्हें विदा कीजिये। बाद में कभी जब ये शांत मन से शाखा/कार्यालय में आयें तो आप उस समय इन्हें अपनी बात कह सकते हैं। इसके विपरीत शांत स्वभाव वाले ग्राहक अच्छे श्रोता होते हैं। ये शांत रहकर आपकी पूरी बात सुनते हैं और अपनी अपेक्षाओं के बारे में आपसे कहते हैं। आप यदि आंकड़े देकर भी इन्हें अपनी योजनाओं के बारे में समझाना चाहेंगे तो ये आपकी पूरी बात ध्यान से सुनेंगें, तब भी, जब इनके पास समय कम हो। ये ग्राहक हमारे अच्छे अधिवक्ता भी साबित हो सकते हैं जो हमारी योजनाओं और छवि दोनों के लिये सकारात्मक प्रचार करते हुये हमारे लिये नये ग्राहकों को लायेंगे।

- **परोपकारी ग्राहक बनाम स्वार्थी ग्राहक**- कुछ ग्राहक परोपकारी स्वभाव के होते हैं तो कुछ स्वार्थी प्रवृत्ति के। परोपकारी ग्राहक अपने स्वभाव के कारण हमारे अच्छे प्रचारक सिद्ध हो सकते हैं। हमारी जो सेवा, योजना या कोई और उत्पाद उन्हें अच्छा लगेगा या फायदेमंद लगेगा, वे चाहेंगे कि उनके आसपास के लोगों, परिजनों और मित्रों को भी उसका लाभ मिले इसलिये ऐसे ग्राहकों को उनके समय में से थोड़ा सा समय चुराकर बैंक की नयी-नयी योजनाओं की जानकारी देना बैंक के कारोबार के हित में होगा।
- **रूढ़िवादी ग्राहक बनाम तकनीकोन्मुख ग्राहक-** कुछ ग्राहक, सामान्यतया इनमें वृद्ध आयु के या फिर कम पढ़े-लिखे, ग्रामीण पृष्ठभूमि वाले ग्राहक आते हैं, परंपरागत बैंकिंग पसंद करते हैं। कारण इसका यह होता है कि नयी तकनीक की इनको जानकारी न होने से, सोशियोफोबिया के कारण ये सबके सामने अनभिज्ञता का आरोप भी नहीं लेना चाहते हैं तथा नयी तकनीक का प्रयोग करते समय किसी प्रकार की गलती या चूक होने से घबराते हैं। इन सभी झंझटों से मुक्ति पाने के लिये ये पुरानी रूढ़िवादी बैंकिंग ही करना चाहते हैं और नवोन्मेषी बैंकिंग में कई प्रकार की कमियां निकालते रहते हैं। ऐसी ही एक घटना में नियंत्रक कार्यालय के समक्ष एक ग्राहक ने यह शिकायत की थी कि मुझे ए टी एम का प्रयोग करने के लिये बाध्य किया गया जबकि मैं काउंटर से नकदी प्राप्त करना चाहता था। शिकायत की जांच करने पर यह तथ्य सामने आया कि शाखा के लेखाकार ने केंद्रीय प्रबंधन के इन निर्देशों, कि अधिक से अधिक ग्राहकों को ए टी एम के प्रयोग हेतु प्रशिक्षित व प्रोत्साहित किया जाये, के तहत कार्यवाही करते हुये उस ग्राहक महोदय को नकदी काउंटर पर छोटा सा आहरण करने के बजाय ए टी एम के प्रयोग हेतु कहा था। चूंकि वे ग्राहक महोदय नयी तकनीक से घबराते थे, ए टी एम कार्ड को मशीन में डालना नहीं जानते थे, इसलिये उन्होंने नाराज़ होकर बैंकर के विरुद्ध ही शिकायत कर

दी। नयी तकनीक में लाख फायदे होते हुये भी इन ग्राहकों की अपनी कमजोरी और मानसिकता के कारण हमारे द्वारा इनको नये प्रयोगों हेतु बाध्य करना उचित नहीं होगा।

- **हठी ग्राहक बनाम लचीले ग्राहक-** हठीले ग्राहक किसी भी आयु, अवस्था या सामाजिक प्रतिष्ठा के हो सकते हैं। इनके साथ व्यवहार व बैंकिंग करते समय अत्यंत सावधान रहने की ज़रूरत है क्योंकि हठ में हठ का कोई उद्देश्य ही नहीं होता सिवाय प्रतिपक्षी के समक्ष अपनी सर्वोच्चता साबित करने के। इस पुस्तक के अध्याय-10 में इस विषय पर विस्तृत चर्चा की गयी है।
- **मौलिक आवश्यकताओं वाले ग्राहक बनाम आत्मसिद्धि वाले ग्राहक-** जिन ग्राहकों की स्थिति मैस्लो के पदानुक्रमिक पिरामिड के आधार पर है, उन ग्राहकों को बड़ी योजनाओं, अधिक निवेश या अधिक राशि के अग्रिमों की योजनाओं का ज्ञान कराना उचित नहीं होगा क्योंकि ये सभी उनकी सीमा से बाहर होंगे। ग्राहकों का यह वर्ग प्रोत्साहित व प्रेरित होने के लिये मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति चाहता है। जबकि इसके विपरीत आत्मसिद्धि वाले ग्राहक, जो पिरामिड के शीर्ष पर होते हैं और संख्या में बहुत कम होते हैं, वे नैतिकता, मूल्यों तथा उच्च आदर्शों से अभिप्रेरित व प्रोत्साहित होते हैं।

इस प्रकार हम पाते हैं कि समाज में विभिन्न स्तरों, जीवन शैलियों और विचारधाराओं के ग्राहक वर्ग से हमारा सामना होता है। जो जैसा है, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना बैंकर के रूप में हमारी बुद्धिमानी है। मनोविज्ञान के अलावा इसमें एक इंसान के रूप में हमारा दृष्टिकोण भी बहुत मायने रखता है कि हम सामने वाले के आंतरिक व्यक्तित्व को कैसे और कितनी जल्दी समझ पाते हैं। जितनी जल्दी समझ पायेंगे, उतनी ही जल्दी उनसे तदनुरूप व्यवहार कर पायेंगे और तदनुरूप ही उत्कृष्ट ग्राहक सेवा दे पायेंगे। उत्कृष्ट ग्राहक वह सेवा है जिसे ग्राहक दिल खोलकर स्वीकार करे और आप्लावित हो जाये।

प्रयुक्त शब्दावली

मानदंड	Parameter
कारोबारी ह्रास	Bussiness loss
पदानुक्रम	Hirarchy
विशिष्ट व्यवहार	Special treatment
मनोग्रंथियां	Complexes

उच्चवर्गीय ग्राहक	High status customer
सूक्ष्म वित्तीयन	Micro finance
स्वीकार्यता	Acceptiability
प्रथमागत ग्राहक	First time customer
पुनरागत ग्राहक	Repeat customer
आवेशी/आवेशयुक्त	Impulsive
तकनीकोन्मुख	Technosavy/technofriendly
हठी	Rigid
आत्मसिद्धि	Self actualisation

10. हठ का मनोविज्ञान

कुछ ऐसी शक्तियां इस सृष्टि में हैं जो अदृश्य हैं किंतु इतनी अधिक शक्तिशाली और प्रभावकारी हैं कि सकल सृष्टि का नियमन कर रही हैं। सूरज, चांद के प्रकाश को नियमित और नियंत्रित कर रही हैं। पर्वतों का आस्तित्व देखिये। कितना महान और अचल अडिग है! हम इनके सामने कितने क्षुद्र और शक्तिहीन हैं! बस, इसका अनुभव कीजिये तो सारा अहंकार तिरोहित हो जायेगा।

हठ के बारे में हम सभी जानते हैं। साधारण बोलचाल की भाषा में इसे जिद्द भी कहा जाता है। एक ही बात पर अड़े रहना जिद्द है। देखने में तो ऐसा ही लगता है कि हठ या जिद्द मूर्खता का या अज्ञानता का प्रतीक है। किंतु मनोविज्ञान इसके कई महत्वपूर्ण कारण मानता है। हठ या जिद्द की व्याख्या के रूप में कोई वैज्ञानिक परिभाषा नहीं दी जा सकती। तथापि यह व्यवहार में लचीलेपन की कमी की ओर संकेत करता है। हठ जिस व्यक्ति को अपनी गिरफ्त में लेता है, उसके प्रत्यक्षीकरण और दृष्टिकोण को सीमित कर देता है। हठी व्यक्ति किसी भी मुद्दे पर अपने सीमित और एक ही प्रकार के दृष्टिकोण से सोचता है और किसी भी दशा में अपने दृष्टिकोण, सोच या समस्या को हल करने की प्रक्रिया में जरा सा भी परिवर्तन करने को तैयार नहीं होता। हम कह सकते हैं कि उसके मस्तिष्क में एक प्रकार का मानसिक अवरोध उत्पन्न हो जाता है जो उसे एक नियत दायरे से बाहर सोचने ही नहीं देता। जिद्दी व्यक्ति और कुछ नहीं चाहता, बस! अपनी बात या अपने पक्ष की स्थापना चाहता है। उसका उद्देश्य किसी लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होता बल्कि प्रतिपक्षी के सामने अपने पक्ष की स्थापना या बेहतरी साबित करना होता है। यदि जिद्दी व्यक्ति का प्रतिपक्षी उसके सामने समर्पण कर दे और उसी की बात से सहमत हो जाये तो जिद्द करने वाले व्यक्ति का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। यदि बहस या जिद्द के दौरान उसका वास्तविक लक्ष्य प्राप्त हो जाये तो उसके लिये बहस का कारण और महत्व ही समाप्त हो जाते हैं। ऐसा उसकी उस मनोग्रंथी के कारण होता है जो एनाल स्टेज में डांट-फटकार या कड़े अनुशासन, जनसामान्य के समक्ष निंदा, कड़ी आलोचना के फलस्वरूप

उस व्यक्ति के मन में उत्पन्न हो जाती है। फ्रायड के अनुसार हठ या जिद्द का ताल्लुक मानव की एक वर्ष से लगभग साढ़े तीन वर्ष की आयु तक, जब उसकी आनंद शक्ति गुदा में होती है, से संबंध है। इस आयु में जिस बालक को डांटा-फटकारा जाता है, कड़े अनुशासन में रखा जाता है, उसके व्यक्तित्व में इस प्रकार की मनोग्रंथियां घर कर लेती हैं। फ्रायड का योगदान असामान्य मनोविज्ञान में नकारा नहीं जा सकता। हालांकि उनके कई अपवाद भी हुये और उनके परवर्ती मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने ढंग से व्याख्या की। तथापि फ्रायड के द्वारा दिये हुये सिद्धांतों का असामान्य मनोविज्ञान तथा व्यक्तित्व के इड, ईगो और सुपर ईगो जैसे पहलुओं को समझने तथा व्यक्तित्व पर पड़ने वाले आंतरिक और सामाजिक तथा मानसिक संघर्षों का प्रभाव समझने में अभूतपूर्व तथा प्रासंगिक योगदान है। इन मनोग्रंथियों का प्रभाव उस व्यक्ति के व्यक्तित्व पर आजीवन पड़ता रहता है। इस अवस्था को मनोवैज्ञानिक भाषा में एनल स्टेज भी कहते हैं।

हठ या व्यक्तित्व की इस मनोग्रंथी को समझने के लिये आवश्यक है कि हम पहले एनल स्टेज को समझें।

एनल स्टेज व्यक्ति की एक वर्ष की आयु से प्रारंभ होकर लगभग साढ़े तीन वर्ष की आयु तक जाती है। इस अवस्था में व्यक्ति की आनंद शक्ति जिसे लिबिडो भी कहते हैं, गुदा में निहित रहती है। जन्म से लेकर एक वर्ष की आयु तक यह लिबिडो मुख में निहित रहती है। शिशु का सारा आनंद उसे उसके मुख के माध्यम से प्राप्त होता है। इसलिये इस उम्र में शिशु अंगूठा चूसना शुरू कर देते हैं। माता का दूध छुड़ाने से या बोतल भी छुड़ाने से शिशु को इस आनंद से वंचित होना पड़ता है। इस प्रक्रिया में **इड** तथा सामाजिक अपेक्षाओं में संघर्ष होता है जो शिशु के व्यक्तित्व पर आगे जाकर प्रभाव डालता है। इसी प्रकार **एनाल स्टेज** में बालक की **लिबिडो** या **आनंद शक्ति** गुदा में निहित रहती है। इसी समय बालक की टॉयलेट ट्रेनिंग प्रारंभ हो जाती है। उसे उत्सर्जन संबंधी अपनी प्राकृतिक क्रियाओं पर नियंत्रण करना सिखाया जाता है तथा उक्त हेतु स्थान, समय व सामाजिक अपेक्षाओं, नियमों व विधियों का प्रशिक्षण दिया जाता है। इस प्रशिक्षण के दौरान **ईगो** तथा **इड** का संघर्ष जोर पकड़ता है। इस मानसिक संघर्ष का प्रभाव व्यक्ति पर महत्वपूर्ण और अनिवार्य रूप से पड़ता है। प्रशिक्षण की इस क्रिया के दौरान जिस बालक को कठोर अनुशासन, सामाजिक निंदा, डांट-फटकार से यह प्रशिक्षण दिया जाता है, वह अत्यधिक जिद्दी और साथ-साथ आक्रामक भी होता है। ऐसा व्यक्ति बात-बात पर और बार-बार जिद्द करता है। ऐसा वह जिद्द के द्वारा सामने वाले पक्ष के सामने अपने को बेहतर और सर्वोच्च साबित करके मानसिक सुरक्षा और संरक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से करता है। जबकि इससे उसे ये दोनों ही भाव हासिल नहीं होते। हासिल न होने के कारण वह फिर से जिद्द करता है। और यही जिद्द पहले उसकी आदत और बाद में बारंबारता बढ़ने से स्वभाव बन जाती है। अंततः वह जिद्दी स्वभाव वाला व्यक्ति बन जाता है।

बालहठ-

बालहठ बालकों द्वारा किया जाने वाला हठ है। जैसा कि इससे पूर्व के अध्याय में चर्चा की गयी है, बालकों में **इड** का प्रभाव अधिक होता है। उनका सारा व्यक्तित्व ही **इड** संचालित होता है। इसी **इड** के प्रभाव के कारण बालक अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाते हैं। किंतु यही **इड** उन्हें जिद्दी भी बनाता है। **मैया मैं तो चंद खिलौना लैहौं।** यह इड का ही प्रभाव होता है। पांच वर्ष की आयु तक बालक हर वस्तु या हर प्रक्रिया को नवीनता के साथ देखते और समझते हैं। इसलिये इस आयु तक जिद्द के लक्षण यदा-कदा ही परिलक्षित होते हैं। किंतु पांच से सात वर्ष की आयु में वे इस भौतिक जगत से बहुत कुछ परिचित होने लगते हैं। अब नये और पुराने तथा परिचित और अपरिचित का अंतर उन्हें समझ में आने लगता है। इसी नवीनता और अपरिचित वस्तुओं से उनमें क्रियाओं के प्रति लचीलापन कम होता नज़र आता है और वे पुरानी तथा परिचित वस्तुओं और व्यक्तियों के प्रति अधिक झुकते नज़र आते हैं। कुछ पारिस्थितिक प्रभावों और माता-पिता के कड़े अनुशासन के कारण बालहठ परिलक्षित होता है। कभी-कभी बालक की शारीरिक व स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के कारण वह शैशवकाल से ही चिड़चिड़ा और हठी हो जाता है। इन समस्याओं के निराकरण के लिये चिकित्सक का परामर्श आवश्यक होता है। तथापि यदि बैंकर के दृष्टिकोण से बाल- ग्राहक के बारे में ही केवल चर्चा की जाये तो हम चिकित्सकीय परामर्श क्रियान्वित नहीं कर सकते। हां ! जहां हमारी भूमिका माता-पिता की है, वहां हमें इस विकल्प का अनिवार्यतया प्रयोग करना चाहिये। बैंकर की हैसियत से हम जो कर सकते हैं, वे निम्नलिखित उपाय हैं-

- **प्रशंसा करें**- हठी बाल ग्राहक या ग्राहक के साथ आये बालक के हठ को कम करने के लिये उसका ध्यान बंटाना ज़रूरी है। बालकों के स्वभाव की विशेषता होती है कि वे अपने बड़ों से प्रशंसा, अनुमोदन और स्वीकार्यता पाना चाहते हैं। इसलिये उनकी यह मनोवैज्ञानिक आवश्यकता हमारे लिये बड़े काम की चीज़ है। शाखा में हठ कर रहे बालक की प्रशंसा करना हठ के बिंदु से उसका ध्यान बंटाने के लिये पर्याप्त है। **अच्छा बच्चा, राजा बेटा, रानी बिटिया** आदि ऐसे उद्बोधन हैं जो बालक को आपका अनुगामी बना देंगे। इसका कारण यह है कि यदि बालक इसका विपरीत आचरण करते हैं तो वे स्वयं ही यह सोचने पर बाध्य हो जायेंगे कि क्या वे ऐसा न करने से बुरे बच्चे, गंदे बच्चे बन जायेंगे? और बाद के इस प्रश्न का बालकों को उत्तर **हां** में लेना अच्छा नहीं लगता। प्रशंसा बड़ा ही कारगर अस्त्र साबित होती है।किंतु प्रशंसा सदैव सही काम के लिये होनी चाहिये। क्योंकि हम जिस काम के लिये बालक की प्रशंसा करेंगे वह उसी को बार-बार करेगा। इसलिये सही काम के लिये ही प्रशंसा और वह भी उचित मात्रा में होनी चाहिये। आवश्यकता से अधिक प्रशंसा और संरक्षा

बालक को बड़े होकर **नार्सिज़्म** जैसी भयंकर मनोविकृति की गिरफ्त में ला खड़ा करती है जहां बालक अत्यंत स्वार्थी और स्वकेंद्रित हो जाता है। बालक द्वारा किये गये सही कार्य को स्वीकार करना, उस स्वीकार्यता को बालक पर प्रकट करना निष्क्रिय प्रशंसा है जो प्रत्यक्ष प्रशंसा से अधिक कारगर साबित होती है तथा बालक को बड़ों के अनुमोदन और स्वीकार्यता के स्थान पर अपने आनंद और संतोष के लिये कार्य करने को प्रेरित करती है। दूसरी बात यह है कि प्रशंसा सार्वभौमिक टिप्पणियों के साथ न ही की जाये तो बेहतर है। सामान्य टिप्पणियों के साथ की गयी प्रशंसा जहां एक ओर बालक को भ्रम की स्थिति में डाल देती है वहीं दूसरी ओर यह उद्देश्यहीन भी हो जाती है। जैसे आप जैसे होनहार बालक समाज की शान हैं, या आपका पहनावा अच्छा है, आपका रिपोर्ट कार्ड ए ग्रेड का है, आदि-आदि। इनके स्थान पर यदि ऐसे उपमान दिये जायें जो बालक के व्यक्तित्व को निखारने में सहायक हों और प्रशंसा जब भी हम करें तो बालक के विशिष्ट उपलब्धियों पर ही करें जैसे पहनावे के स्थान पर लड़की हो तो फ्रॉक और लड़का हो तो पैंट या शर्ट कही जा सकती है। इसी तरह आप जैसे बालक समाज की शान हैं के स्थान पर यदि यह कहा गया होता कि आप पर मुझे गर्व है तो बालक शायद उल्लसित हो जाता और आंतरिक रूप से प्रेरित होता। इसलिये सही तरीके से, और सही समय पर, सही काम के लिये प्रशंसा करना भी एक कला है।

- **कभी-कभी नज़रअंदाज़ भी करें**- कभी-कभी बच्चे ध्यानाकर्षक व्यवहार भी करते हैं। जब इस प्रकार का व्यवहार आक्रामक, अतियुक्त होने लगे तो उस समय इस पर ध्यान देना इसे बढ़ावा देना होगा। जो व्यवहार आपको पसंद न हो, उसको नज़रअंदाज करें। बालक दोबारा उसे नहीं दोहरायेगा।
- **निर्णयों के परिणामों और विकल्पों से अवगत करायें**- बालकों को यह भी सिखाना आवश्यक है कि उनके द्वारा यदि कोई निर्णय लिया जाता है या काम किया जाता है तो उसके परिणाम भी तदनुरूप ही होंगे। यह वह विधा है जो बालक में स्वअनुशासन की आदत विकसित करती है। जब भी कोई निर्णय लिया जाये तो पहले उस निर्णय के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले परिणामों, लाभ -हानियों पर यदि बालक मंथन कर ले तो उसे निर्णय लेने में भी सरलता होगी और फिर उस निर्णय के परिणामों हेतु वह किसी और को दोष नहीं देगा। उत्तरदायित्व लेना सीखेगा तथा कार्य और परिणाम दोनों को अपनायेगा।
- **अभिप्रेरणा और पुरस्कार**- बालकों के व्यवहार और व्यक्तित्व को अभिप्रेरणा और पुरस्कार अनिवार्य और भारी मात्रा में प्रभावित करते हैं। यह मानव स्वभाव है कि जिस कार्य या व्यवहार से हमें पुरस्कार मिलता है, वह जारी रहता है

तथा जिनसे दंड मिलता है वह रुक जाता है। अतः अच्छे और वांछनीय कार्यों के लिये अभिप्रेरित करें तथा पुरस्कार दें।

- **आदेश के स्थान पर अनुस्मारक दें**- यदि आप बालक को आदेश देंगे तो हो सकता है कि वह काम करने से मना कर दे। इसके स्थान पर यदि आप उसे उस काम के लिये याद दिलायेंगे तो वह अपना निर्णय लेते हुये उस काम को तत्काल करने की कोशिश करेगा। बहुत बार यह पाया गया है कि आदेश के स्थान पर अनुस्मारक अधिक प्रभावकारी हुये हैं।
- **बालकों के दृष्टिकोण और विचारों का आदर करें**- हठ का उद्देश्य कोई भौतिक वस्तु को पाना नहीं होता बल्कि प्रतिपक्षी के सामने अपनी बेहतरी और सर्वोच्चता साबित करना होता है। यदि आप बालकों की बात पूरे मनोयोग से सुनें, उनके कथनों पर ध्यान दें और पूरा सम्मान दें तो बालकों की यह भूख बिना हठ में परिवर्तित हुये पूरी हो जायेगी और उन्हें हठ नहीं करना पड़ेगा।
- **कोंचे नहीं** - इसे nattering कहते हैं। कोई काम तो ठीक से करो फिर से! जो कर रहे हो, उस पर जरा ध्यान दो, हवा में रहते हो, कुछ तो सोच-समझ कर काम किया करो, तुमसे इससे ज्यादा उम्मीद भी नहीं की जा सकती जैसे नकारात्मक वाक्य बालक के आत्माभिमान को तोड़कर रख देते हैं। सारी सच्चाईयों के अलावा एक व्यवहारिक सच्चाई यह भी है कि बालक अपने बड़ों की उम्मीदों पर खरा उतरना चाहते हैं। इसलिये हम उन्हें जैसा कहते हैं- अच्छा या बुरा- वे उसी को सच करने में जुट जाते हैं। बालकों को यदि बात बात पर नकारात्मक टिप्पणी दी जाती है तो वे उसी नकारात्मकता को सच करने में जुट जाते हैं। मुझे अपनी एक परिचित महिला की बात याद आती है। उनका लड़का मेधावी किंतु अत्यंत हठी था। मुझे याद है जब उसे हॉस्टल से घर आना होता था तो सब पर आतंक छाया होता था। कारण यह कि वह सफाई के बहाने से घर का आधा सामान तो फेंक ही देता था। हठी इतना कि घर के सामान और पूजा के शिवलिंग में उसे कोई अंतर नहीं समझ में आता था या आता भी होगा तो वह समझना नहीं चाहता था। उस बालक को मेरी वह परिचिता प्रदीप या दीप न बुलाकर प्रदीप जी, दीप जी कहकर आवाज दिया करती थीं। उनकी सहेलियों/ पड़ोसनों ने इसका कारण पूछा तो उनका कहना था कि हठी बच्चा है मेरा। यदि इसको मैं आदरसूचक शब्दों से बुलाऊंगी तो यह भी हम सबको उसी टोन में उत्तर देगा। दूसरे, इसको आदर देने से यह खुद को इस आदर के लायक बनायेगा क्योंकि हम जितना आदर बच्चों को देते हैं, बच्चे उस आदर के अनुरूप अपना व्यक्तित्व ढालते हैं। इसलिये बालकों को कभी भी नकारात्मक टिप्पणियों से न संबोधित करें। बाद में वह बालक इंजीनियर बनकर अमरीका गया और वहां की एक नामी कंपनी के 80 वर्षों के इतिहास में सबसे युवा फेलो बना।

स्त्री हठ या त्रिया हठ

हमारे भारत में कहते हैं कि **त्रिया हठ से तो ब्रह्मा जी भी हार जाते हैं।** बात सच भी है। इस तथ्य को हम आज ही नहीं पुरातन काल से ही स्वीकार करते आ रहे हैं। बालहठ तो **इड** प्रभावित होता है। यह बालकों को उनकी मौलिक इच्छायें और आवश्यकतायें पूरी करने में मदद करता है। किंतु महिलाओं में कौन सा **इड** होता है जो उन्हें **हठी** बनाता है? जहां एक ओर हम त्रिया हठ की विवेचना करने जा रहे हैं, वहीं दूसरी ओर हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि हमारे देश और समाज में स्त्री का स्थान सर्वोपरि माना गया है। भारतीय समाज में स्त्री का विशेष दर्जा है जिसका हम आदर करते हैं, तथापि एक मानवीय संघति के रूप में हमें स्त्री हठ की निष्पक्ष विवेचना करनी ही होगी अन्यथा हम अपनी विषयवस्तु से उचित न्याय नहीं कर पायेंगे। इसलिये संपूर्ण नारी जाति से क्षमायाचना सहित हम इस विवेचना को आगे बढ़ाते हैं।

जहां तक मेरा अनुभव कहता है, स्त्रियों का हठ पूर्ण रूप से तो नहीं किंतु नब्बे प्रतिशत अज्ञानता, सूचनाओं की कमी, भ्रामक सूचनाओं और उनके अपने पैराडाईम की वजह से होता है। शिकायत विभाग का काम करते हुये हमारा वास्ता महिला शिकायतियों से भी पड़ा है। उन शिकायतों के विवेचन से यही तथ्य उभर कर सामने आया है कि जिन महिलाओं को घर से बाहर जाने के कम अवसर मिलते हैं, बाहरी दुनिया और विशेषकर कार्यालयीन तौर-तरीकों और विधि-विधानों से रूबरू होने का अवसर अपेक्षाकृत कम मिलता है, उन महिलाओं में हठधर्मी अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है। इसका कारण यह होता है कि ऐसी महिलायें अपने सीमित ज्ञान की कूपमंडूक होती हैं। उन्हें अपने सीमित दायरों से बाहर आने का न तो अवसर मिला होता है और न ही वे आना चाहती हैं। किंतु कार्यालयीन या समाज के उन दायरों में, जिनकी प्रकृति उनके घरेलू प्रबंधन से अलग होती है, उनका अनुभव और ज्ञान शून्य न कहें तो नगण्य अवश्य होता है। अब ऐसे में उन्हें जितनी जानकारी होती है, उन्हें उसी से काम चलाना होता है। जिसको जितना ज्ञान होता है, वह उसी को सच मानता है। समझने के लिये हम चार अंधों और हाथी का उदाहरण ले सकते हैं। चारों अंधों ने हाथी के स्वरूप को उसी प्रकार सच माना जितना भाग हाथी के शरीर का वे छू पाये। उनमें से एक के लिये हाथी सूंड़ जैसा था, दूसरे के लिये खंभे जैसा तो तीसरे के लिये रस्सी जैसा तो चौथे के लिये ठोस मज़बूत वस्तु जैसा। चूंकि इन चारों अंधों की सोच सीमित थी, उसी सीमित सोच से उन्होंने हाथी के स्वरूप की कल्पना की। इसलिये इस श्रेणी की महिलाओं को जितना ज्ञान होता है, वे उसी अनुसार क्रियाशील होती हैं। यह तो व्यवहार के मूल का कारण हुआ। अब आगे हठ की बात की जानी है। जैसा कि हम पहले भी चर्चा कर चुके हैं, एक ओर तो हठ एक प्रकार का मानसिक अवरोध है जो व्यक्ति को एक सीमित दायरे और तरीके से अधिक और अलग नहीं सोचने देता तो दूसरी ओर यह किसी व्यक्ति की अपने प्रतिपक्षी के समक्ष अपनी सर्वोच्चता साबित करने

का प्रयास होता है। महिलाओं का सीमित ज्ञान उन्हें मानसिक अवरोध की स्थिति में ला देता है। और इसके साथ संयोग होता है असुरक्षा की भावना का। यह अत्यंत महत्वपूर्ण बिंदु है विवेचना का, जिस पर पूरे मनोयोग से ध्यान दिया जाना अपेक्षित है। महिलाओं को सदैव यह लगता रहता है कि हमारे पुरुष प्रधान समाज में उनकी भूमिका तथा प्रभाव अपेक्षाकृत कमज़ोर माने जाते हैं। पुरुषों की अपेक्षा उन्हें समाज के बाहरी कामों का अनुभव कम होता है। इसलिये कोई उनकी इस कमी को जान न ले और महसूस न कर ले, वे अति चतुर बनने की कोशिश करती हैं और ऐसा दर्शित करती हैं कि उन्हें सब कुछ पता है। उन्हें मूर्ख नहीं बनाया जा सकता। और इसी मूर्ख न बनने की चाहत में वे अपना पक्ष रोप कर बैठ जाती हैं। और यकीन मानिये- एक बार यदि महिला ने हठपूर्वक अपना पक्ष रोप दिया तो ब्रह्मा क्या, चौरासी लाख देवता भी उस हठ को नहीं डिगा सकते। इस हठ और उसकी तीव्रता के पीछे असुरक्षा को जीतने की भावना होती है। स्मरण रहे कि जिस व्यक्ति में असुरक्षा की भावना जितनी बलवती होगी, हठ उतना ही कठोर और बीहड़ होगा। चूंकि महिलायें मनोवैज्ञानिक रूप से अपेक्षाकृत अधिक असुरक्षित होती हैं, इसलिये वे हठी भी अधिक होती हैं। हठ के रोपण और प्रदर्शन से अपनी कमी को छुपाना चाहती हैं, खुद को बेहतर साबित करना चाहती हैं। हमारे पास कई शिकायतें आती हैं जिनमें महिला ग्राहक अमूमन कम ब्याज दर मिलने, बैंकर द्वारा सही सूचना न दिये जाने, एफ डी आर का बिना उनसे पूछे स्वतः नवीनीकरण कराने और अभद्र व्यवहार की शिकायतें शामिल होती हैं। इन सबका कारण उक्त महिला ग्राहकों की असुरक्षा की भावना होती है। वह अन्य लोगों का ध्यानाकर्षण करके खुद को काउंटर पर बैठे बैंकर से बेहतर साबित करना चाहती हैं और इस प्रकार अपनी मानसिक और सामाजिक असुरक्षा तथा असंरक्षा की भावना की भरपाई करना चाहती हैं। यही है स्त्री हठ का कारण। ज्यों-ज्यों असुरक्षा की भावना की तीव्रता बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों हठ की तीव्रता भी बढ़ती जाती है।

दूसरी बात यह भी है कि हमारे समाज में **जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी** का जो सामाजिक और नैतिक वाक्यांश लागू है। हम सभी इस कारण से समाज की महिलाओं का आदर करते हैं। संपूर्ण नारी जाति से क्षमायाचना सहित, हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं कि महिलाओं को जितना आदर हम देते हैं, वे उतनी ही अधिक अहंकारी होती जाती हैं। चाहे वे उस आदर की हकदार हों या न हों, हमने उन्हें **स्वर्गादपि गरीयसी** तो बना ही दिया है। अब इन सबमें से जो महिलायें अपेक्षाकृत अधिक साक्षर होती हैं, वे आदर पाकर उसी प्रकार विनयशील हो जाती हैं जिस प्रकार फल लगने से वृक्षों की डालियां झुक जाती हैं। किंतु साक्षरता का अनुपात अपेक्षाकृत कम है। अपेक्षाकृत कम साक्षर महिलायें स्वयं को बैंक की मालकिन से कम नहीं समझती और बैंकर को अपना गुलाम। ऐसे में वे स्वयं को महान हस्ती के रूप मे देखने लगती हैं और अपनी बात को- चाहे वह गलत हो या सही- बैंकर के समक्ष सर्वोच्चता से रखना और मनवाना चाहती हैं।

यहीं से उनके व्यवहार में हठ का प्रादुर्भाव होता है और वह हठ अंगद के पैर की तरह हिलाये नहीं हिलता। खैर! शिक्षा और साक्षरता का प्रभाव तो चाहे पुरुष हों या महिला ग्राहक सभी पर समान रूप से पड़ता है और इस कारण से जो हठ उत्पन्न होता है, वह पुरुष वर्ग के ग्राहकों मे भी दिखायी देता है। किंतु हमारे भारत में पुरुषों और स्त्रियों में साक्षरता का अनुपात अन्य देशों की तुलना में विषम है तथापि अब यह अनुपात अब सम होने की दिशा में है। **सर्वशिक्षा अभियान, पढ़ी-लिखी लड़की रोशनी घर की** जैसी परियोजनाओं से अब इस स्थिति में भी सुधार होता नज़र आ रहा है।

स्त्री हठ से कैसे निपटें?

- **अधिक से अधिक सूचनायें देने का प्रयास करें-** ज्ञान की शक्ति अपार है। अधिक से अधिक किंतु संक्षिप्त और ठोस सूचनाओं और नियमों और प्रावधानों से हठ की कठोरता में कमी लायी जा सकती है। स्त्रियों के स्वभाव में समायोजन और समन्वयन की क्षमतायें तथा भावनायें पुरुषों की तुलना में कहीं अधिक होती हैं। अतः वस्तुस्थिति समझने पर वे खुद को नये तरीके से समायोजित करने में बेहतर साबित होती हैं।
- **अच्छे श्रोता बनिये-** महिलाओं के मन में यह ग्रंथी अक्सर पायी जाती है कि उनकी बात की सुनवाई नहीं होती। एक बैंकर के रूप में हमारे लिये उचित होता है कि हम अपनी महिला ग्राहकों की पूरी बात को ध्यान से सुनें और उसके बाद ही उत्तर दें। केवल उनकी बात सुन लिये जाने मात्र से ही अहं की गुत्थी सुलझ जाती है। यह उनकी उस भूख को शांत करेगा जो उनकी सुनवाई न होने से उत्पन्न होती है।
- **बैंकिंग नियमों और प्रावधानों को महिला ग्राहक के ज्ञान व अधिगम के स्तर पर पहुंचकर समझायें-** बैंकिंग शब्दावली और प्रक्रियायें सामान्य भाषा और शब्दावली से भिन्न होती हैं। महिला ग्राहकों से संप्रेषण करते समय तकनीकी शब्दों का प्रयोग न करके आम बोलचाल की भाषा में समझाना श्रेयस्कर होता है।
- **महिलाओं की सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार करें और स्वीकार्यता दर्शायें भी-** यह उनकी सामाजिक अस्तित्व और बेहतरी की मनोवैज्ञानिक भूख को शांत करेगा और उनमें संतोष की भावना पनपेगी। वे आपको अपने सहयोगी के रूप में देखेंगी, विरोधी के रूप में नहीं; तथा अपने पक्ष को आपके सामने रोपने और अपनी बात को ठोक-पीट कर मनवाने का प्रयास नहीं करेंगी। हठ को उत्पन्न होने से आप यथासंभव रोक पायेंगे।
- **विश्वास दिलायें-** महिलाओं में विश्वास और आस्था पुरुषों की तुलना में अधिक मात्रा में तथा अपेक्षाकृत सरलता से दिखायी देने वाले होते हैं। इसलिये थोड़ी सी मेहनत से ही महिला ग्राहकों को विश्वास में लिया जा सकता है। किंतु इतना ध्यान रहे कि बेईमानी तथा छल को पहचानने की शक्ति महिलाओं में नैसर्गिक रूप से होती है। यदि आप उन्हें टालने की कोशिश करेंगे तो आपकी खैर नहीं! ईमानदारी से पेश आइये और बातचीत करते समय अपने संपूर्ण व्यक्तित्व को साथ लेकर उनसे बात कीजिये। आपकी बॉडी लैंग्वेज़ भी यह बतायें कि आप उन पर पूरा ध्यान देकर बात कर रहे हैं। तभी वे आपकी बातचीत और दी गयी सूचनाओं पर विश्वास कर सकेंगी।
- **स्वीकार्यता दर्शायें-** स्त्रियां शक्ति की उपासिका होती हैं। शक्ति स्वरूपा भी होती हैं। उनसे व्यवहार करते समय उनकी सत्ता को स्वीकार कर लीजिये। वे संतुष्ट हो जायेंगी।

राजहठ

हठ की एक और बानगी आम तौर पर समाज में देखने को मिलती है। कभी-कभी बैंकर में तो कभी-कभी ग्राहकों में- अहंकार इसका कारण होता है और हठी द्वारा स्वयं को गुरुत्तर और शक्तिसंपन्न समझने के कारण इसकी उत्पत्ति होती है। बैंकर को बैंकिंग नियमों और प्रावधानों के तहत कुछ प्रत्यायोजित शक्तियां प्रदान की जाती हैं। इन्हीं शक्तियों का प्रयोग वह अपने दैनंदिन बैंकिंग कामकाज में करता है। इन शक्तियों के उपयोग में वह स्वयं को शक्तिसंपन्न पाता है और भूल जाता है कि वह बैंक का एक कर्मचारी है और इन शक्तियों के प्रयोग करते समय वह बैंकिंग प्रणाली और अपने बैंक का एक उपकरण मात्र है। यदि आज उक्त बैंकर को अपने पद से च्युत होना पड़े या उसकी सेवायें बैंक से समाप्त कर दी जायें तो उसका इन शक्तियों के परिप्रेक्ष्य में कोई अस्तित्व नहीं रह जायेगा। किंतु इस सच को जो बैंकर स्वीकार नहीं करता या करना नहीं चाहता तो उसके व्यवहार में गुरुता के लक्षण दिखायी पड़ने लगते हैं। जब ग्राहक द्वारा बैंकर से अधिकारपूर्वक बात की जाती है (क्योंकि वह ग्राहक के रूप में हमारी रोज़ी-रोटी का कारक है) तो बैंकर इसे सहन नहीं कर पाता और अपनी बात पर अड़ जाता है। यह अड़ियलबाज़ी हठ का रूप ले लेती है और ग्राहक-बैंकर के सबंध कटु हो जाते हैं।

दूसरा राजहठ कार्यपालकों या उच्च अधिकारियों में देखने को मिलता है। ऐसे अधिकारियों में न बदलने वाले निर्णय, दुराग्रह पाये जाते हैं। हालांकि कार्यालयीन संस्कृति में दबंग तथा धौंसियाने वाले व्यवहार आम होते हैं और ये सामान्यतया कार्यालयीन संस्कृति का हिस्सा माने जाते हैं। ये संबंध अधिकारी और अधीनस्थ के होते हैं। नेतृत्व तथा टीम को एक दिशा में ले जाने के लिये एक दबंग का होना ज़रूरी भी होता है अन्यथा टीम में सभी नेता हो जायेंगे और सभी अपनी-अपनी दिशाओं में कार्य करेंगे। ऐसे व्यवहार से इन अधिकारियों के साथ काम करने वाले इनकी टीम के व्यक्ति हतोत्साहित रहते हैं

तथा उनसे कम से कम संप्रेषण करना चाहते हैं। ऐसे व्यक्तियों के आसपास के लोग उनसे कटते रहते हैं क्योंकि ये व्यक्ति हठ के साथ राजशक्ति का चाबुक भी चलाते हैं जिसकी दोहरी मार सामने वाले व्यक्ति पर पड़ती है। एक तो हठ अपने आप में ही प्रतिपक्षी को दमित करने वाला होता है और उस पर से यदि उसके साथ राजशक्ति और शक्तिसंपन्नता, अधिकार संपन्नता का संयोग हो जाये तो यह हठ बड़ा ही भयावना और हानिकारक हो जाता है। इसकी मार से, इसके दुष्प्रभावों से प्रतिपक्षी का अछूता रहना, सामान्य रह पाना असंभव-सा होता है। राजहठ का अनिवार्य प्रभाव बहस और वाद-विवाद में परिणत होता है। बालहठ तथा स्त्रीहठ को जहां अच्छे संप्रेषण से, विश्वास से जीता जा सकता है, वहीं राजहठ को केवल समर्पण से जीता जा सकता है। यदि राजहठी के साथ वाद-विवाद में आप उलझ जायेंगे तो परिणामस्वरूप वैयक्तिक टकराव के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलने वाला। न तो संबंध रह पायेंगे और न ही उद्देश्य। हम दोनों से ही भटक जायेंगे और समय, ऊर्जा तथा मानसिक ध्यान का केंद्रीकरण सब कहीं पीछे छूट जायेंगे और सिर्फ विवाद ही रह जायेंगे। इसलिये राजहठ में टकराव से किसी भी कीमत पर बचा जाना चाहिये। इसे चमचागिरी का नाम भी दिया जा सकता है। किंतु यह कुछ-कुछ वैसा ही होता है जैसे हम लंबी छलांग लगाने से पहले चार कदम पीछे हटते हैं और फिर लंबी कूद मारते हैं किसी गड्ढे को पार करने के लिये। हमें राजहठ के गड्ढे को वाद-विवाद से अछूता रहते हुये छलांग लगानी है और अपने उद्देश्य तक पहुंचना है।

राजहठ में भी अलग-अलग तरह की विशेषतायें पायी जाती हैं-

- **घमंडी और अक्खड़**- ये व्यक्ति मानकर चलते हैं कि इन्हें सब कुछ आता है। खुद को महाज्ञानी मानकर चलते हैं ये। बाहरी और नये विचारों के लिये इनके मन-मस्तिष्क के सभी दरवाज़े बंद रहते हैं। ये आपकी बात सुनने को कतई तैयार नहीं होते।
- **हठीले**- ये अपनी क्रियाप्रणाली में किसी भी परिवर्तन के प्रति असंवेदनशील होते हैं।
- **दुर्नम्य-** ये लचीले नहीं होते। इनके मन में, व्यवहार में जो शामिल है, उनमें जरा सा भी परिवर्तन, लचीलापन इन्हें स्वीकार नहीं होता। यहां तक कि अति क्षुद्र और महत्वहीन बिदुओं पर भी ये अपने ही मंतव्य पर अड़े रहते हैं।
- **चिपकू-** ये हर बात और हर काम के लिये नियमों से बंधे रहते हैं।

निपटने के उपाय

- ✓ उनके हठ को एक चुनौती के रूप में लीजिये तथा उनके द्वारा उठाये जाने वाली आपत्तियों के निराकरण के रूप में इनकी सोच से दो हाथ आगे रहिये। उनके पास कोई प्रस्ताव ले जाते समय आप सभी संभावित आपत्तियों का आकलन कर लें तथा यदि अपने प्रस्ताव को मनवाना है तो उनके द्वारा जतायी जाने

वाली आपत्तियों का उत्तर आपके पास होना चाहिये। आप सफल होंगे।

- ✓ किसी भी प्रस्ताव के बारे में उनके असहमत होने पर आप उनका मंतव्य पूछें, उनका तर्क व दृष्टिकोण भी जानने का प्रयास करें, यदि उनके तर्क होंगे तो हो सकता है आप कुछ हद तक उनसे सहमत हो जायें। या आप अपने तर्क, (उनके तर्क को पूरी तरह से सुनने के बाद ही) भी दे सकते हैं। इससे हो सकता है आप उनसे या वो आपसे सहमत हो सकें या कुछ वो आपसे और कुछ आप उनसे सहमत हो सकें। समझौते का कोई एक बिंदु तो उभरेगा ही। इसलिये कहने और पूछने में संकोच न करें। किंतु विनम्रता को आप नहीं छोड़ सकते। इसे न भूलिये कि आप राजहठ का सामना कर रहे हैं जहां राजशक्ति का समावेश है और समय आने पर इस शक्ति का चाबुक चल सकता है।
- ✓ अंत में, जब कुछ न हो सके तो, उन पर क्रोध दर्शायें। न! न! क्रोध करने का तरीका वह नहीं जो आप सामान्य तौर पर अपनाते हैं। यह राजशक्ति है। इनके प्रति दर्शाया गया आपका क्रोध आपके लिये ही भस्मासुर बन सकता है। इनको क्रोध दर्शाने का तरीका है आप चुपचाप अपनी अप्रियता, अस्वीकार्यता अपने शारीरिक भाव-भंगिमा से दर्शाते हुये बाहर चले आईये- बिना कुछ मुंह से कहे और सब कुछ शारीरिक भाव-भंगिमा से कहते हुये। निश्चित रूप से वो दूसरी बार बुलाकर या किसी और तरीके से आपकी बात सुनने और मानने को तैयार होंगे। आपको इसका पता चले या न चले। मौन की शक्ति का सदुपयोग तो करके देखिये।
- ✓ राजहठ का एक कारण यह भी होता है कि राजशक्ति को पाने के लिये इसके पात्रों को कड़ा संघर्ष करना पड़ा होता है और उसके बाद ही ये शक्तिसंपन्न बनते हैं। प्रारंभ में यह भावना गर्व की ही होती है। किंतु धीरे-धीरे पता नहीं कब यह **ईगो** में समाविष्ट हो जाती है। ऐसे मामले में गर्व तक ही सीमित हो तो कोई बात नहीं। उन्हें तुष्ट करने की कोशिश कीजिये किंतु यदि यह अहंकार बन गयी हो तो पता लगाइये के इस गर्व का कारण क्या है। और साथ ही साथ उनको कुछ नये ऐसे विचार दीजिये जिससे उन्हें इस बात का एहसास हो कि उनसे भी बेहतर कोई एक- और वो एक आप- हैं। यह उनके अहंकार को नियंत्रित करने में मदद करेगा।
- ✓ यदि आप अहंकारी के अहंकार से दूर जाना चाहते हैं तो पहले सम्मानपूर्वक और कर्त्तव्यनिष्ठा से अपनी ड्यूटी और दिये गये कार्य को पूरा कीजिये और बिना कुछ वाद-विवाद के आगे और काम न लीजिये। छोड़ दीजिये उन्हें। आपका अहंकारी अधिकारी पछतायेगा। किंतु इसके लिये आपके पास अपने काम में महारत होनी चाहिये।

- ✓ अहंकारी व्यक्ति को अकेला छोड़ दीजिये। जहां सभी अपने-अपने काम में अतिव्यस्त होंगे और इस अक्खड़, अहंकारी और हठीले व्यक्ति का ध्यानाकर्षण कोई भी नहीं चाहेगा तो वह अपने आप दुरुस्त हो जायेगा। वह कार्यस्थल सर्वोत्कृष्ट होता है जहां अहंकारी और हठी व्यक्ति को अकेला छोड़कर अन्य सभी व्यक्ति अपने अपने कामों में व्यस्त रहते हैं और कोई उसकी कृपादान के लिये लालायित नहीं रहता। ऐसे में कार्यक्षमता तथा उत्पादकता दोनों बढ़ती हैं और अहंकारी का अहंकार और हठ दोनों नियंत्रित रहते हैं। इसके विपरीत जहां अहंकारी और हठी व्यक्ति खासकर उच्चाधिकारी या राजहठी ग्राहक- दोनों के मामले में- के अहं की तुष्टि और कृपा के लिये अन्य लोग लालायित रहते हैं- वहां कार्यक्षमता शून्य की ओर अग्रसर रहती है तथा उत्पादकता में लगातार गिरावट आती रहती है क्योंकि कार्मिकों का सारा ध्यान उक्त अहंकारी की तुष्टि में लगा रहता है काम में नहीं।

अंत में सबसे अधिक आवश्यक- अपने स्वयं के अहंकार को, हठ को नियंत्रित करें और धीरे-धीरे इसे केवल आत्मसम्मान की मात्रा तक ही रहने दें। इसके लिये ज़रूरी है कि आप खगोलशास्त्र पर ध्यान दें। इस सृष्टि में कुछ ऐसे भी तत्व प्रकृति ने बनाये हैं, जिनका अस्तित्व हमारी कल्पना से बाहर है। उदाहरण के लिये कुछ ऐसी शक्तियां इस सृष्टि में हैं जो अदृश्य हैं किंतु इतनी अधिक शक्तिशाली और प्रभावकारी हैं कि सकल सृष्टि का नियमन कर रही हैं। सूरज-चांद के प्रकाश को नियमित और नियंत्रित कर रही हैं। पर्वतों का आस्तित्व देखिये। कितना महान और अचल अडिग है! हम इनके सामने कितने क्षुद्र और शक्तिहीन हैं! बस! इसका अनुभव कीजिये तो सारा अहंकार तिरोहित हो जायेगा। अहंकार की उत्पत्ति बृहदाकार से होती है। अपनी क्षुद्रता का अनुभव और संस्मरण करते रहिये तथा इस दोहे को भी याद रखिये अहंकार आपके पास नहीं फटकेगा और आप सशक्त और प्रभावशाली किंतु विनम्र बनाते जायेंगे-

लघुता ते प्रभुता मिले, प्रभुता ते प्रभु दूरि
चींटी लै सकर चली, हाथी के सिर धूरि।

प्रयुक्त शब्दावली

हठ	Regidity
मनोग्रंथियां	Complexes
आक्रामक	Aggressive

स्वकेंद्रित	Self Centered
अभिप्रेरणा	Motivation
सर्वोच्चता	Supremacy
कोंचना	Nattering
दुर्नम्य	inflexible
चिपकू	Sticky

11. अध्यात्म और मनोविज्ञान

पश्चिमी सभ्यता की तर्ज पर जीवनशैली का अनुसरण करती हुई हमारी भारतीय जनता अभी भी भारतीय अध्यात्म की गिरफ्त से छूट नहीं पायी है।

अध्यात्म- आस्था और विश्वास है तथा उस आस्था और विश्वास के फलस्वरूप क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं तथा व्यवहारों का अध्ययन मनोविज्ञान है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अध्यात्म और मनोविज्ञान में परस्पर गहरे संबंध हैं।

हर ग्राहक का अपना अध्यात्म होता है, आध्यात्मिक आधार होता है जो उसके अवचेतन तथा अचेतन मन में संजोया हुआ रहता है। यही अध्यात्म प्रतिक्रियास्वरूप मनुष्य की शारीरिक तथा मानसिक क्रियाओं को नियंत्रित, निर्देशित करता रहता है। इन क्रियाओं और व्यवहारों को जांचा-परखा तथा ध्यानपूर्वक विश्लेषण किया जाना ही मनोविश्लेषण है। **अध्यात्म** शब्द दो शब्दों की संधि से बना है। **अधि+आत्म।** अधि उपसर्ग लगने से इसका अर्थ और भी विस्तारित हो जाता है।

मनोविज्ञान भी दो शब्दों से मिलकर बना है, **मनः+विज्ञान।** मनोविज्ञान का अर्थ और परिभाषा हम अध्याय-2 में देख चुके हैं। इन दोनों में अनुक्रम का संबंध है। अध्यात्म पूर्ण रूप से हमारे अवचेतन और अचेतन मन का बीज है किंतु मनोविज्ञान उस अध्यात्म से प्रभावित होकर उपजी और निर्देशित और नियंत्रित होनी वाली क्रियाओं और व्यवहारों का विज्ञान है। जहां अध्यात्म पूरी तरह से अचेतन है वहीं मनोविज्ञान चेतन, अवचेतन और अचेतन- इन तीनों स्तरो से संबंधित है।

जो ग्राहक आध्यात्मिक रूप से जितना सुदृढ़ होगा, उसके व्यक्तित्व में व्यवहारगत दोष उतने ही कम होंगे। इसका कारण यह है कि भारतीय अध्यात्म/धर्म जो कि मुख्य रूप से परोपकार के सिद्धांत पर आधारित है, वह कोई धर्म या मात्र आस्था न होकर जीने का एक वैश्विक तरीका है। इसमें सांप्रदायिकता या धार्मिक अंतरों के लिये स्थान नहीं है। यह मानव को मानव मानकर एक इकाई के रूप में उसकी व्याख्या करता है।

भारतीय संस्कृति या भारतीय धर्म में परोपकार ही जीवन दर्शन का आधार है।

परहित सरिस धर्म नहीं भाई
परपीड़ा सम नहीं अधमाई

यह रामचरित मानस में गोस्वामी जी ने उद्धृत किया है। रामचरित मानस तथा श्रीमद्भगवद्गीता हमारे भारतीय जनमानस में कुछ इस तरह से रच बस गये हैं जैसे शरीर के ऊतकों में रक्त। यह विचार अब विश्वास नहीं आस्था बन चुका है। मनोविज्ञान की भाषा में यदि कहा जाये तो इन विचारों को चेतन रूप से हमारे मनीषियों, गुरुओं, ऋषियों ने हमें बचपन से युवावस्था तक तथा बाद के प्रौढ़ जीवन में भी पढ़ाया, समझाया तथा सिखाया। धीरे-धीरे ये विचार विश्वास के रूप में हमारे अवचेतन मन में तथा वहां से स्वचालित संदेशों के माध्यम से आस्था के रूप में हमारे अचेतन मन में समा गये हैं। एक तो आस्था और वह भी अचेतन मन में- दोनों का समन्वय प्रचंड शक्ति बन जाता है। यही आस्था हमारी भारतीय संस्कृति की रीढ़ है।

आज की नयी भारतीय पीढ़ी को देखें तो प्रत्यक्षतः तो ऐसा लगता है कि हमारी भारतीय संस्कृति के मूल नैतिक मूल्यों से यह पीढ़ी दूर होती जा रही है, लेकिन क्या सचमुच ऐसा है? यदि सचमुच हमारी नयी पीढ़ी भारतीय मूल्यों से दूर चली गयी होती तोः

- आज भी किसी की मदद करके हमारे युवा बच्चे खुशी का एहसास नहीं करते।
- अपने माता-पिता का ध्यान रखकर अपने एक महत्वपूर्ण कर्त्तव्य के पूरा होने का सुखद एहसास न करते।
- स्वयं कष्ट उठाकर और विधिक और प्रशासनिक झंझटों में पड़कर भी दुर्घटना में किसी मरते हुये या घायल व्यक्ति को अस्पताल ले जाने का ईमानदार प्रयास क्यों करते?
- राह चलते किसी असहाय रोगी या बालक की सहायता, सेवा-सुश्रुषा करने का कृत्य उन्हें सुख क्यों देता?
- **चलो हम भी पुण्य कमा लें-** ऐसा कहकर रात को सोते समय आज के पढ़े-लिखे बच्चे माता-पिता के चरण क्यों दबाते?

इसका एक ही अर्थ है कि अभी भी भारतीय नैतिक मूल्य हममें, हमारी अगली पीढ़ी में जीवित हैं। पश्चिमी सभ्यता की तर्ज पर जीवनशैली व्यतीत करती हमारी भारतीय जनता अभी भी भारतीय अध्यात्म की गिरफ्त से छूट नहीं पायी है। इसलिये यहां का ग्राहक भी अभी बैंकर से भारतीयता के अनुरूप ही व्यवहार चाहेगा। और उसकी इस अपेक्षा को साकार करेंगे हमारे भारतीय मूल्य जो बैंकर के मानस में रचे-बसे होंगे और उसके व्यवहार में परिलक्षित होंगे। हर व्यक्ति का चाहे वह ग्राहक हो या बैंकर- एक आध्यात्मिक व्यक्तित्व होता है। यही अध्यात्मिक व्यक्तित्व बैंकर और ग्राहक दोनों के आंतरिक व्यक्तित्व को मूल रूप से प्रभावित करता है।

- जिस व्यक्ति में जितना आत्मबल होगा, वह उतना ही शांत और निश्चिंत

दिखायी देगा। क्योंकि आदमी घबराता ही तब है जब वह अपने-आप को कहीं न कहीं असमर्थ, कमज़ोर, अनभिज्ञ पाता है। अपनी सीट पर बैठा हुआ बैंकर यदि घबरा रहा है तो इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि वह उक्त सीट का काम करने में खुद को असमर्थ पा रहा हो इसलिये घबरा रहा हो। बैंकिंग सेवाओं हेतु काउंटर की लाइन में खड़ा ग्राहक इसलिये भी घबराया हुआ लग सकता है क्योंकि वह बैंक में पहली बार आया हो और उसे विदड्राल फार्म भरना न आता हो।

- अज्ञानता अभिशाप तो है लेकिन पाप नहीं। आवश्यक तो नहीं सबको सब कुछ आता ही हो। जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत हम नये-नये काम सीखते रहते हैं। हर काम सीखने से पहले हमारे लिये नया होता है और हम उसके लिये अनभिज्ञ होते हैं। लेकिन इसके लिये शर्म करना, घबराना या किसी अपनी अज्ञानता के बारे में न कहना इसका उपचार तो नहीं!

यहां हम एक आंखों देखी घटना बताना चाहते हैं, जब अनीता ने किशोरावस्था में कदम रखा था। उसे विज्ञान का विषय बड़ा ही दुरूह लगता था इसलिये वह कला क्षेत्र से अध्ययन कर रही थी। उसका बड़ा भाई अपने विद्यालय का मेधावी छात्र था और उसने 10वीं कक्षा में अपने विद्यालय में ही नहीं, शहर में टॉप किया था। कॉलेज में उसे विज्ञान और उसमें भी फीज़िक्स, केमिस्ट्री, मैथ दिलवाया गया था। वह उसकी रुचि का विषय भी था। जब-जब वह हॉस्टल से आता तो माता-पिता का यही कहना होता था कि हम ट्यूशन नहीं लगवा सकते। भईया आया हुआ है, जो-जो नहीं आता, उससे सीख लो। अब इतना कहना नहीं कि अनीता के पसीने छूटने लगते थे। एक तो उसे भाई की गब्बर सिंह जैसी भारी-भरकम आवाज़ से बड़ा डर लगता था। दूसरे वह आयु में उससे लगभग 10 वर्ष बड़ा था। इसलिये जब वह इंजीनियरिंग कर रहा था तो अनीता कक्षा 4 या 5 में रही होगी। तीसरे जब वह पढ़ाने लगता था तो कुछ चीजें मानकर चलता था कि उसे आती ही होंगी जबकि उसे विज्ञान के उपरोक्त तीनों विषयों में कुछ नहीं आता था। खासकर गणित उन दिनों कला विज्ञान दोनों के छात्रों के लिये एक ही पुस्तक और एक समान ही सिलेबस होता था। अब पढ़ाते समय जब वह अनीता से कहे कि...यह तो तुमने पढ़ा ही होगा...यह तो तुम्हें समझ आ ही गया होगा... तो शुरू-शुरू में **ना** कहने की उसमें शक्ति ही नहीं होती थी। कभी कहना भी चाहा तो सोशियोफोबिया के कारण लगता था कि कहीं अनीता को गंवार ही न समझ बैठे। इसलिये **ना** कहने में इतनी शक्ति लगती थी कि पूरा शरीर पसीने से तरबतर हो जाता था। अब आप समझ सकते हैं कि उस एक ना के बाद अनीता ने कितने गणित के प्रमेय समझ सके होंगे या फीजिक्स के कितने नियम उसे समझ में आये होंगे। इस नाटक से अनीता को बार-बार घबराहट होने लगी। चूंकि उसको आध्यात्मिक रुझान प्रारंभ से अधिक था, इसलिये जुझारूपन भी ज्यादा था या यों कह

सकते हैं कि आत्मबल अधिक था। कोई अधिक से अधिक उसका क्या कर लेगा? यह भावना भली-भांति मन में थी। अनीता ने भी एक बार सोचा कि 'यह क्या हर बार का मरना है। एक ही बार कह दूंगी- **हां मुझे नहीं आता'**। और उस बार उसने यही किया। जब भाई पढ़ाने बैठा तो अनीता ने प्रैक्टिस के लिये हर बात को अस्वीकारा। 'यह तो जानती हो न!' और उसका उत्तर हर बार **ना** होता। उसे भी हैरानी हो रही थी। खैर उस बार के बाद उसके लिये **ना** कहना बहुत आसान हो गया। उसे **ना** कहने में एक प्रकार का परपीड़क आनंद आने लगा। उसने यह भी नोट किया कि पहले जब वह भाई से डरती थी, घबराती थी तो उसके सामने बैठते ही उसकी नाक बहने लगती थी। अब वह पोंछते-पोंछते परेशान। और इस बात को उसने नोट भी बहुत समय बाद किया कि उसे न तो जुकाम है, न ही ठंड लगी है, फिर उसकी नाक अचानक क्यों बहने लगी? बाद में यह मामला समझ में आया कि यह नाक तो भईया के डर की वजह से बह रही है। जैसे ही उसने अपने ना कहने के डर पर काबू पाया, उसको अपने आत्मबल से जीता, तो आप भी हैरान होंगे कि नाक बहना बिल्कुल बंद। जब शुरू-शुरू में थोड़ा इस नाक ने बहने की कोशिश भी की तो अनीता ने इसे डांट दिया। 'चुप। मैं अब भईया से नहीं डरती। तुझे रोने की ज़रूरत नहीं है।' और सचमुच उसकी नाक ने बहना बंद कर दिया।

हम खुद एक खुली किताब हैं। कई बार हमारा शरीर कुछ हरकतें ऐसी करता है जिसका प्रत्यक्ष कारण हमें समझ में नहीं आता। लेकिन जरा सा ध्यान दें तो अपने शरीर की भाषा को हम समझ सकते हैं और बड़ी से बड़ी बीमारी का हम इलाज कर सकते हैं।

अनीता उन दिनों प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी भी कर रही थी और प्राईमरी स्कूल में पढ़ा भी रही थी। सामान्य ज्ञान पढ़-पढ़ कर अच्छा ज्ञान हो गया था। फिर उसके बड़े भईया का ही उदाहरण लेते हैं। तब तक उसके भाई की शादी हो चुकी थी। उसकी पत्नी उस ज़माने की एमबीए थी और परिवार में इस दंपत्ति की बड़ी इज्जत थी। जब अखबारों में ताज़ा ज्ञान वाला कॉलम दोनों पढ़ते तो उसके उत्तर आपस में एक-दूसरे को देते। इससे दोनों अपना सामान्य ज्ञान ताज़ा किया करते थे। अनीता तो वैसे भी काफी छोटी होने के कारण उनसे कोसों दूर रहती थी। ज्ञान के मामले में तो विशेष रूप से। एक बार की बात है। अखबार में प्रश्न आया था कि बच्चों के डॉक्टर को क्या कहते हैं? संयोगवश अनीता के भईया और उनकी पत्नी को इसका उत्तर नहीं आया तो अनीता के मुख से बेसाख्ता निकल गया **अरे पीडियाट्रिक, इतना तो आता ही होगा आप लोगों को।** अब इतना वह कह तो गयी लेकिन कहने के बाद ध्यान आया कि बेटा आज तो पिटे। भागो! हुआ तो कुछ नहीं। लेकिन बाद में हमने अनीता का मनोविश्लेषण किया तो जाना कि **इतना तो आता ही होगा-** यह उसके बचपन की उन घटनाओं का प्रक्षेपण था जो उसके भईया गणित पढ़ाते समय उससे कहा करते थे कि **इतना तो तुम्हें आता ही होगा...यह तो तुम जानती ही होगी...** उस दिन के बाद अनीता के मन में न आने का मलाल कुछ कम हो

गया। किंतु भईया के सामने कुछ कहने की ताकत उसके आध्यात्मिक ज्ञान ने उसे दी। अनीता अपने अंदर की कायरता को छोड़कर वीर हो चुकी थी। वह अपने 'स्व' को स्वीकार करने लगी थी। उस छोटी सी उम्र में उसने बहुत से साधु-संतों के प्रवचन सुने थे। विवेकानंद साहित्य ने अनीता को एक रेंगते हुये जीव से सर उठाकर जीने वाला इसांन बना दिया था और अब वह कुछ भी कहने-सुनने का दम रखती थी। यह आध्यात्मिक शक्ति का प्रभाव था। **शिवोऽहं, एकोऽहं** का नाद उसके मन में अनवरत गूंजने लगा था और उसकी शक्ति से वह आप्लावित होती रहती थी। ऐसा लगता था कि सारी की सारी ये दुनिया अनीता की जेब में है। यह आध्यात्मिक शक्ति थी।

12. भक्तियोग, ज्ञानयोग और राजयोग

सरकार समाज के कमज़ोर वर्गों को आगे बढ़ाने तथा पिछड़ी जातियों और जनजातियों को समाज के अन्य वर्गों के समकक्ष लाने हेतु विभिन्न प्रकार की योजनायें चलाती हैं। इन योजनाओं के आर्थिक पक्ष का कार्यान्वयन बैंकों के माध्यम से बैंकर करते हैं। राजशक्ति के द्वारा प्रदत्त यही शक्ति राजयोग है। राजयोग का सदुपयोग भक्तियोग के समन्वय से कर्मयोग में करना ही बैंकिंग है।

श्रीमद्भगवद्गीता हमारे भारतीय जीवन दर्शन का आधार ग्रंथ बना हुआ है। कर्मयोग का सिद्धांत तो भारत ने सभी को सिखाया है और यहीं से उठकर **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन** का उद्घोष और गुंजार उठा और शनैः-शनैः सारे विश्व में फैल गया। गीता में कर्मयोग, ज्ञानयोग और राजयोग की विस्तार से व्याख्या की गयी है। यह व्याख्या जहां हमें जीने की कला सिखाती है, वहीं दूसरी ओर हमारे वैयक्तिक और आध्यात्मिक उत्थान का मार्ग भी प्रशस्त करती है। हम इस अध्याय में मात्र संदर्भ हेतु गीता में दिये गये उपरोक्त तीनों के विवरण का सार संक्षेप देंगे किंतु इनके अर्वाचीन अर्थ पर अधिक प्रकाश डालेंगे।

गीता के अनुसार, कोई भी व्यक्ति किसी भी समय कर्म किये बिना नहीं रह सकता। यदि हम निष्क्रिय भी हैं तो भी हमारा मस्तिष्क कुछ न कुछ सोचता ही रहता है। यदि हम घर-बार छोड़कर संन्यास के बहाने से वन में चले जायेंगे तो वहां भी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति के नाम पर कुछ न कुछ सामान जुटाना शुरु कर देंगे। इसलिये कर्महीनता की स्थिति से इंकार किया गया है। यह तो कर्म है। किंतु कर्मयोग का क्या अर्थ है? योग का अर्थ जोड़ होता है। कर्मों का योग अर्थात् जोड़। तात्पर्य यह है कि हम कर्म करने के उपरांत जैसा अनुभव करते हैं या अनुभव करने के लिये इस ग्रंथ में निर्देश दिये गये हैं, उसका समग्र सारांश ही **कर्मयोग** है। कर्मयोग में इस आशय के निर्देश हैं कि हम अपना काम तो करें किंतु उस काम के बदले फल और परिणाम की इच्छा न करें। परिणाम तो स्वयमेव आयेंगे ही। उनके लिये प्रयास करने की आवश्यकता नहीं होती बल्कि प्रयास की सारी

शक्ति हमें कर्म करने में लगानी होती है। जैसा प्रयास होगा, वैसा ही परिणाम स्वयमेव प्राप्त हो जायेगा। **भक्तियोग** में भक्ति को प्रधान माना गया है। यह कहा गया है कि ईश्वरीय सत्ता में विश्वास, आस्था तथा उसके प्रति सस्नेह आदर और प्रेम की भावना का सारांश ही भक्तियोग है। भक्ति में अखंड आस्था होती है और अशर्त स्नेह होता है। कुछ भी सशर्त नहीं होता। ग्रंथ में ही यह भी कहा गया है कि कर्मयोग अंततः भक्तियोग में परिवर्तित हो जाता है और भक्तियोग अततः कर्मयोग में समाप्त होता है। कहने का अर्थ यह है कि जो ईश्वरीय सत्ता में आस्था (भक्ति) रखता है, वह अंततः कर्म करने में विश्वास करने लगता है और अपने सारे कर्मों को ईश्वर को अर्पित कर देता है, उन्हीं की मर्जी में खुश रहता है। अपनी इच्छाओं पर जोर न देकर ईश्वर की इच्छाओं पर जोर देने लगता है। और **कर्मयोगी**- जो कि पूजा, कर्मकांड और भक्ति में न पड़कर केवल करणीय कर्म को ईश्वर की इच्छा मानकर संपादित करता रहता है, उसे फल स्वयमेव मिलता जाता है और उसे किसी फल के लिये भटकना, तपना नहीं पड़ता। अंततः वह ईश्वरीय सत्ता में आस्था रखने लगता है और भक्तियोग में परिवर्तित हो जाता है। अब तीसरा योग गीता में **ज्ञान योग** कहा गया है। ईश्वरीय सत्ता से संबंध, उनके बारे में भान होना, ज्ञानयोग है। कर्मयोग और भक्तियोग में जब मनुष्य को इन दोनों के परस्पर परिवर्तन का ज्ञान होने लगता है तो उसे ज्ञानयोग कहते हैं। इसी ज्ञानयोग में जब ईश्वरीय सत्ता के प्रति समर्पण की भावना जुड़ जाती है तो वह **सांख्य योग** कहा गया है। सांख्य योग किसी भी मनुष्य की परम आनंद और शांति की अवस्था होती है जिसमें कर्म, भक्ति। ज्ञान सभी का समर्पण करके, छोड़कर हम स्वस्थ अर्थात् अपने आप में ईश्वर को पाकर उसी स्व में स्थित हो जाते हैं। इस दृष्टि से केवल सांख्ययोगी ही **स्वस्थ** है। अस्पतालों में स्वस्थ और स्वास्थ्य की भाषा कुछ अलग होती है किंतु यह तो गीता की भाषा और परिभाषा है।

अब इन सभी विचारों और सिद्धांतों का अर्वाचीन अर्थ, वह भी ग्राहक सेवा के संदर्भ में जानना है।

ग्राहक सेवा के संदर्भ में यदि कर्मयोग की व्याख्या की जाये तो हम यह कह सकते हैं कि अपने काउंटर पर या अपनी सीट पर बैठे हुये हमें अपने हिस्से का काम पूरी लगन, ईमानदारी व संस्था के प्रति निष्ठा से करना है। काम करते समय, ग्राहक सेवा देते समय बैंकर होने का मान-अभिमान (राजहठ) नहीं करना है। ग्राहक सेवा प्रदान करते समय हमारी क्रियाओं और शारीरिक भाव-भंगिमाओं में अहंकार, मैं, शक्ति, और कर्ता की भावना के संकेत नहीं मिलने चाहियें। यदि आज हम बैंक में हैं तो इसका श्रेय लेने का अधिकार जिस किसी को भी हो, किंतु बैंकिंग सेवायें प्रदान करने हेतु मान करने का अधिकार हमारा नहीं है। इस सेवा हेतु हमें संस्था द्वारा भुगतान किया जाता है। जबकि एक ओर कर्मयोग कहता है कि कर्म तो करो किंतु फल की आशा न करो और सारे कर्म ईश्वर को सौंप दो। फिर ग्राहक सेवा प्रदान करते समय हम क्यों यह आशा करने लगते

हैं कि ग्राहक हमारे प्रति आभार प्रदर्शन करे! हम यह आशा भी क्यों करने लगते हैं कि ग्राहक हमारा सम्मान करे या फिर ग्राहक हमें विशेष सहयोगी समझें। सीधा अर्थ है कि यदि हम उत्कृष्ट ग्राहक सेवा प्रदान करेंगे तो ग्राहक के व्यवहार में उपरोक्त सभी भाव हमें स्वतः दिखायी देंगे। शाखाओं में यह अच्छी तरह से देखा जा सकता है कि कुछ स्टाफ ऐसे होते हैं जिन्हें शाखा के ग्राहक ढूँढते हैं। यह उनकी ग्राहक सेवा ही होती है। कर्मण्येवाधिकारस्ते का व्यावहारिक रूप हम अपने दैनिक जीवन में भी देखते हैं। जब हम किसी भी व्यक्ति को कुछ देते हैं और उससे वापसी की कोई उम्मीद ही नहीं करते तो हमारा वह कार्य सौंदर्य से भरपूर हो जाता है और उसके बदले हमें ढेर सारा प्यार और आदर मिलता है किंतु इसके ठीक विपरीत जब हम कुछ देकर वापसी की उम्मीद करते हैं तो हमें कुछ नहीं मिलता या जो कुछ मिलता है उससे हम संतुष्ट नहीं होते क्योंकि वह हमारी अपेक्षाओं से बहुत कम होता है। सामान्यतया हम ग्राहकों के लिये बहुत थोड़ा करके उनसे बदले में बहुत अधिक वापसी की उम्मीद करते हैं। ग्राहक और बैंकर के परस्पर संबंधों में कटुता आने का यह एक महत्वपूर्ण कारण है।

आज के युग में जब ग्राहक सेवा सर्वोपरि हो गयी है, तो महात्मा गांधी की उक्ति ब्रह्मवाक्य के समान लगने लगी है- 'ग्राहक ईश्वर का रूप है'। इस दृष्टि से हम यदि कर्मयोग का अभ्यास करते हैं तो वह भक्तियोग में परिणत हो जाना चाहिये। धीरे-धीरे जो अनुभव होंगे, वे ज्ञानयोग और फिर सांख्ययोग का अनुभव करायेंगे। ज्ञानयोग कर्म और भक्ति के ज्ञान होने का नाम है। ज्ञानयोग बैंकिंग नियमों, प्रावधानों और प्रथाओं के ज्ञान व विवेचन और विश्लेषण का नाम है। जब हमें उत्तम ग्राहक सेवा प्रदान करने का सुख मिलने और उस सुख से आनंद मिलने लगेगा तो हम अपने कर्त्तव्य- उत्कृष्ट ग्राहक सेवा प्रदान करने- के प्रति समर्पित हो जायेंगे। यही सांख्ययोग की स्थिति है।

राजयोग का अर्थ योग और प्राणायाम की भाषा में प्राण और ध्यान को हृदय प्रदेश में केंद्रित करना और वहां से अपनी चेतना को कंठ, भृकुटि के मध्य में ले जाना तथा तदुपरांत सहस्रार चक्र (शिरोभाग के सर्वोच्च केंद्र जिसे आम बोलचाल की भाषा में चांद कहते हैं) में ले जाना है। जब हमारा सहस्रार चक्र खुलता है तो वहां से चुंबकीय शक्ति विद्युत आवेश के रूप में नाभि स्थित मणिपूर चक्र को आंदोलित और क्रमानुसार विकसित करती है। यह तो योग की भाषा में है। किंतु बैंकिंग की भाषा में **राजयोग** शासन करने की शक्ति है। बैंक प्रबंधन द्वारा प्रदत्त व प्रत्यायोजित शक्तियों के क्रियान्वयन के फलस्वरूप **कॉरपोरेट सोशल रिस्पांसिबिलिटी** के निर्वहन तथा समाज को आर्थिक विकास के प्रगति पथ पर आगे ले चलने का नाम है।

बैंकर को भारत सरकार, वित्त मंत्रालय और वित्त मंत्रालय भारतीय रिज़र्व बैंक के माध्यम से कुछ शक्तियां प्रत्यायोजित करती हैं और उन प्रत्यायोजित शक्तियों के सदुपयोग द्वारा समाज के सर्वांगीण विकास का उत्तरदायित्व बैंकों को दिया जाता है। सरकार समाज

के कमज़ोर वर्गों को आगे बढ़ाने तथा पिछड़ी जातियों और जनजातियों को समाज के अन्य वर्गों के समकक्ष लाने हेतु विभिन्न प्रकार की योजनायें चलाती है। इन योजनाओं के आर्थिक पक्ष का कार्यान्वयन बैंकों के माध्यम से बैंकर करते हैं। राजशक्ति के द्वारा प्रदत्त यही शक्ति राजयोग है। राजयोग का सदुपयोग भक्तियोग के समन्वय से कर्मयोग में करना ही बैंकिंग है। यही है बैंकिंग के परिप्रेक्ष्य में कर्मयोग, भक्तियोग और राजयोग की परिभाषा।

13. भारतीय संस्कृति और सेवा

'सबते सेवक धर्म कठोरा' अर्थात् सेवक का धर्म सबसे कठोर होता है। यदि हम अपने आध्यात्मिक ग्रंथों को छोड़ भी दें तो भौतिक जगत में सेवा का अर्थ किसी का ध्यान रखना, उनकी शारीरिक, सामाजिक, धार्मिक विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करना है। सेवा में किसी तरह की प्रत्याशा नहीं होती, न ही किसी प्रकार का आर्थिक लाभ होता है।

भारतीय संस्कृति को जानने से पहले हमें संस्कृति के बारे में जानना आवश्यक है। संस्कृति की यों तो कई परिभाषायें दी गयी हैं तथापि हम सबसे सहज, सुगम और सुष्ठ परिभाषा श्री हरदेव बाहरी जी की लेंगे। उनके अनुसार- **मानवीय साधना के पांच सोपान हैं- शरीर, आत्मा, बुद्धि, मन और अध्यात्म। इन्हीं पांचों की सिद्धि का नाम संस्कृति है।** किंतु यदि भौगोलिक और सामाजिक दृष्टि से देखा जाये तो कहा जा सकता है कि कालक्रम के अनुसार मानव समाज ने जो आदर्श, विचार और जीवनशैलियां विकसित कर ली हैं तथा जिनको अपना स्वभाव बना लिया है, वही संस्कृति है। ये गुण और विशेषतायें मानव समाज के संस्कार बन जाती हैं। संस्कारों की भिन्नता के कारण ही किसी देश की संस्कृतियां भिन्न हो जाती हैं। जिस देश के जैसे संस्कार होते हैं, वहां की संस्कृति वैसी ही मानी जाती है। संस्कृति विभिन्न जातियों के दर्शन, सौंदर्यबोध, धर्म, साहित्य और कला में प्रतिबिंबित होती है। इस दृष्टि से भारतीय संस्कृति कुछ अर्थों में विश्व की संस्कृतियों से अलग है। भारतीय संस्कृति मूलतः धार्मिक है। धर्म वह है जो धारणीय हो। हमारे पवित्र विश्वासों का नाम ही धर्म है। जिससे इस लोक और परलोक दोनों में कल्याण हो, वह धर्म है। यदि भारतीय संस्कृति को धार्मिक मूल की कहा जाये तो इसका अर्थ यह है कि यह कल्याण की भावना से युक्त है। वह कल्याण जो इस संसार में भी है और मृत्यु के बाद यदि कोई संसार, स्वर्ग या नरक है तो वहां भी है। अर्थात् भारतीय संस्कृति स्थायी कल्याण के बारे में सोचती है। दूसरी विशेषता यह है कि सभी में एक ही ईश्वर का दर्शन करती है। **एकोऽहं द्वितीयोनास्ति**। अर्थात् मुझमें, तुझमें और सबमें एक ही ईश्वर है, दूसरा कोई

नहीं है। यह अद्वैतवाद पर विश्वास करती है। हम सबमें हैं और सभी हममें हैं। भारतीय संस्कृति की सहिष्णुता और उदारता सराहनीय है। भारतीय संस्कृति ने कभी भी विरोधी विचारों का दमन नहीं किया बल्कि सबको अपने साथ आगे बढ़ने दिया है। परस्पर अस्तित्व पर हमारा विश्वास है। हम दूसरे को गिराकर आगे नहीं बढ़ते बल्कि दूसरे का सहारा बन जाते हैं। हमने देना सीखा है, छीनना नहीं। हमने सभी विचारों के लिये अपने वातायन खुले रखे हैं।

डा. हरदेव बाहरी के शब्दों में- ''हम मतभेदों में समन्वय की खोज करते आ रहे हैं। समन्वय की भावना हमारी संस्कृति का मूल आधार है। हमने नाना जातियों की संस्कृतियों को ऐसा अपनाया कि अलगपन का नामोंनिशान ही नहीं रह गया। हमने नाना मत-मतांतरों, प्रणालियों, सिद्धांतों और परम्पराओं को उदार मन से ग्रहण किया और उन्हें भारतीय बना दिया...''

अनेकता में एकता स्थापित करना ही हमारा ध्येय रहा है। निष्काम कर्म हमारी संस्कृति की रीढ़ है। हम आसक्तिहीन होकर काम करते हैं जो हममें पूर्णता की और निःस्वार्थता की भावना लाता है। **वसुधैव कुटुंबकम** हमारी सोच में है। हमारे देश के योद्धा संन्यासी विदेशों की धर्म संसद में अपनी गर्जना **अमेरिका के भाईयों और बहनों** के संबोधन से प्रारंभ करते हैं जो इस बात का प्रमाण है कि हम सारी पृथ्वी को अपना ही परिवार और घर मानते हैं। हम पश्चिमी विचारों की तरह खाने-पीने और मौज उड़ाने में विश्वास नहीं रखते बल्कि हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि **साईं इतना दीजिये जामै कुटुंब समाये, मै भी भूखा न रहूं, साधु न भूखा जाये।** अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण भारतीय संस्कृति एक नदी की तरह अनवरत प्रवाहमान रही है, अविच्छिन्न रही है।

कवि इकबाल लिखते हैं-

यूनान, मिस्र ओ रोम सब मिट गये जहां से,
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी !

हमें प्राचीनता से, अपनी जड़ों से प्यार है। इसलिये हम अपनी पुरानी पीढ़ियों का आदर करते हैं, उनके प्रति सेवा की भावना रखते हैं। हमारा इतिहास आदर्श बनकर हमारे सामने खड़ा है। एक घटना वर्णन किये बगैर रहा नहीं जाता। एक अनिवासी भारतीय अपने पूरे परिवार के साथ अपनी जन्मभूमि भारत भ्रमण के लिये आया हुआ था। मुझे वह बहुत परेशान दिखायी दिया। कारण जानने पर पता चला कि उन्हें मिट्टी के बर्तनों की तलाश है। भई किसलिये? उनमें भोजन करना अच्छा लगता है। कहां से सीखा आपने? ''अरे! हमारे भारत में ही तो पुराने समय में मिट्टी के चूल्हे पर लकड़ी की आग पर मिट्टी के बर्तनों में खाना बनता था और मिट्टी के बर्तनों में ही खाया जाता था।'' यह उत्तर सुनकर मुझे लगा कि आज भी अनिवासी भारतीयों की आत्मा भारतीय ही है। विदेशों की चकाचौंध में भी वे भारतीय आचार-विचारों को सहेजना चाहते हैं। यह प्रसंग इस बात का

प्रमाण है कि भारतीयता आज भी अपनी पूर्णता के साथ जीवित है- वह भी सोच में, विचारों में और हृदयों में। चाहे जितना भी पाश्चात्यकरण हो जाये, पूरब वाले, पूरब वाले ही रहेंगे। भारतीय संस्कृति में दुखों से छुटकारा पाने के लिये योग, यज्ञ, ध्यान, **सेवा**, सत्संग और ज्ञान आवश्यक माने जाते हैं। सेवा के फिर से विभाग किये गये हैं, जिसमें माता-पिता की सेवा, साधु सेवा, गुरु सेवा और प्रभु सेवा हैं।

सेवा शब्द से सामान्यतया पर्याय मिलता है- ध्यान रखने का। सेवा करने वाला 'सेवक' कहलाता है। रामचरितमानस में गोस्वामी जी कहते हैं- **सबते सेवक धर्म कठोरा** अर्थात् सेवक का धर्म सबसे कठोर होता है। यदि हम अपने आध्यात्मिक ग्रंथों को छोड़ भी दें तो भौतिक जगत में सेवा का अर्थ किसी का ध्यान रखना, उनकी शारीरिक, सामाजिक, धार्मिक विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करना है। सेवा में किसी तरह की प्रत्याशा नहीं होती। न ही किसी प्रकार का आर्थिक लाभ होता है। जिस कार्य में कर्ता का कोई लाभ हो वह सेवा नहीं, बल्कि नौकरी कही जाती है। हम ग्राहकों की नौकरी नहीं करते बल्कि बैंक की नौकरी करते हैं जिसके लिये हमें बैंक से वेतन मिलता है। किंतु ग्राहकों के लिये हम क्या करते हैं? नौकरी तो हम बैंक की कर ही रहे हैं। बैंक ने हमारी नौकरी के दौरान हमसे अपेक्षा की है कि हम ग्राहकों को उनकी बैंकिंग ज़रूरतों को पूरा करने में सहायता करें। चूंकि हम ग्राहकों से बदले में कुछ नहीं चाहते, इसलिये हमारे इस कार्य को सेवा कहते हैं। किंतु सेवा हो या ग्राहक सेवा- क्या हम इसके भावार्थ और गंभीरता को समझ पाते हैं?

हम इसके भावार्थ को उदाहरणों से समझने का प्रयास करते हैं। पुराने समय में शिष्य विद्याध्ययन के लिये गुरुकुल में ही रहता था। वह विद्याध्ययन के साथ ही गुरुमाता के कामों में भी सहायता करता था, जंगल से लकड़ियां लाना, आश्रम की सफाई करना, गुरु के पूजा-घर की सफाई करना, हवन की समिधा लाना, पूजा हेतु पुष्प लाना आदि कार्यों के साथ ही वह शस्त्राभ्यास भी करता था। इसे ही गुरु सेवा कहते हैं। इन सभी कार्यों के बदले शिष्य को कोई भी बदला नहीं चाहिये होता था। इन कार्यों को वह अपना दायित्व, धर्म समझता था। उसका प्रयास होता था कि गुरु उसकी सेवा से प्रसन्न रहें। बस! गुरु की प्रसन्नता से ही वह सब कुछ पा लेता था। यही आज ग्राहक सेवा में भी है। हम बैंकरों को ग्राहकों की सेवा करने का अर्थ उनकी वित्तीय आवश्यकतायें इस प्रकार पूरी करना है कि उसका सामाजिक तथा आर्थिक विकास निरंतरता के साथ हो। न केवल ग्राहकों की वर्तमान पीढ़ी बल्कि उनकी आने वाली पीढियां भी हमारे बैंकों के साथ जुड़ी रहें। हमारी संस्कृति की जो सहअस्तित्व की भावना है, वह ग्राहक सेवा में भी दिखायी देनी चाहिये। स्थायी कल्याण भी है यहां। यह कल्याण ग्राहक के निधियों का प्रबंधन, आने वाली पीढ़ियों के साथ संबद्धता, ग्राहक की आयु के हर पड़ाव पर वित्तीय सहायता आदि भारतीय संस्कृति के उपादान ही तो हैं। चूंकि हम ग्राहक से कुछ अपेक्षा नहीं रखते,

इसलिये हमारा काम ग्राहक-नौकरी न होकर ग्राहक-सेवा है। सेवा तभी फलीभूत और उत्कृष्ट होती है जब सेवक अपने **लक्ष्य** को आप्लावित कर दे, उससे कोई बदला न चाहे। निष्काम सेवा, **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन** का भाव भी हमारी ग्राहक सेवा में होना चाहिये। किंतु वास्तविकता कुछ इतर ही है। हम ग्राहकों को बैंकिंग सुविधायें देते समय इस बात का गर्व कर बैठते हैं कि हम अपने ग्राहक को अनुगृहीत कर रहे हैं। इसीलिये हम ग्राहक से अपेक्षा भी कर बैठते हैं कि वह हमारा आभार माने। हमें विभिन्न प्रकार से वह अतिरिक्त सुविधायें दे। ये सुविधायें सामाजिक दायित्वों के निर्वहन, कार्यालयीन दायित्वों को सुविधाजनक रूप से निपटाने तथा ग्राहकों के बहुमूल्य संपर्कों का उपयोग करने के रूप में हो सकती हैं। यहीं हम गलती कर जाते हैं। हमें याद रखना चाहिये कि हम ग्राहक की नौकरी नहीं करते बल्कि बैंक ने हमें ग्राहक-सेवा देने का दायित्व दिया है। सेवा में प्रति-उपकार या प्रतिदाय की भावना नहीं होती। सेवा **निष्काम** होती है, **निस्वार्थ** होती है। यदि हम बैंकिंग नियमों व प्रावधानों के अंतर्गत ग्राहकों को बैंकिंग सुविधायें देते हैं तो ग्राहक भी संतुष्ट रहते हैं और हम बैंकर भी। बैंकर को संतुष्टि इसलिये मिलती है क्योंकि देने का सुख कुछ अलग ही होता है। वस्तुतः यदि भारतीय अध्यात्म को ध्यान में रखकर बात की जाये तो कहा जा सकता है कि पृथ्वी और मनुष्य को ईश्वर ने एक ही तत्व से बनाया और वह तत्व है मिट्टी। पृथ्वी का भी स्वभाव और गुण देना है इसलिये उसी तत्व से बने होने के कारण मानव का मूल स्वभाव भी देना ही है। चूंकि ईश्वर ने मनुष्य को देने के लिये ही बनाया है, इसलिये वह देकर- **सब कुछ** भी देकर अपार संतोष का अनुभव करता है। देखा जाये तो बिना दिये मनुष्य को न तो संतोष प्राप्त हो सकता है और न ही गौरव की प्राप्ति हो सकती है। **देने** में भी यदि हम आर्थिक, शारीरिक या सामाजिक रूप से कोई वस्तु देते हैं तो वह उतना महत्व नहीं रखती जितना कि समाज के नागरिकों को मानसिक संतुष्टि देने का महत्व है। उसमें भी **सेवा।** सेवा का कोई विकल्प नहीं! चाहे वह पितृ सेवा हो, मानव सेवा हो या फिर ग्राहक सेवा। जिस भी विषय या रिश्ते से सेवा जुड़ गयी हो, वह अलौकिक बन जाता है। फिर ग्राहक सेवा देते समय हम क्यों ग्राहक की परिभाषा 'कष्ट मर' के रूप में देते हैं। हमारी मौलिक सोच ही जब त्रुटिपूर्ण हो जायेगी तो बैंकिंग संबंधी अवधारणा, ग्राहक की परिभाषा और ग्राहक सेवा का सिद्धांत- सभी निराधार, भ्रामक तथा त्रुटिपूर्ण होंगे। फिर परिणाम तथा मानवीय संबंध जो इस सेवा के आधार पर पनपते हैं- वे कैसे त्रुटिरहित हो सकते हैं! इसलिये हमें बैंक, बैंकिंग, ग्राहक और सेवा की सही-सही परिभाषा जाननी होगी, सेवा का महत्व तथा मानव का मूल स्वभाव- जो देने का है- दान का है- उसे स्वीकार करना होगा- वह भी चेतन तथा अचेतन दोनों रूपों में। तभी हम एक सच्चे बैंकर बन सकते हैं तथा सच्ची व उत्कृष्ट ग्राहक सेवा प्रदान कर सकते हैं।

सेवा के परिप्रेक्ष्य में कुछ और भी बिंदु हैं जो विचारणीय हैं। सेवा की कुछ विशेषतायें हैं-

- **सेवा निस्वार्थ होती है-** सेवा से जुड़े कार्य या दायित्व में कर्ता का कोई स्वार्थ नहीं होता। सेवा सिर्फ दूसरे को संतुष्ट व आप्लावित करने के लिये की जाती है। अपने लिये कुछ नहीं- **मेरा मुझमें कुछ नहीं- जो कुछ है सो तोर।** यदि इसे बैंकर और ग्राहक के संबंधों के परिप्रेक्ष्य में विवेचित किया जाये तो बैंक के कारोबार का आधार ही ग्राहक है। बैंक जो कुछ भी नीतियां, योजनायें बनाता है- सब ग्राहक की समृद्धि व सुविधा को ध्यान में रखकर ही बनायी जाती हैं। बदले में इसका लाभ बैंक को तो मिलता है किंतु बैंकर को व्यक्तिगत रूप से कोई लाभ (सिवाय संतोष व आत्मतुष्टि के) नहीं मिलता। बैंकर का कोई स्वार्थ पूरा नहीं होता। इसीलिये सेवा और ग्राहक सेवा- दोनों की एक मुख्य विशेषता निस्वार्थता मानी गयी है।
- **सेवा में समर्पण होता है-** सेवक में संपूर्ण समर्पण की भावना होती है। सेवक अपने लक्ष्य की सुविधा, आराम तथा विकास के लिये पूरी तरह से समर्पित रहता है। आधे-अधूरे मन से की गयी सेवा, सेवा न होकर, अधूरा कार्य कहा जाता है। सेवक अपने लक्ष्य के प्रति तन, मन और धन से लगा रहता है तथा उसे तुष्ट और पुष्ट करने के लिये प्राणपण से लगा रहता है।
- **सेवा में दूसरे को सामाजिक, आर्थिक व मानसिक रूप से सुख देने का भाव होता है-** सेवक अपने लक्ष्य को हर तरह से सामाजिक तथा मानसिक रूप से सुख पहुंचाना चाहता है। शारीरिक सेवा के लिये स्थान पितृ-सेवा, मातृ-सेवा तथा गुरु-सेवा में है किंतु **बैंक में** केवल मानसिक व आर्थिक सेवा देने के लिये प्रतिबद्धता होती है। बैंकर अपने बैंकिंग दायित्वों के निर्वहन में इस प्रकार कार्य करता है कि उसके कार्यों से अंततः ग्राहक का भला होता है जिससे ग्राहकों को आर्थिक व मानसिक सुख प्राप्त होता है।
- **सेवा अशर्त होती है-** सेवा में कोई शर्त नहीं होती। बैंकर या कोई भी सेवक बिना किसी शर्त या अपेक्षा के ग्राहकों के लिये बैंकिंग नियमों, प्रावधानों तथा शक्तियों का उपयोग करता है।
- **सेवा एक अमूर्त भाव है जो सेवक की क्रियाओं से परिलक्षित होता है-** सेवा एक अमूर्त भाव है। फर्नीचर, शाखा परिसर, जनबल सभी मूर्त हैं और प्रतियोगिता में इन सभी मामलों में प्रतियोगी संस्थायें एक-दूसरे से बेहतर उपरोक्त उपादानों की व्यवस्था कर सकती हैं। किंतु सेवा एक अमूर्त भाव है जिसकी न तो प्रतिकृति बनायी जा सकती है, न ही इसकी नकल की जा सकती है। यह व्यवहारगत क्रिया है जिसमें कर्ता या सेवक अपने लक्ष्य के प्रति पूरी इमानदारी तथा सद्भावना से, हृदय की गहराई से कार्य करता है। सेवा की इसी अमूर्तता के कारण आज के प्रतिस्पर्धी बैंकिंग युग में आपसी प्रतिस्पर्धा का एक मुख्य घटक ग्राहक सेवा

ही रह गयी है। सभी बैंकों के पास अच्छे से अच्छा फर्नीचर हो सकता है, शाखा प्रदर्शन हो सकता है, जनबल की व्यवस्था भी हो सकती है किंतु वह जनबल, जिस बैंक का अधिक सक्षम, शिष्ट, विनम्र और अहंकार रहित तथा उच्च नैतिक गुणों से युक्त होगा, वही बैंक अंत में विजेता बनकर उभरेगा और ग्राहकों की पहली पसंद बन जायेगा।

- **सेवा निष्काम होती है, इसमें प्रतिदाय की इच्छा नहीं होती-** जिस प्रकार सेवा निःस्वार्थ होती है, उसी तरह से ग्राहक सेवा प्रदान करते समय बैंकर के मन में कोई इच्छा या फल की कामना भी नहीं होनी चाहिये। बैंकर का कोई अपना स्वार्थ हल नहीं होता और न ही ऐसा करने की उसकी कामना होनी चाहिये। ऐसी ग्राहक सेवा ही उत्कृष्ट ग्राहक सेवा हो सकती है। जिस सेवा के बदले में किसी प्रकार के प्रतिदान की भावना न हो वही ग्राहक-सेवा उत्कृष्ट व आप्लावित करने वाली होती है।
- **सेवा सर्वदा दोनों पक्षों के लिये हितकारी होती है-** उत्कृष्ट सेवा वह होती है जो लक्ष्य और कर्ता दोनों के हित में हो। चूंकि ग्राहक और बैंकर दोनों ही एक सामाजिक प्राणी हैं, एक ही प्रकार के समाज से संबंध रखते हैं तथा दोनों की आर्थिक, सामाजिक, मानसिक व आध्यात्मिक आवश्यकतायें एक जैसी होती हैं। अतः उत्कृष्ट ग्राहक सेवा वह होती है जिसमें दोनों का हित समान रूप से हो। वह कार्य जो एक पक्ष के लिये हितकारी होगा व स्वयमेव दूसरे पक्ष के लिये भी हितकारी और लाभदायक होगा। इसमें कुछ भी सायास करने की आवश्यकता नहीं है। ग्राहक के हित में किया गया निस्वार्थ और निष्काम कार्य अनायास ही बैंकर के स्वयं के हित में हो जायेगा। यह प्राकृतिक न्याय है।
- **सेवक सर्वदा स्वयं को तुच्छ तथा लक्ष्य को स्वामी और सर्वोच्च मानता है-** ग्राहक-सेवा या 'सेवा' दोनों ही में कर्ता स्वयं को गौण और लक्ष्य को या ग्राहक को सर्वोच्च मानता है। इसीलिये ग्राहक-सेवा प्रदान करते समय बैंकर को ग्राहक से संबंधित कार्यों को पहले निपटाना चाहिये और संस्थागत तथा स्वयं से संबंधित दैनंदिन कार्यों को बाद में करना चाहिये।
- **सेवा पारस्परिक संबंधों को सुदृढ़ बनाती है-** ग्राहक एवं उसके हितों को सर्वोपरि रखकर की गयी निष्काम, निस्वार्थ भाव से की गयी सेवा ग्राहक, बैंकर तथा बैंक के पारस्परिक संबंधों को मधुर व सुदृढ़ बनाती है। एक प्रथमागत ग्राहक, पुनरागत ग्राहक में तथा पुनरागत ग्राहक मित्र में, मित्र ग्राहक हमारा प्रशंसक तथा प्रशंसक ग्राहक हमारे अधिवक्ता के रूप में परिवर्तित होता जाता है। इस प्रकार संतोषजनक व उत्कृष्ट ग्राहक-सेवा संस्था, संस्था के कर्मचारियों तथा ग्राहकों के पारस्परिक संबंधों को निरंतर और बेहतर व मज़बूत बनाती हुयी आगे बढ़ती है।

- **सेवा का आधार विनम्रता तथा आस्था होते हैं-** सेवा या ग्राहक-सेवा दोनों का आधार कर्ता की विनम्रता तथा लक्ष्य के प्रति आस्था होते हैं। आस्था, विश्वास की अगली सीढ़ी होती है। जब हमारा विश्वास मज़बूत हो जाता है और हम अचेतनतया किसी पर विश्वास करने लगते हैं तो वह विश्वास हमारी आस्था में बदल जाता है। इस आस्था से विनम्रतापूर्वक प्रदान की गयी निष्काम और निस्वार्थ ग्राहक सेवा ही किसी भी बैंक की पूंजी है, जिसका कोई प्रतिस्पर्धी ही नहीं बन सकता। वह अपने आप में निरपेक्ष सत्य होती है।
- **सेवा में वाद-विवाद या आरोप-प्रत्यारोप के लिये कोई स्थान नहीं होता-** विनम्रतापूर्वक आस्था से प्रदान की गयी ग्राहक-सेवा में एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगाने की न तो कोई परिस्थिति होती है और न ही स्थान। जहां आस्था हो, वहां पूर्ण समर्पण भी होता है। जहां समर्पण होता है वहां कर्ता और लक्ष्य दो नहीं रह जाते। वे परस्पर एकरूप हो जाते हैं और तुम और मैं न होकर हम की स्थिति आ जाती है। **एकोऽहं द्वितीयोनास्ति** की उक्ति चरितार्थ करने वाली भावना और स्थिति न तो वाद-विवाद को जन्म दे सकती है, न ही कर्ता या लक्ष्य के बीच किसी भी प्रकार के मतभेद या संघर्ष की स्थिति ला सकती है। सीधे शब्दों में हम कह सकते हैं कि ग्राहक-सेवा देते समय जब बैंकर समानुभूतिपूर्वक खुद को ग्राहक के स्थान पर रखकर सोचता है तो ग्राहक के हित में बेहतर तरीके से सोच सकता है। तब ग्राहक कोई शिकायत नहीं करता। इसका कारण यह होता है कि ग्राहक और बैंकर एक ही समाज की इकाई होने के कारण एक समान आवश्यकताओं और परिस्थितियों के घटक होते हैं। इसलिये समानुभूतिपूर्वक की गयी ग्राहक सेवा शिकायतों से न केवल बचाती है बल्कि गुणवत्तापरक ग्राहक सेवा प्रदान करने में भी सहायक होती है।
- **सेवा में अहंकार के लिये स्थान नहीं होता-** अहंकार का प्रतीक रावण को माना गया है जो महाज्ञानी होने के बावजूद आज भारतीय वांड्गमय में नकारात्मक शक्ति का प्रतीक बन गया है। ग्राहक सेवा प्रदान करते समय बैंक द्वारा प्रत्यायोजित शक्तियों का प्रयोग बैंकर को जब अहंकारी बना देता है तो ग्राहक सेवा की सारी गुणवत्ता तिरोहित हो जाती है। इसलिये बैंकर को अहंकार से दूर ही रहना श्रेयस्कर रहता है।

उत्कृष्ट ग्राहक सेवा का स्वरूप :

- ✓ सर्वप्रथम ग्राहक-सेवा ग्राहक के लाभ से युक्त हो।
- ✓ बैंकर की भूमिका केवल कर्ता की नहीं बल्कि परामर्शदाता की भी होनी चाहिये। यह परामर्श ग्राहक को आर्थिक रूप से लाभान्वित करने वाला होना चाहिये।

- ✓ ग्राहक के साथ बैंकर के संबंध उत्कृष्ट मानवीय गुणों तथा उच्च नैतिक मूल्यों पर आधारित होने चाहियें।
- ✓ बैंकर, ग्राहक का न केवल परमार्शदाता बने बल्कि उसका पारिवारिक बैंकर भी बन जाये जैसे कि पारिवारिक डॉक्टर बन जाते हैं। पूरा परिवार एक ही डॉक्टर के पास जाता है क्योंकि उस पूरे परिवार को उस डॉक्टर पर विश्वास होता है। ठीक वैसी ही स्थिति ग्राहक बैंकर संबंधों में आनी अपेक्षित है।
- ✓ बैंकर द्वारा ग्राहक की न केवल वर्तमान आवश्यकताओं के बारे में बल्कि निकट व सुदूर भविष्य में उत्पन्न होने वाली आवश्यकताओं का भी ध्यान रखा जाना चाहिये तथा तदनुसार निधि प्रबंधन का परामर्श व सुझाव दिया जाना चाहिये।
- ✓ बैंकर अपने ग्राहक को मनोवैज्ञानिक स्तर से भी जाने तथा पहचाने। आर्थिक संबंधों के अतिरिक्त सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक संबंध बनाये जाने उचित होंगे।
- ✓ ग्राहक जिस व्यक्ति को पसंद करता है, उसी के उत्पाद को भी पसंद करता है। इसलिये यदि हम चाहते हैं कि ग्राहक हमारे उत्पादों, हमारी सेवाओं और योजनाओं का उपयोग करें, हमारे साथ संबंध बनायें तो सबसे अधिक ज़रूरत हम बैंकरों के व्यक्तित्व को परिष्कृत करने, उच्च मानवीय व सामाजिक मूल्यों से युक्त होने की है। यदि हमारा व्यक्तित्व ग्राहक को पसंद आयेगा तभी वह हमसे जुड़े बैंक व उस बैंक के उत्पादों को खरीदने में रुचि दिखायेगा। हमें ग्राहक की पहली पसंद बनना होगा। अपने व्यक्तित्व को सुंदर, आकर्षक व हितकारी व परोपकारी गुणों से युक्त करना होगा- ग्राहक अपने आप आकर्षित होंगे क्योंकि अच्छाई का कोई विकल्प ही नहीं हैं।

अंत में इतना ही कहना उपयुक्त होगा कि उत्कृष्ट ग्राहक सेवा उत्कृष्ट व्यक्तित्व का स्वामी ही प्रदान कर सकता है। जो वस्तु हमारे ही पास नहीं है, वह हम दूसरों को कैसे दे सकते हैं? इसलिये यदि हमसे यह अपेक्षा की जाती है कि हम ग्राहकों को **उत्कृष्ट ग्राहक सेवा** प्रदान करें तो हमें पहले अपने व्यक्तित्व का परिष्कार करना होगा।

प्रयुक्त शब्दावली

भारतीय वाङ्मय - Indian Spiritual Literature

14. छवि निर्माण - अपेक्षा और वास्तविकता का संग्राम

ये अपेक्षायें कहीं लिखित रूप में नहीं होतीं, न ही किसी अन्य प्रकार के औपचारिक रूपों में होती हैं किंतु ये उस ब्रांड द्वारा उपलब्ध करायी जा रही सुविधाओं या दिये जाने वाले उत्पादों के कारण ग्राहकों के मन में अपने आप उत्पन्न हो जाती हैं। इन अपेक्षाओं की उत्पत्ति में ब्रांड इमेज, ब्रांड प्रॉमिस तथा ब्रांड अवेयरनेस- सभी सम्मिलित रूप से जिम्मेदार होते हैं।

ग्राहक किसी भी कंपनी की छवि (ब्रांड) देखकर उससे जुड़ता है। **ब्रांड इमेज** या **छवि निर्माण** का तात्पर्य किसी संस्था के मार्का या छाप, जिसे आसान शब्दों में पहचान कह सकते हैं, से होता है। यह पहचान किसी रंग, रंग संयोजन, अभिकल्प, प्रतीक, संकेत या शब्द के रूप में हो सकती है। ब्रांड की शुरुआत पशुओं को गर्म लोहे से दागकर उन पर वैयक्तिक छाप बनाने से हुयी जिसका उद्देश्य दूसरे चरवाहों के पशुओं से अपने पशुओं को अलग-अलग करना था। तब से लेकर अब तक दागने की प्रथा भी चलती आ रही है किंतु अब कॉरपोरेट जगत में इस प्रथा ने अलग और विशेष अर्थ ले लिये हैं। आज के कॉरपोरेट जगत में ब्रांड इमेज अर्थात् छवि निर्माण पर संस्थायें भारी मात्रा में राशि खर्च करती हैं। ब्रांड से जुड़ी भाषा का अपने आप में अलग महत्व है। ब्रांड को अभिव्यक्त करने वाली भाषा संस्था के आंतरिक व बाहरी व्यक्तित्व, अपने ग्राहकों को दी जाने वाली सेवाओं और उत्पादों की गुणवत्ता, मात्रा, विश्वास तथा उद्देश्य व साथ ही साथ अपने नैतिक व सामाजिक उत्तरदायित्व को भी अभिव्यक्त करती है। यह भाषा संस्था से जुड़े सामाजिक, आध्यात्मिक तथा नैतिक मूल्यों व मानदंडों के अनुरूप भी होती है। ब्रांड से जुड़ी भाषा ब्रांड के भौगोलिक स्वरूप को ध्यान में रखकर भी प्रयुक्त होती है। उदाहरण के लिये वैश्विक ब्रांड से संबंधित भाषा विश्वभर के ग्राहकों की अपेक्षाओं व नैतिक व सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर प्रयोग की जाती है। दूसरी ओर देशीय या किसी देश या राज्य की भौगोलिक अवस्थिति वाले ब्रांडों से जुड़ी भाषा उसी सीमित ग्राहक संवर्ग को ध्यान में रखकर प्रयोग की जाती है।

बार-बार एक ही ब्रांड के उत्पाद या सेवायें खरीदते-खरीदते ग्राहक उस ब्रांड के

सबंध में एक तरह की आत्मीयता अनुभव करने लगता है। जब भी वह उस ब्रांड के प्रतीक, चिन्ह, रंग संयोजन या नारे अथवा नाम को देखता है तो उस ब्रांड तथा ब्रांड के उत्पादों/सेवाओं का संस्मरण उसे हो आता है। यही ब्रांड के संबंध में ग्राहक की जागरूकता है। ब्रांड से संबंधित सभी वस्तुयें ग्राहक के चेतन और अचेतन मन में संजोयी रहती हैं तथा समय पड़ने पर या ब्रांड से संबंधित किसी एक के प्रत्यक्षीकरण होने पर उन सभी के सहयोग से ब्रांड की पूरी छवि ग्राहक के मन में उभर आती है। ब्रांड के संबंध में उसका ग्राहक कितना जागरूक है- यह इसी बात से परिलक्षित होता है कि उस ब्रांड का ग्राहक ब्रांड से संबंधित लोगो, रंग, नाम या नारे में से किसी एक या सबको देखने पर उस ब्रांड के बारे में कितना और कितनी जल्दी याद कर पाता है! इसी जागरूकता हेतु कंपनियां/संस्थायें प्रचार, विज्ञापन पर भारी मात्रा में खर्च करती हैं।

ब्रांड इमेज से ग्राहकों के मन में कई तरह की अपेक्षायें जागती हैं। हर ब्रांड ग्राहकों से कुछ वायदे करता है तथा कुछ सेवायें, कुछ उत्पाद और अपने ग्राहकों के लिये एक विशेष प्रकार का विज़न रखता है। किसी ब्रांड के भूतपूर्व अस्तित्व तथा वर्तमान में उसकी ग्राहकों के लिये उपादेयता- दोनों मिलकर ब्रांड प्रॉमिस का निर्माण करती हैं। ब्रांड प्रॉमिस की जड़ें अतीत में तथा समय के साथ बनी उस ब्रांड की पहचान में होती हैं। यह प्रॉमिस गुणवत्ता, कार्यनिष्पादन, विश्वास या मज़बूती का हो सकता है। उदाहरण के लिये कुछ कंपनियां भारत में अपने विशेष सामानों के लिए जानी जाती हैं, आज भी हैं। मुझे एक महिला उपभोक्ता का किस्सा याद आता है। उस महिला ने बचपन से लेकर युवावस्था तक A कंपनी के जूतों का प्रयोग किया था, अब, जब वह नौकरी में आयी तो कुछ परिवर्तन के नज़रिये से उसने सस्ती चप्पलों को खरीदना शुरू किया। A कंपनी की हील वाली चप्पलें कम से कम 499 की आतीं और यहां तो 200 से 150 में ही काम चल रहा था, सो उसने दो-तीन जोड़े बड़ी खुशी से खरीदे। न केवल खरीदे बल्कि पूर्व में की गयी अपनी महंगी खरीददारी के लिये खुद को कोसा भी। लेकिन जब वह B कंपनी की चप्पल पहनकर दूसरे दिन दफ्तर गयी तो केवल जाने-जाने में ही उसके पैरों में असह्य दर्द होने लगा। हालत यहां तक पहुंच गयी कि दफ्तर से लौटते समय उसे रास्ते में रुककर दूसरी नयी चप्पल खरीदनी पड़ी। अंततः झुंझलाकर वह महिला फिर से A कंपनी की दुकान पर जा पहुंची। वहां उसे अपने नाप व आवश्यकता की एक ही डिज़ाईन वाली चप्पल मिल गयी। A कंपनी बहुत अधिक वेरायटी नहीं देती है। इसलिये उसने मज़बूरी में वही चप्पल खरीद ली और पहले वाली चप्पल को उतारकर दुकान पर ही A कंपनी वाली चप्पल को पहन भी लिया। जैसे ही A कंपनी की चप्पल पैरों में पहनी गयी, ऐसे लगा जैसे किसी ने अपने नर्म हाथों से पैरों को सहलाया हो, सारा दर्द गायब हो गया। उस महिला ने चैन की सांस ली। और कहा- A **कंपनी तो - भई वाह**! यह थी ब्रांड इमेज, जिसने उस महिला को फिर से कम्पनी के शोरूम तक जाने के लिये प्रेरित किया। उसका विश्वास था यह। इस विश्वास

के पीछे A कंपनी का 'ब्रांड प्रॉमिस' भी था जिसने वर्षों तक अपने ग्राहकों को अच्छी गुणवत्ता, वैज्ञानिक विधि से जूते-चप्पलों के निर्माण तथा आराम का वादा किया है। इस तरह से किसी ब्रांड का वादा एक ही दिन में मौखिक या लिखित रूप से किया गया वादा नहीं होता बल्कि इस 'ब्रांड प्रॉमिस' की जड़ें उस कंपनी के इतिहास व अतीत में ग्राहकों को प्रदान की गयी उत्कृष्ट ग्राहक सुविधा में होती हैं।

भारत में मज़बूती व स्वदेशी दोनों के लिये कोई ब्रांड जाना जाता है। जब मुंबई में 26 नवंबर 2008 को आतंकवादी हमले हुये थे और वहां का एक बड़ा होटल तबाह हुआ तो उस समय उक्त कंपनी की **कॉरपोरेट सोशल रिस्पांसिबिलिटी** के निर्वहन व कंपनी की सोच ने सबको अभिभूत कर दिया था। उसी समय यह किंवदंती भी सार्वजनिक रूप से प्रचलित हुयी थी कि यह होटल कंपनी द्वारा गेटवे ऑफ इंडिया पर स्वदेशी पहचान व गरिमा के रूप में अंग्रेज़ों के होटलों के समकक्ष बनवाया गया था। अंग्रेज़ों द्वारा प्रयुक्त होने वाले वाटसन होटल में एक प्रतिष्ठित भारतीय उद्योगपति को रहने के लिये जगह नहीं मिली थी। इसी से प्रेरित होकर, अपने देशवासियों की उपलब्धता के लिये उन्होंने वह होटल बनवाया था। इस किंवदंती के पीछे कितनी सच्चाई होगी- पता नहीं, लेकिन इसके पीछे कहने वाले के मन में उक्त कंपनी की देशभक्ति और भारतीयों तथा भारत से लगाव के प्रति कितना विश्वास है- वह साफ-साफ समझ में आता है। यह भी कंपनी का ब्रांड प्रॉमिस है। छोटी कारें जब बाज़ार में आयीं तो कुछ लोगों ने इसके छोटी होने, सस्ती होने के कारण इसके टिकाऊपन पर संशय जताया था, किंतु वह संशय काफूर हो गया था जब यह कहा गया था कि **अरे भई! कंपनी तो देखो।** इस संशय को दूर करने में भी कंपनियों के वर्षों से किये गये ब्रांड प्रॉमिस का हाथ ही था। इसी तरह से हर ब्रांड अपने ग्राहकों को कुछ वायदे करता है जो वह पूरे करता रहता है।

इन्हीं वायदों के कारण ग्राहक वर्ग की कुछ अपेक्षायें ब्रांड से जुड़ जाती हैं। ये अपेक्षायें कहीं लिखित रूप में नहीं होतीं, न ही किसी अन्य प्रकार के औपचारिक रूपों में होती हैं किंतु ये उस ब्रांड द्वारा उपलब्ध करायी जा रही सुविधाओं या दिये जाने वाले उत्पादों के कारण ग्राहकों के मन में अपने आप उत्पन्न हो जाती हैं। इन अपेक्षाओं की उत्पत्ति में **ब्रांड इमेज, ब्रांड प्रॉमिस तथा ब्रांड अवेयरनेस-** सभी सम्मिलित रूप से जिम्मेदार होते हैं। जो ब्रांड जितना अधिक ग्राहक वर्ग का प्रिय और विश्वासपात्र बनता जायेगा, उससे उतनी अधिक अपेक्षायें ग्राहकों की बढ़ती जायेंगी। उतना अधिक उत्तरदायित्व उस ब्रांड का अपने ग्राहकों के प्रति बढ़ता जायेगा। इसी उत्तरदायित्व के निर्वहन में जब कोई संस्था विफल हो जाती है तो ग्राहक असंतुष्ट हो जाते हैं तथा शिकायतों का जन्म होता है। कभी-कभी ऐसे भी दृष्टांत देखने को मिलते हैं जब बड़े ब्रांडों को अधिक ग्राहक असंतोष का सामना करना पड़ सकता है। इसका कारण उस ब्रांड द्वारा विगत समय में ग्राहकों का विश्वास जीतने के लिये दी गयी उत्कृष्ट ग्राहक सेवा तथा विश्वास होते हैं। जितना बड़ा

विश्वास ग्राहकों का होगा, उतना बड़ा ब्रांड का उत्तरदायित्व बढ़ता जाता है। इसलिये थोड़ी सी चूक बड़ी मात्रा में ग्राहक असंतोष का कारण बनती है। एक घटना में ग्राहक का एक टेलीकॉम कंपनी का इंटरनेट ब्राडबैंड कनेक्शन तथा फोन दोनों की सुविधा बिल का भुगतान न होने से बाधित हो गयी थी। वस्तुतः संबंधित ग्राहक द्वारा बिल का भुगतान ऑन लाइन किया गया था। भुगतान के पूरे होने पर ट्रांसैक्शन के सफल होने संबंधी संदेश न आ पाने के कारण उक्त ग्राहक ट्रांसैक्शन के असफल होने की बात जान नहीं सके और बिल के भुगतान को सफल माना। किंतु कंपनी को उक्त बिल का भुगतान न हो पाने के कारण ग्राहक को अनुस्मारक भेजा गया तथा साथ ही कंपनी के प्रतिनिधि को भी नकद भुगतान प्राप्त करने हेतु ग्राहक के निवास स्थान पर भेजा गया। ग्राहक ने नकद भुगतान कर दिया और रसीद प्राप्त कर ली। उसके बाद पुनः नियमित रूप से ग्राहक द्वारा ऑनलाईन भुगतान किया जाता रहा। तथापि ग्राहक के फोन कनेक्शन पर आउटगोईंग फोन कॉल की सुविधा बहाल नहीं हुयी। कंपनी के नुमाईंदों का कहना था कि कुछ दिनों तक सहयोग बनाये रखिये, हमारा सर्वर कुछ खराब है, इसलिये आप द्वारा की गयी पेमेंट उसमें अपडेट नहीं हो पा रही है। इस पर ग्राहक द्वारा आवेशपूर्ण ढंग से यह बात कही गयी कि हमें इससे क्या लेना-देना? यदि कंपनी का सर्वर रेस्पांड नहीं कर पा रहा है तो ग्राहक क्यों झेले? हम आगे से बिल का भुगतान नहीं करेंगे। आपकी तो ऐसी सर्विस न थी! अब ग्राहक द्वारा यह कहा जाना- अब कंपनी के नुमाईदों के लिये हर्ष और शोक दोनों का विषय होना चाहिये था। क्योंकि **आपकी सर्विस ऐसी तो न थी-** कहने का तात्पर्य यह था कि आपकी कंपनी अब तक बहुत अच्छी सर्विस देती रही है। किंतु इसका अर्थ यह भी था कि अब सर्विस बहुत बुरी हो गयी है और पहले से इसकी गुणवत्ता गिरी है! यह उक्त टेलीकॉम कंपनी का ब्रांड प्रॉमिस ही था जो ग्राहक की एक लाइन में निकला! ग्राहक इस कारण ज्यादा नाराज़ था कि उस जैसे ब्रांड की सर्विस ही तो उसकी मुख्य विशेषता थी, यदि वही नहीं है तो वह कंपनी अपने मूल स्वरूप की नहीं रही। इसलिये जितना बड़ा ब्रांड, उतनी बड़ी जिम्मेदारी। जितना अधिक विश्वास उतना अधिक उत्तरदायित्व, और उतनी ही अधिक ग्राहक अपेक्षायें।

बैंकों के मामले में निजी बैंकों से ग्राहक उतनी अपेक्षायें नहीं करते जितनी सार्वजनिक बैंकों से करते हैं। भारतीय आर्थिक जगत में इस समय सरकारी, विदेशी तथा निजी- सभी प्रकार के बैंक हैं। सभी अपना अपना कार्य अपनी-अपनी परिधियों में रहकर कर रहे हैं। किंतु ग्राहकों की अपेक्षायें जितनी सरकारी बैंकों से हैं, उतनी निजी क्षेत्र के या विदेशी बैंकों से बिल्कुल नहीं हैं। इसका कारण यह है कि निजी बैंकों के ऊपर सामाजिक उत्तरदायित्व अपेक्षाकृत बहुत कम है। किंतु सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों पर सरकारी, सामाजिक और आर्थिक दायित्व बहुत अधिक हैं। इसीलिये सरकार इन बैंकों पर विभिन्न प्रकार के वे उत्तरदायित्व, जो समाज को आर्थिक रूप से उन्नत बनायें, डाले जाते हैं। ये बैंक इन

सरकारी प्रावधानों से बंधे होते हैं। इसके कारण ही ग्राहक इन बैंकों को सरकार के हाथ के रूप में स्वीकार करते हैं, और अपेक्षा करते हैं कि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक हर हाल में उनको आर्थिक सहायता व संबल प्रदान करें। किंतु ग्राहक वर्ग यह भूल जाता है कि सरकारी बैंकों की भी अपनी सीमायें हैं। पर ग्राहकों को इससे कोई लेना-देना नहीं होता। उनके लिये बैंक का **लोगो** ही पूरा **बैंक** होता है। वह बैंक चूंकि सरकारी बैंक है, इसलिये सरकार से वित्तीय मामलों में जनता की जो अपेक्षायें हैं, उन सभी को सरकारी बैंक पूरा करने के लिये उत्तरदायी हैं- ऐसा ग्राहक वर्ग मानता है। जबकि सच्चाई इससे अलग है। बैंकों का अपना निदेशक मंडल होता है, उसमें प्रस्ताव रखे जाते हैं, और बहुमत से पास होने पर ही योजनाओं और प्रक्रियाओं का रूप लेकर वे समाज के नागरिकों तक पहुंचते हैं। ये जब ग्राहकों की अपेक्षाओं के अनुकूल नहीं होते तो ग्राहक असंतुष्ट होते हैं और शिकायत करने लगते हैं।

सरकारी बैंकों में भी सभी बैंकों से ग्राहकों की अपेक्षायें समान नहीं होतीं। जिस बैंक की छवि जैसी होती है, वैसी ही अपेक्षायें ग्राहकों की होती जाती हैं। ग्राहकों की अपेक्षाओं के बारे में कहा जाता है कि ये ठहरे हुये पानी की तरह होती हैं। जैसे इस पानी में कंकड़ मारने पर जलतरंगें फैलती जाती हैं, उसी प्रकार ग्राहकों की अपेक्षाये भी बढ़ती जाती हैं। यदि बैंक ग्राहकों की एक अपेक्षा पूरी करते हैं तो अगली अपेक्षा उस पुरानी वाली अपेक्षा से बढ़कर ही होगी। आज के प्रतिस्पर्धी युग में जो बैंक ग्राहकों की इन वर्धित आवश्यकताओं को पूरा कर सकेगा, वही अपनी ब्रांड इमेज और ग्राहक निष्ठा को अपने साथ बनाये रख सकेगा। जिन बैंकों ने अपने पास फिनेकल में भी हिंदी का प्रयोग का दावा किया है, उन बैकों से ग्राहकों की अपेक्षायें अवश्य हो सकती हैं कि वे ग्राहकों को पासबुक भी हिंदी में प्रिंट करके दें और डी डी भी हिंदी में बनाकर दें। जब बैंक ऐसा नहीं कर पायेंगे तो ग्राहक निराश होता है और इससे ब्रांड इमेज पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार अधिकांश बैंकों ने अपनी सभी शाखायें सी बी एस से जोड़ने का दावा किया है। सी बी एस से जो बैंक भी अपनी शत-प्रतिशत शाखाओं को जोड़ लेता है, उस बैंक से ग्राहकों की अपेक्षा यह होती है कि उस बैंक की किसी भी शाखा से वे अपना खाता संचालित कर सकते हैं, डी डी बनवा सकते हैं, निधियों का अंतरण कर सकते हैं, आदि-आदि। ये अपेक्षायें इसलिये उत्पन्न हुयी हैं क्योंकि बैंकों ने दावे ही ऐसे किये थे। किंतु जब इन सभी कार्यों के लिये बैंकों द्वारा ग्राहकों के खाते से प्रभार नामे किये जाते हैं तो ग्राहक असंतुष्ट हो उठता है और शिकायत करने लगता है कि उनसे अनावश्यक प्रभारों की वसूली की जा रही है। यही अंतर है वास्तविकता और अपेक्षा में। बैंकों में हुआ हर तकनीकी परिवर्तन ग्राहक के मन में उस बैंक की छवि को बेहतर बनाता है। ग्राहक यह सोचता है कि इस बार शाखा में जाकर उसका काम पहले की तुलना में जल्दी हो जायेगा। जब उसके काम में दोबारा भी उतना ही समय लगता है तब वह असंतुष्ट हो उठता है। यह क्या? कुछ भी तो

अंतर नहीं आया! किंतु ग्राहकों को यह भी बताया जाना चाहिये कि जो परिवर्तन हुआ है, उसका ग्राहक को क्या, कैसे और कितना लाभ मिलेगा? तब शायद ग्राहक की अपेक्षायें सीमित दायरे में रह सकें। हर बैंक अपने किसी छोटे से प्रयास को भी बढ़ा-चढ़ा कर ग्राहकों के सामने प्रचारित करता है। किंतु ग्राहकों को वास्तविक स्थिति मे ऐसा दिखायी नहीं देता। ग्राहक फिर असंतुष्ट! फिर एक नयी शिकायत या ग्राहक का बैंक को छोड़कर चले जाना! हर बैंक यह दावा करता है कि वह ग्राहक को तीन या पांच मिनट में डी डी बनाकर दे देगा। बहुत अच्छी बात। ग्राहक फिर से खुश होता है और शाखा में पहुंच जाता है 10 बजकर 15 मिनट पर। शाखा 10.30 बजे खुलती है और उस ग्राहक को 10.30 बजे अपने दफ्तर में भी पहुंचना है। चूंकि बैंक का दावा उसे याद है कि उसे 3 या 5 मिनट में डी डी बनकर मिल जायेगी। इसलिये उसकी यह अपेक्षा गलत तो नहीं। किंतु शाखा में वास्तविक स्थिति क्या दिखायी देती है उस ग्राहक को? उससे भी पहले 2 ग्राहक और लाइन में खड़े हैं...ठीक उसी तरह से 3 मिनट में डी डी बनवाकर ले जाने के लिये। अब यदि तीसरे ग्राहक को डी डी 10.45 पर डी डी बनकर मिली तो ग्राहक शिकायत करेगा कि वह शाखा में 10 बजकर 15 मिनट पर पहुंच गया था और उसे डी डी 10 बजकर 45 मिनट पर मिली जबकि बैंक का दावा है कि वह 5 मिनट में डी डी बनाकर देगा। इससे ग्राहक का बहुत नुकसान हुआ है। लिहाजा ग्राहक को इस नुकसान की भरपायी के रूप में रु. 10000 का हर्जाना बैंक द्वारा दिया जाना चाहिये। अब आप ही बताएं इसमें किसका दोष है? बैंकर का, जो ठीक समय से अपना काम कर रहा है या उन ग्राहकों का जो 10 बजकर 15 मिनट से ही लाइन में लगे हैं या फिर उन ग्राहकों के त्रुटिपूर्ण प्रत्यक्षीकरण का कि केवल वे एक ही होंगे इस प्रकार 5 मिनट में डी डी बनवाने की अपेक्षा रखने वाले।

इसलिये ग्राहकों की अपेक्षाओं व शाखा स्तर पर दी जाने वाली सुविधाओं में पर्याप्त अंतर होता है। ब्रांड प्रॉमिस भी गलत नहीं होता, किंतु मूल स्तर पर ग्राहकों की उपस्थिति, शाखा का समय, बैंकर के काम करने की गति, ग्राहकों द्वारा दिया जाने वाला मनोवैज्ञानिक तथा विधिक व प्रक्रियागत सहयोग तथा मूलभूत ढांचे से मिलने वाला आंतरिक सहयोग- सभी मिलकर ग्राहक की अपेक्षा व वास्तविकता के अंतर को कितना कम कर सकते हैं- इस बात पर निर्भर करती है शिकायतों की संख्या, गंभीरता तथा ग्राहक की संतुष्टि!

प्रयुक्त शब्दावली

छवि निर्माण	Brand Image
अभिकल्प	Design

15. सामाजिक प्रोफाइल के अनुसार ग्राहकों का वर्गीकरण

वैयक्तिक भिन्नता के कारण कई हो सकते हैं, जिनमें आनुवंशिकता, शारीरिक बनावट, पालन-पोषण का वातावरण तथा ग्राहकों के चेतन, अवचेतन तथा अचेतन मन के पूर्वाग्रह होते हैं।

ग्राहक केवल ग्राहक होता है, यह हम सब जानते हैं। तथापि आधुनिक युग में कई विवेचनायें हुयी हैं तथा ग्राहकों को विभिन्न प्रकार से परिभाषित और वर्गीकृत किया जाता रहा है। कई बार यह विवेचन और विश्लेषण उनकी कारोबारी आदतों की वजह से होता है तो कई बार उनके स्वभाव व वैयक्तिक गुणों के आधार पर। जिस प्रकार कोई दो व्यक्ति एक से नहीं होते, बिल्कुल यही बात ग्राहकों पर भी लागू होती है। ग्राहकों के व्यक्तित्व भी विभिन्न कारणों से अलग-अलग होते हैं। व्यक्तित्वों की भिन्नता के कारण उनसे बात करने, समझाने या कारोबार करने का ढंग भी अलग हो जाता है। अगर हम इस दृष्टिकोण को अपनी भाषा में कहें तो 'जैसी ढफली वैसा राग' वाली बात चरितार्थ होती है। तथापि यह कहना असंगत न होगा कि सभी ग्राहकों में कुछ विशेषतायें समान रूप से विद्यमान होती हैं जैसे-

1. उनकी कुछ विशिष्ट आवश्यकतायें होती हैं। (सभी ग्राहकों की कुछ विशिष्ट आवश्यकतायें समान रूप से होती हैं जैसे मौलिक आवश्यकतायें (रोटी, कपड़ा और मकान, शिक्षा एवं चिकित्सा), तार्किक आवश्यकतायें (स्थायित्व, आर्थिक तथा विश्वसनीयता संबंधी) तथा भाव संबंधी (आवेगी- प्यार, सौंदर्य, सुरक्षा, स्वीकार्यता तथा शक्ति संबंधी) आवश्यकतायें।
2. उनके पास आपके उत्पाद को खरीदने के लिये पर्याप्त धन होता है।
3. उनके पास निर्णायक क्षमता होती है।
4. वे आपकी सेवा या उत्पाद तक सरलता से पहुंचना चाहते हैं।

वैयक्तिक भिन्नता के कारण कई हो सकते हैं, जिनमें आनुवंशिकता, शारीरिक बनावट, पालन-पोषण का वातावरण तथा ग्राहकों के चेतन, अवचेतन तथा अचेतन मन के पूर्वाग्रह होते हैं। एक ही अनुभव दो ग्राहकों को अलग अलग-अनुभव देता है। इसका कारण भी उपरोक्त वर्णित घटक ही होते हैं। यदि हम ग्राहकों से कारोबार, संपर्क, भेंट

और चर्चा करते समय कुछ मूलभूत बातों का ध्यान रखें तो हमें बेहतर परिणाम मिल सकते हैं। ग्राहकों की बारंबारता के आधार पर निम्नलिखित वर्गीकरण किया गया है- बाहरी ग्राहक, सहयोगी ग्राहक, आंतरिक ग्राहक, नियमित ग्राहक, पुनरागत ग्राहक, रमता जोगी ग्राहक आदि।

बाहरी ग्राहक- वे कंपनियां या व्यक्ति, जो अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये धन के बदले हमारे उत्पाद या सेवायें खरीदते हैं। इन्हें खज़ाने का नाम भी दिया जा सकता है। हमारे लिये ये सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते हैं। इनसे बहुत ही संभलकर कारोबार करना चाहिये क्योंकि बाहरी ग्राहक वस्तु या सेवायें नहीं खरीदते बल्कि दूसरे प्रतिस्पर्धियों से उन उत्पादों और सेवाओं का **अंतर खरीदते हैं**। हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि ग्राहक अपना मत धन के माध्यम से देता है और शिकायत करने के लिये वह सायास चलकर शाखा में आता है। अर्थात् यदि हमारे उत्पाद या सेवायें ग्राहक को अच्छी लगती हैं तो वह उसे अपने धन के बदले में खरीदेगा। यदि धन आ रहा है, यानि कि सेवायें/उत्पाद बिक रहे हैं तो इसका तात्पर्य यह है कि ग्राहक खुश है। चाहे वह सामने आये या न आये। किंतु यदि उसे कोई शिकायत है तो वह सामने आ सकता है।

सहयोगी ग्राहक- इस प्रकार के ग्राहक हमारे उत्पादों और सेवाओं के वास्तविक प्रयोक्ता होते हैं। हालांकि प्रयोग करने या न करने का निर्णय ये स्वयं नहीं लेते किंतु खज़ाना वर्ग के घनिष्ठ होते हैं। इसलिये इनकी भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। ये हमारे अधिवक्ता के रूप में हमारे उत्पादों के प्रयोग के लिये खज़ाना वर्ग से सिफारिश कर सकते हैं। ये बहुत अधिक विवेचक होते हैं। शताधिक बार 'ना' कहने के बाद एक बार हां की उम्मीद इनसे होती है। चूंकि ये खज़ाना वर्ग को बहुत नज़दीक से प्रभावित करते हैं, जो हमारे लिये 'मनी बैग' की तरह होते हैं, इसलिये इनसे व्यवहार करते समय अत्यधिक सावधान रहना चाहिये। फिर भी, सहयोगी ग्राहक सूचनाओं का भंडार होते हैं। उनकी सूचनाओं और बुद्धि का यथाशक्ति लाभ उठाइये और खुद को प्रतिस्पर्धा में सबसे अव्वल दर्शाइये। यही अंतर आपका कारोबार बढ़ायेगा।

आंतरिक ग्राहक- ये आपके सहयोगी ही होते हैं, जो कार्यस्थल पर आपके कनिष्ठ, वरिष्ठ और समकक्षों के रूप में कार्य करते हैं। इनके माध्यम से ही आपकी छवि व सम्मान बाहर ग्राहकों के समक्ष उत्कृष्ट बन सकती है। इसलिये इन्हें अनदेखा न करिये बल्कि इनके साथ सम्मानपूर्वक, शिष्टतापूर्वक पेश आइये। दुर्भाग्य से, आंतरिक ग्राहक दोषारोपण की आदत का शिकार होते हैं जिनके कारण बाहरी ग्राहकों पर बहुत ही विपरीत प्रभाव पड़ता है, जो अंततः संस्था के कारोबार को प्रतिकूल तरीके से प्रभावित करता है। वास्तविकता तो यह है कि किसी भी संस्था को बाहरी ग्राहकों से कम नुकसान होता है और आंतरिक दोषारोपण की आदत, आपसी संघर्ष, अदक्षता, अशिष्टता और बुरी सेवा से अधिक नुकसान होता है। इसीलिये ग्राहक की समस्याओं के प्रति जागरूक रहें। आप

बाहरी ग्राहक के समक्ष अपनी संस्था के दूत के रूप में होते हैं। ग्राहक को दोषारोपण से मतलब नहीं होता उसे समस्या के निस्तारण से मतलब होता है। इसलिये सेवाओं की कमी या दुर्लभता के लिये अपने उत्तरदायित्व से बचने या किसी और के माथे मढ़ने का प्रयास न कीजिये। यह आप ही की छवि को सबसे पहले नुकसान पहुंचायेगा और बाद में संस्था के कारोबार को। याद रखिये- संस्था का कारोबार ही आपकी रोज़ी-रोटी है। इसका बढ़ना आपका घर चलाने के लिये बहुत ही ज़रूरी है। संस्था द्वारा ग्राहकों को उपलब्ध कराये जाने वाले उत्पादों/सेवाओं में कमी का अर्थ आपकी तनख्वाह में कमी है। इसे महसूस कीजिये। संक्षेप में, आंतरिक ग्राहक, बाहरी ग्राहक से अधिक नहीं तो समकक्ष महत्वपूर्ण तो है ही। एक और बात, आंतरिक ग्राहक के रूप में आपके दंपत्ति, परिजन तथा बच्चे भी हैं। उनको भी आपसे इसी सम्मान को पाने का अधिकार है।

नियमित ग्राहक- ये ग्राहक आपके लिये हीरे की तरह मूल्यवान हैं। आप अपने ग्राहकों को पहली बार दी जाने वाली सेवा में उत्कृष्टता भरकर सभी ग्राहकों को नियमित ग्राहकों में परिवर्तित कर सकते हैं। नये ग्राहक की तुलना में पुराने ग्राहक दस गुना सस्ते पड़ते हैं। निष्ठा उनसे निःशुल्क मिलती है। लाभ अधिक मिलता है। इस प्रकार के ग्राहक हमारी आय का स्थायी व अजस्र स्रोत हैं। इनसे वादे कम कीजिये और सेवायें अधिक दीजिये।

पुनरागत ग्राहक- ये वे ग्राहक होते हैं, जो पहले कभी आपसे सेवा ले गये थे और बीच में कहीं अन्यत्र कारोबार करने लगे थे। वस्तुतः ये अब भी आपसे क्षुब्ध हैं। बेहतर होगा यदि अपने अहं को दरकिनार करके आप उनसे संपर्क करके शिकायत का निस्तारण करें और उनके साथ कारोबारी संबंध दोबारा प्रारंभ करें। यदि इनकी समस्या का समाधान इनके ढंग से, संतोषजनक तरीके से कर दिया जाये तो सामान्यतया ये निष्ठावान ग्राहकों में परिवर्तित हो जाते हैं और आपके लिये आय का अच्छा व स्थायी साधन सिद्ध होते हैं।

रमता जोगी ग्राहक- इस प्रकार के ग्राहकों से आपको कुछ खास आय नहीं होती। इनका कोई विशेष प्रभाव आपकी आय पर तो नहीं पड़ता किंतु आप इन पर ध्यान देकर, इनके ज्ञान व आदतों का विश्लेषण करके अपनी ग्राहक समझ और अंतर्दृष्टि को अपेक्षाकृत विकसित कर सकते हैं, क्योंकि सूचना ही शक्ति है।

उपरोक्त विवेचन ग्राहकों की खरीद की आदतों के आधार पर किया गया है। अब यदि हम ग्राहकों के आंतरिक गुणों और विशेषताओं के आधार पर उनको जानने की कोशिश करें तो मोटे तौर पर निम्नलिखित वर्गों के ग्राहक सामने आते हैं-

सर्जक (creator) - इस प्रकार के ग्राहकों के अंदर सृजन की अपार क्षमतायें होती हैं और ये लेखक, कवि, पेंटर या डेकोरेटर आदि होते हैं। सृजन की अभिवृत्ति के कारण ही ये अपने सपनों की दुनिया में रहते हैं। इसलिये इनसे किसी भी विषय में बातचीत करना सरल नहीं होता क्योंकि इन्हें अपने सपनों की दुनिया से बाहर आना पसंद नहीं। इन सपनों को जारी रखने के लिये इनकी अपेक्षा यह होती है कि कोई अतिरिक्त प्रभार/

शुल्क लेकर भी इनके सामान्य/दैनिक काम निपटा दे ताकि ये अपनी दुनिया के सपनों और ख्यालों को जारी रखकर सृजन का आनंद ले सकें। इस प्रकार के ग्राहकों को हम यदि अपने विज्ञापन, सेवाओं का वर्णन लिखित रूप मे दें तो वे अधिक सुविधाजनक महसूस करते हैं क्योंकि उसे वे अपनी सुविधानुसार खाली समय में पढ़ सकते हैं। एक बैंकर के रूप में हमें इस प्रकार के ग्राहक अपेक्षाकृत अधिक लाभ देने वाले साबित होते हैं। इनसे कारोबारी व्यवहार करते समय इस बात पर ज़ोर दिया जाना बेहतर होगा कि आप कुछ सामान्य से अधिक प्रभार लेकर उनके सारे काम निपटा देंगे ताकि वे अपना सृजन संबंधी काम आराम से कर सकें। इसके लिये ये कोई भी कीमत देने को तैयार हो जायेंगे।

संप्रेषक (Communicator)- ये सामाजिक प्राणी होते हैं। वे खिलंदड़े, आनंदप्रिय, तात्कालिक होते हैं। वे ऊर्जावान, जोशीले होते हैं। ध्यान का केंद्र बनना पसंद करते हैं। वे सुंदर, चलायमान तथा लगातार साथ बने रहने वाले होते हैं। वे शीघ्र निर्णय लेते हैं। अपने विचार मज़बूती से रखते हैं। दैनिक रूटीन के कामों को नापसंद करते हैं। वे जल्दी-जल्दी, तेज़ी से तथा बार-बार बोलते हैं।

ये अमूमन बहुत बातूनी होते हैं और अत्यधिक ऊर्जावान होते हैं। इनके पास नये-नये विचारों की भरमार रहती है। ये अपने इर्द-गिर्द लोगों का जमावड़ा पसंद करते हैं और खुद को चाहा जाना, पसंद किया जाना पसंद करते हैं। इनसे व्यवहार करते समय आप बातचीत पर अपना नियंत्रण व नेतृत्व बनाये रखें। शक्तिशाली शब्दावली में प्रशंसा, मजा, आनंद, सुविधा, समस्यामुक्त, कम खर्चीला जैसे शब्द शामिल हैं। इनके पास प्रतिस्पर्धा में उतरने व उसके परिणामों के लिये दूरदृष्टि का अभाव होता है। निर्णय लेने में बहुत सक्षम नहीं होते। इन्हें सामान्यतया वाचाल, आवेगी, नाटकीय आदि विशेषणों से विभूषित किया जाता है। इन्हें दूसरों की सहायता करना अच्छा लगता है। ये विशुद्ध रूप से सामाजिक प्राणी होते हैं। इस श्रेणी के ग्राहक सूचनाओं के अच्छे वाहक होते हैं किस शाखा में कौन सा शाखा प्रबंधक आया है? उसका स्वभाव/व्यवहार कैसा है? बैंक के कौन से नये उत्पाद आये हैं? इन सबकी जानकारी इस प्रकार के ग्राहकों को रहती है। इन जानकारियों को वे बाकायदा समाज के दूसरे लोगों तक पहुंचाते भी रहते हैं वह भी निःशुल्क। इस प्रकार के ग्राहकों से हमें सूचना प्रसारण व विज्ञापन का लाभ मिल सकता है। इस श्रेणी के ग्राहकों को हम निःशुल्क प्रचार के उद्देश्य से प्रयोग कर सकते हैं। भले ही ये खुद हमारे उत्पाद खरीदें या न खरीदें, दूसरों के लिये हमारे उत्पादों की वकालत ज़रूर करेंगे।

सैनानायक (Commandor)- सैनिक श्रेणी के ग्राहक तेज़तर्रार, जल्दबाज़, त्वरित निर्णायक क्षमता वाले, परिणामोन्मुख प्रयासों वाले होते हैं। ये जानते हैं कि ये खुद क्या चाहते हैं, क्या कर रहे हैं तथा कैसे अपने लक्ष्य को पाना है? ये कामों को दक्षतापूर्वक पूरा करना चाहते हैं। वे अपने मूल लाभ के लिये व्यावहारिक दृष्टिकोण रखते हैं। इन्हें अकेले काम करना, दूसरों को निर्देशित करना अच्छा लगता है तथा संक्षिप्त संदर्भ सामग्री इन्हें भाती है। ये क्रियाशील, निर्णायक, समस्या समाधान में निपुण, निश्चयात्मक, अधिकारिक,

जोखिम उठाने वाले, प्रभावशाली, प्रतियोगी, चुनौतियों का सामना करने वाले, स्वतंत्र, प्रतिबद्ध होते हैं। अपने भीतर से ही ये स्वतः अभिप्रेरित रहते हैं। इन्हें उत्प्रेरक की संज्ञा भी दी जा सकती है। ये सीधी बात बोलते हैं, बिना किसी भूमिका और घुमाव के। उदाहरण के लिये यदि इस प्रकार के ग्राहक फोन कर रहे होते हैं तो फोन पर सीधे संदेश कहना शुरू कर देते हैं बजाय कि अभिवादन करने और हालचाल लेने के। संदेश के दौरान भी ये अत्यंत संक्षिप्त व स्पष्ट होते हैं। इन्हें बातचीत के दौरान बहुत लंबी-लंबी वार्ता नहीं भाती। यदि आप हठात् इनसे लंबी-लंबी वार्ता करेंगे भी तो इनका ध्यान अधिकतम 1 मिनट बाद दूसरी ओर चला जायेगा और आपका बोलना बेमानी हो जायेगा। इस प्रकार के ग्राहकों से बातचीत व कारोबार के दौरान संक्षिप्त, स्पष्ट और शीघ्र परिणामदायक प्रस्ताव रखे जाने चाहिये। इस प्रकार के ग्राहकों में त्वरित निर्णय लेने और उस निर्णय पर सख्ती से अमल करने की अभूतपूर्व क्षमता होती है। इनसे व्यवहार करते समय बैंकर के रूप में हमारी डील बहुत जल्दी सफल हो सकती है। पर इतना ध्यान रखा जाना चाहिये कि कारोबारी प्रक्रिया का परिणाम अतिशीघ्र बता दें और प्रक्रिया भले ही आप विस्तार से बाद में बतायें क्योंकि इन्हें परिणाम से अधिक लगाव होता है। परिणाम नहीं तो डील नहीं। इनके सामने अपने विचार इस प्रकार प्रस्तुत करें जो उनकी प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाले लगें। ईमानदारी से की गयी प्रशंसा चमत्कारी प्रभाव देने वाली होती है। शक्तिशाली शब्दावली जैसे उत्कृष्ट, सर्वोत्तम, सर्वोच्च, सर्वाधिक, एकमात्र, त्वरित, धन, प्रथम आदि का प्रयोग लाभकारी और प्रभावशाली होगा।

पोषक (Carer)- ये सामाजिक प्राणी होते हैं। सहयोगी तथा दूसरों द्वारा पसंद व स्वीकार किये जाते हैं। वे कामों को आपसी सहयोग, समझदारी से पूरा करना चाहते हैं।

ग्राहकों का यह वर्ग संरक्षक किस्म का होता है। दूसरों की समस्याओं व लाभ का अधिकाधिक ध्यान इन्हें रहता है। दूसरे परेशान न हों, इसके लिये ये खुद का काम रोक सकते हैं या नुकसान सह सकते हैं। पूछे जाने पर सही व उचित परामर्श देते हैं। इन पर हानि/लाभ के लिये पूर्णरूपेण भरोसा किया जा सकता है। ये मित्रवत, उदार, विचारशील, निष्ठावान, धीरज वाले, एकजुट होकर काम करने वाले, सहयोगी, समानुभूति रखने वाले, विश्वसनीय तथा दूसरों का अपने लिये विश्वास जीतने वाले होते हैं। इनसे कारोबार करते समय हम पूर्णतया निश्चिंत रह सकते हैं। एक बार हमसे कारोबार करने लग जाने के बाद अनायास ही ये दूसरे स्थान पर जाना पसंद नहीं करते। इसलिये इन्हें ग्राहक के रूप में अपने पास रोकने हेतु हमे अतिरिक्त प्रयासों की आवश्यकता नहीं होती। बस! इन्हें सेवायें लगातार बिना किसी चूक के मिलती रहें। ये ग्राहक बहुत शीघ्र ही हमारे क्लायंट और अधिवक्ता बन जाते हैं। इस कोटि के ग्राहकों के हिस्से में गलत निर्णयों की लंबी संख्या होती है। इसी कारण ये शकी तथा नये विचारों को स्वीकार करने में धीमे हो जाते हैं तथा हिचकिचाते भी हैं। इनको आप भरपूर समय दें, संबंधों को परिपक्व होने का

समय दें, उनका विश्वास जीतने के लिये जी-तोड़ परिश्रम करें। आपकी बातों से उनको लाभ होगा- ऐसा विश्वास दिलाने के लिये अपनी बात के पक्ष में पर्याप्त साक्ष्य तथा गारंटियां रखें। इनको प्रभावित करने वाले शक्तिशाली और प्रभावशाली शब्द हैं- सुरक्षा, गारंटी, संरक्षा, विश्वसनीयता, लोकप्रिय, जांचा और परखा हुआ, प्रमाणित आदि।

संगणक (Calculator)- इस श्रेणी के ग्राहकों को पुरातन पंथी या मक्खीचूस आदि विशेषणों से नवाज़ा जाता है। किंतु ये सैनिक श्रेणी के ग्राहकों की तरह आत्मनिर्भर होते हैं। ये नियंत्रित, आज्ञाकारी, संक्षिप्त, अनुशासित, विवेकशील, सजग, कूटनीतिज्ञ, सुव्यवस्थित तथा परंपरागत होते हैं। इस प्रकार के ग्राहकों को किसी भी निर्णय पर पहुंचने के लिये तथ्यों और आंकड़ों की आवश्यकता होती है। ये प्रमाण रूप में साक्ष्य चाहते हैं। केवल बातों से इन्हें नहीं समझाया जा सकता। इनसे चर्चा करते समय अपनी बात की पुष्टि के लिये जितने हो सकें, दस्तावेज़ी साक्ष्य रखिये और तार्किक रूप से इन्हें विश्लेषण करके समझाइये। इनके साथ सर्जक या संप्रेषक वाला दृष्टिकोण फलीभूत नहीं होगा। ये स्वयं भी सुव्यवस्थित व संगठित होते हैं तथा सामने वाले से भी अपेक्षा करते हैं कि वह उनसे उसी तरह का व्यवहार दर्शाये। इनसे चर्चा करते समय हड़बड़ न करें। इस प्रकार के ग्राहक को पर्याप्त सोचने-समझने का मौका दें। यदि आपका सुझाव काम कर गया और उन्हें सही लगा तो वे खुद आपके पास आयेंगे। बहुत प्रकार का लंबी-लंबी संगणनायें अच्छा परिणाम देंगी। सबसे ज़रूरी- इस किस्म के ग्राहकों को कभी भी भ्रमित करने की कोशिश न करें- तुरंत आप पकड़े जायेंगे। इनकी शक्तिशाली शब्दावली में प्रमाण, साक्ष्य, तथ्य, ब्यौरे, शोध, तर्क, जांचा-परखा, कारण आदि शब्द शामिल हैं।

अपने सोचने-समझने और अलग-अलग किस्म के दृष्टिकोणों के आधार पर ग्राहकों की निम्नलिखित श्रेणियां बनायी गयी हैं-

पूर्वाभासी- इस श्रेणी के लोग किसी भी निर्णय के लिये अपने पूर्वाभासों का उपयोग करते हैं। संभावनाओं पर इनके निर्णय आधारित होते हैं, बहुत अधिक विवरण ये नहीं चाहते, किसी भी विचार या तथ्य का बड़ा स्वरूप ही देखा करते हैं।

चिंतक- ये विश्लेषक प्रवृत्ति वाले, संक्षिप्त और तार्किक होते हैं। वे सूचनाओं को विस्तृत रूप से एकत्र करते और समझते हैं, इस दौरान परिस्थितिजन्य भावों और संवेगों को अनदेखा कर देते हैं। इसलिये इनके निर्णय व कार्यवाहियां कभी-कभी अत्यंत कठोर और अप्रिय हो जाती हैं।

आभासी- ये वस्तुओं और परिस्थितियों को उनके वास्तविक स्वरूप में देखना और समझना पसंद करते हैं। तथ्यों का ये आदर करते हैं, इनके पास किसी मुद्दे से संबंधित विस्तृत ब्यौरे होते हैं। इनसे गलतियां न के बराबर होती हैं।

अनुभवी- दूसरों की भावनाओं का इन्हें ख्याल रहता है। वे बौद्धिक विश्लेषण को पसंद नहीं करते और अपनी पसंद या नापसंद के अनुसार काम करते हैं।

नया वर्गीकरण

सर्वज्ञानी- ये सर्वज्ञानी होने का दंभ करते हैं। कभी-कभी इसी दंभ की वजह से जिद्दी और अड़ियल भी हो जाते हैं। जब भी वे कोई गलती करते हैं तो उसका दोषारोपण किसी दूसरे पर डाल देते हैं।

निष्क्रिय- ये संघर्ष या भिड़ंत को टाला करते हैं। जब भी इस कोटि के ग्राहक संघर्षपूर्ण स्थिति से घिर जाते हैं तो वे किसी प्रकार का वचन नहीं देते और हर बात से सहमत से होते हुये नज़र आते हैं। अमूमन ये अपने विचार स्पष्ट रूप से सामने नहीं रखते और अपनी भावनाओं को भी परिलक्षित नहीं होने देते।

हां जी-हां जी- ये हर बात में हामी भर देते हैं। यहां तक कि चांद के पार जाने और तारे तोड़ लाने का वादा भी कर डालते हैं। जब भी अपनी किसी ऐसी गलती के लिये ग्राहक क्षमा मांगते नज़र आयें जो उन्होंने नहीं की है, तो आप आसानी से समझ सकते हैं कि आप **हां जी साहब** से बात कर रहे हैं।

नां जी-नां जी- ये नकारात्मक किस्म के होते हैं, निराशावादी भी। वे हर बात का नकारात्मक और असफल का पहलू देखते हैं बजाय उज्ज्वल पक्ष के। परिवर्तन के प्रति दुराग्रही होने के कारण किसी भी पूरे होते काम को ठंडे बस्ते में डाल देते हैं।

शिकायती- इन्हें हर बात में कुछ न कुछ शिकायत करने योग्य मिल ही जाता है जैसे तुमने नहीं तो तुम्हारी मां ने, तुम्हारी मां ने नहीं तो तुम्हारी नानी ने मुझे गाली दी थी, वगैरह-वगैरह। जहां वे एक ओर सही शिकायत भी करते हैं, वहीं दूसरी ओर प्रशंसा करना तथा स्थिति में कुछ भी अच्छाई ढूँढ पाना इनके लिये दुरूह कार्य हैं।

तानाशाह- ये हिटलर की प्रवृत्ति के होते हैं। इनका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली और मज़बूत होता है और कभी-कभी ये अड़ ही जाते हैं। कभी-कभी ये अनजाने में ही दूसरों का अनादर कर बैठते हैं। अत्यधिक आलोचक हो जाते हैं और इनके साथ काम करना बड़ा कठिन हो जाता है।

इसके अतिरिक्त ग्राहकों के व्यवहार प्रदर्शन के आधार पर भी उन्हें वर्गीकृत किया जा सकता है। जैसे आक्रामक, सुव्यवस्थित, आवेगी, सामाजिक, दंभी, मित्र, व्यापारी, नियंत्रित, आदेशक, संक्षिप्त, अनुशासित, डेलीब्रेट, सावधान, कूटनीतिज्ञ, सुव्यवस्थित, तार्किक, परंपरागत, उत्प्रेरक (ड्राईवर), कार्योन्मुख, निर्णायक, समस्या निस्तारक, सीधे, जोखिम उठाने वाले, जबर्दस्ती काम कराने वाले, प्रतियोगी, स्वतंत्र, प्रतिबद्ध, परिणामोन्मुख, मित्रवत, धैर्यवान, एकनिष्ठ, सहानुभूतिपूर्ण, समूह कार्यकर्ता, आश्वस्त, परिपक्व, समर्थक, स्थायी, उदार, समानुभूतियुक्त, विश्वासी, कन्जीनियल, मौखिक (बातूनी), अभिप्रेरक, जोशीले, सहमत कराने वाले, प्रभावशाली, सुंदर, आत्मविश्वासी, नीतिकार, आशावादी, चलायमान आदि।

प्रयुक्त शब्दावली

सहयोगी	cooperative
रमता जोगी ग्राहक	Random Customer
पुनरागत ग्राहक	Frequent customer
सर्जक	Creator customer
अभिव्यक्तक	Expressive/communicative customer
सैनिक ग्राहक	Soldier type of customer
संगणक ग्राहक	calculative customer
पोषक ग्राहक	Carer/amiable customer
पूर्वाभासी ग्राहक	Pre-assumptive customer
चिंतक ग्राहक	Worried customer
आभासी ग्राहक	Intutive customer
अनुभवी ग्राहक	Experienced customer
सर्वज्ञानी ग्राहक	All it knows customer
निष्क्रिय	Passive customer
हां जी हां जी	Yes man
नां जी नां जी	No man

16. ग्राहक सेवा में करणीय और अकरणीय

अधिकांशतया ऐसा ही होता है कि ग्राहक का क्रोध आपके किसी सहयोगी द्वारा दी गयी सेवा या उत्पाद में कमी के कारण होता है या फिर संस्था के प्रति। उस समय यह ध्यान आपके द्वारा रखा जाना चाहिये होगा कि ग्राहक आपमें पूरी संस्था को देख रहा है। वह क्रोध आपके लिये नहीं बल्कि संस्था के लिये है।

इस अध्याय में उन कारणों की चर्चा करना बेमानी और अनावश्यक होगा जिन कारणों से आज के कारोबारी युग में ग्राहक सेवा का महत्व बढ़ गया है क्योंकि आज का बैंकर ग्राहक की महत्ता को भली-भांति समझ चुका है। यह भी जानता और मानता है कि ग्राहक ही उसके कारोबार की धुरी है और लाभ तथा रोज़ी-रोटी का कारण भी। इसलिये उन बातों को न दोहराते हुये हम सीधे उन बिदुओं पर चर्चा करेंगे जो ग्राहक सेवा के परिप्रेक्ष्य में आवश्यक होते हैं और कभी प्रत्यक्ष या कभी परोक्ष रूप से बहुत अधिक प्रभावशाली हो जाते हैं। साथ ही यह चर्चा हम भारतीय संस्कृति और भारतीय ग्राहक की अपेक्षाओं को केंद्र में रखकर ही करेंगे।

जब संस्कृति की बात आती है तो बहुत अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है हमारा अपने ग्राहकों के साथ सुसंस्कृत तरीके से पेश आना। हमारा अपने ग्राहकों से जैसा व्यवहार होता है, वैसा ही परिणाम हमें उनके संबंधों से प्राप्त होता है। एक बात हमें गांठ बांध लेनी चाहिये कि सामने वाला ग्राहक हममें या किसी भी बैंकर में ही पूरे बैंक को देखता है। इसलिये हम जो भी करेंगे, वह बैंक की छवि को प्रभावित करेगा- अच्छा भी और बुरा भी। इसे ध्यान में रखना ज़रूरी है। इसके अतिरिक्त हमारी पोशाक, हमारा अभिवादन, संप्रेषण, पहली छवि, कारोबारी शिष्टाचार, हाथ मिलाने का ढंग, शारीरिक भाषा, इलेक्ट्रॉनिक संप्रेषण के समय शिष्टाचार, लोगों से मिलने-जुलने का ढंग, बैठकों में व्यावसायिक तौर-तरीके, मोबाईल फोन व टेलीफोन संबंधी शिष्टाचार, ग्राहकों के साथ भोजन व भोजन के दौरान कारोबारी वार्तालाप के तौर-तरीके, क्षमायाचना और धन्यवाद के तरीके- इन सभी का गहरा और देर तक रहने वाला प्रभाव हमारे ग्राहक और ग्राहक से मिलने वाले कारोबार

पर पड़ता है। इनमें से कुछ पर हम बिंदुवार चर्चा करेंगे।

ग्राहक से पहली मुलाकात और बातचीत के दौरान कुछ अहम मुद्दों का ध्यान रखा जाना ज़रूरी है-

ग्राहक से प्रथम भेंट करने जाते समय प्रथम प्रभाव- हमारी पहली भेंट में जो प्रभाव पड़ता है, उसकी महत्वपूर्ण भूमिका हमारे ग्राहक के साथ बाद के संबंधों में भी रहती है। यह प्रथम प्रभाव वैसा ही होगा जैसा कि उक्त कार्य में हमारी दक्षता होगी जो कार्य हम कर रहे हैं। इसके लिये कुछ स्वर्णिम नियम हैं-

- ✓ कृपया और धन्यवाद जैसे शब्द कभी भी प्रयोग की टकसाल से बाहर नहीं होते। इन्हें पुराना और परंपरागत समझने की भूल कदापि न कीजिये। सामान्य शिष्टाचार का निर्वाह ग्राहक द्वारा अपेक्षित होता है।
- ✓ ग्राहक से यदि आप भेंट करने जा रहे हों तो या समय पर, और बेहतर होगा यदि कुछ पहले ही गंतव्य तक पहुंचें। यह सुनिश्चित करना चाहिये कि उक्त ग्राहक, जिससे मिलने हम जा रहे हैं, उनके लिये अपनी उक्त दिवस की दिनचर्या में पर्याप्त अवधि नियत की हो। ताकि अगले कार्य के लिये प्रस्थान की आपकी हड़बड़ी आपकी पूरी भेंटवार्ता को प्रभावहीन या परिणामविहीन न बना दे। ग्राहक को अपने लिये समय की कमी नहीं लगनी चाहिये।
- ✓ आपकी पोशाक सादगीपूर्ण, आरामदेह, भद्र किंतु व्यवसायिक हो। विवाह समारोहों जैसी पोशाक कारोबारी भेंट वार्ता या बैठकों में वर्जित है।
- ✓ आप जिस संबंध में ग्राहक से मिलने जा रहे हैं, उस संबंध (कार्य या योजना या उत्पाद के बारे) में पूर्णरूपेण भिज्ञ होकर तैयारी के साथ जायें। **इस सबंध में मैं कुछ बता नहीं सकता** जैसे शब्द सुंदर या उपयुक्त नहीं लगते।
- ✓ व्यक्तियों और ग्राहकों को उनके नामों/उपनामों के साथ याद रखने की आदत विकसित करें। यह आपको स्वयं को आदर दिलवायेगा।
- ✓ सकारात्मक रवैया रखें, यह आपको नकारात्मक व आलोचक की तुलना में कहीं अधिक सम्मान दिलवायेगा।
- ✓ ग्राहक से बातचीत करते समय सदा उन्हें पूरे ध्यान से सुनें, उनको देने के लिये इससे अच्छा उपहार और कोई नहीं हो सकता।
- ✓ यदि ग्राहक आपको अपने साथी से मिलवाये तो उनके साथ सौम्यता, भद्रता, तत्परता, गर्मजोशी, ईमानदारी, दृढ़ता और खुले मन से हाथ

मिलायें। कभी भी अप्रिय, कठोर, और जकड़न भरे तरीके से हाथ न मिलायें।

- ✓ चाहे आप किसी ग्राहक से पहली बार मिल रहे हों या नियमित अंतराल पर, सदैव सीधे खड़े हों, मुस्कुराते रहें, घूरकर तो नहीं तथापि आंखों में देखकर बात करें, तत्परता से हाथ मिलायें व जहां आवश्यक हो, वहां अपना परिचय दें।
- ✓ ग्राहकों से बात करते समय उनकी संस्कृति का भी ध्यान रखें व तदनुसार अभिवादन व व्यवहार रखें।
- ✓ ग्राहक के चुप हो जाने के बाद ही आप बोलें। ऐसा करने से आपको अपेक्षाकृत अधिक धैर्यपूर्वक और पूरी तरह से सुना और सराहा जा सकेगा। बीच में ही टोकना और अपनी बात कहने लगना अभद्रता तथा रुक्षता का परिचायक है।
- ✓ बोलते समय शांत और सौम्य रहें तथा अपनी वाणी को स्पष्ट और आवाज़ को सुने जाने योग्य वातावरण के अनुसार ही ऊंचा रखें।
- ✓ ग्राहक से बातचीत करते समय स्वयं को उनके समक्ष पूरी तरह से मुखातिब रखें। ग्राहक की ओर आपकी कोणीय शारीरिक मुद्रा या झुकाव उनके प्रति आपका अनादर व नकारात्मक रुख ही उजागर करेगा।
- ✓ कारोबारी बैठकों या बातचीत करते समय धूम्रपान करना अशिष्टता का परिचायक है।
- ✓ ग्राहक का नाम व पता अपने रिकार्ड में सुव्यवस्थित तरीके से दर्ज करें और उसे दोहरायें।
- ✓ सदैव ग्राहक की सुविधा को महत्व दें। सामान्यतया कोई भी व्यक्ति अपने शरीर के चारों ओर 3 फुट के घेरे तक आरामदेह रहता है। ग्राहक से बात करते समय इस घेरे को तोड़ने की कोशिश न करें। ऐसा करके आप ग्राहक की सत्ता और अस्तित्व को चुनौती देते हुये से प्रतीत होंगे और ग्राहक बिना कारण ही आक्रामक हो उठेगा, क्योंकि अनधिकार सीमाओं में प्रवेश की अनुमति किसी को तब तक नहीं होती, जब तक कि आप अनौपचारिक रूप से घनिष्ठ न हो जायें। ग्राहक के शरीर के किसी हिस्से को छूने की कोशिश न करें। केवल हाथ मिलाते समय हाथ ही छूए जा सकते हैं अन्यथा अन्य सभी हरकतें हिमाकत ही समझी जाती हैं।
- ✓ ग्राहक के साथ वार्ता करते समय रुक्षता का परिचय न दें।

- ✓ उनकी अनुमति के बिना उनके प्रथम नाम से न पुकारें।
- ✓ फोन पर वार्ता करते समय ग्राहक से पूछकर ही होल्ड करवायें।
- ✓ ग्राहक से वार्ता करते समय यदि आपका सेल फोन बज जाता है तो उसे कृपया बंद कर दें और बाद में मिस कॉल या संदेश देखें। मोबाईल देखकर छोड़ भर देना गलत है।
- ✓ यदि ग्राहक आक्रोशित हो रहा हो, तो आप हर हाल में शांत रहें। हालांकि बहुत मुश्किल होता है जब ग्राहक आपके ऊपर चिल्ला रहा हो तब आप शांतचित रहें और व्यावसायिक रवैया अपनाते हुये अपने आवेगों और भावों को नियंत्रण में रख सकें, तब और भी जब आपका कोई दोष नहीं होता। तथापि आपके द्वारा ऐसा किया जाना निहायत आवश्यक है। अधिकांशतया ऐसा ही होता है कि ग्राहक का क्रोध आपके किसी सहयोगी द्वारा दी गयी सेवा या उत्पाद में कमी के कारण होता है या फिर संस्था के प्रति। उस समय यह ध्यान आपके द्वारा रखा जाना चाहिये होगा कि ग्राहक आपमें पूरी संस्था को देख रहा है। वह क्रोध आपके लिये नहीं बल्कि संस्था के लिये है। आक्रोशित ग्राहक को शांत करने के चार तरीके हैं- 1. क्षमा याचना करें। तब भी जब आपका दोष न हो। की गयी गलती के लिये यदि आप दोषी न होते हुये भी ज़िम्मेदारी लेते हैं तो इसका प्रभाव सकारात्मक होगा। क्षमा याचना करते समय आपके भाव, आपकी भाषा तथा शब्द, सभी से ऐसा ही ईमानदारी से दर्शित भी होना चाहिये। 2. क्रुद्ध ग्राहक से सहानुभूति व समानुभूति दर्शायें। ग्राहक को ऐसा लगना भी चाहिये कि आप उनकी भावनाओं और अपेक्षाओं को भली-भांति समझ रहे हैं। आपको ऐसा भी कहना चाहिये कि आप संस्था की ओर से प्रदान की गयी दोषपूर्ण सा या उत्पाद की वजह से हुयी परेशानी को महसूस कर सकते हैं। 3. स्थिति की जिम्मेदारी को स्वीकार करें। ग्राहक को इससे कोई सरोकार नहीं होता कि त्रुटि आप से हुयी या आपकी संस्था से। उसे तो परिणाम से मतलब होता है। इसलिये ऐसा कदापि न कहें कि आपने ऐसा नहीं किया। ऐसी स्थिति में सदैव यही कहना लाभप्रद होता है कि आप इसे स्वीकार करते हैं और इसके सुधार के लिये प्रयास करेंगे। 4. अंतिम रूप से निर्णय लें कि आप ग्राहक को हुयी परेशानी को किस प्रकार दूर करेंगे। उत्पाद को बदलेंगे या उनको हुयी हानि की भरपाई करेंगे। इस संबंध में ग्राहक को सूचित भी कराना अपेक्षित होगा। यदि आप त्रुटि दूर करने के अलावा कुछ बोनस, अतिरिक्त सेवा या लाभ दे सकें तो

यह आपके सामने दहाड़ने वाले शेर को भीगी बिल्ली में बदलने की क्षमता रखता है। इन चारों को याद रखने के लिये याद रखें- **क्षसजिका,** जिसमें क्ष- क्षमायाचना, स- सहानुभूति, जि- जिम्मेदारी तथा का- कार्यवाही।

- ✓ ग्राहक के साथ कभी भी बहसबाज़ी या प्रतिक्रियावादी न बनें। सुरक्षात्मक बनने के बजाय सकारात्मक बनें व समस्या के निस्तारण पर बल दें। ऐसा करते ही आपके विरोधी सहयोगी बन जायेंगे।
- ✓ **मुस्कुराते रहें।**
- ✓ इंटरनेट पर ईमेल संप्रेषण के समय भी कुछ बिंदुओं का ध्यान रखें-

- संक्षिप्त व स्पष्ट रहें। यदि आपका संदेश 100 शब्दों से अधिक हो तो विषय में बड़ा संदेश लिखना न भूलें।
- चूंकि ई मेल संदेश को प्रिंट और सेव भी किया जा सकता है, भूले से भी उसमें अश्लील, आपत्तिजनक या अपनी छवि की भद्रता को खंडित करने वाली भाषा का प्रयोग न करें।
- अंग्रेज़ी में लिखते समय पूरा संदेश कभी भी बड़े वर्णों (capital letters) में न लिखें। ऐसा करने से पाठक को पढ़ने में कठिनाई होती है और ऐसा प्रतीत होता है कि संदेश का प्रेषक पाठक पर चिल्ला रहा है। तथापि पूरे संदेश में एकाध पंक्ति को महत्वपूर्ण बनाने के उद्देश्य से ऐसा किया जा सकता है।
- जिस तहरीर को आप जनसामान्य में दर्शाना नहीं चाहते हों, उसे कभी भी ई मेल पर न भेजें। यदि आप कोई भावावेग या भावातिरेक वाला ई मेल भेजना चाह रहे हों तो उसे पहले स्वयं के ई मेल पते पर भेजें। एक-दो दिनों के बाद उसे खोलकर पढ़ें और महसूस करें कि आपको कैसा लगा? यदि तब भी आप इसे उचित मानते हों तो तब इसे भेजें।
- घृणित, घृणापूर्ण या घृणा को जन्म देने वाले संदेश कतई न भेजें और न ही इनका उत्तर दें। इन्हें इंटरनेट की भाषा में फ्लेमिंग मैसेज कहा जाता है।
- चेन लेटर्स को इंटरनेट पर भेजना मना होता है।
- विषय की तहरीर आपकी विषयवस्तु से मेल खाती हो।
- व्याकरण और वर्तनी की जांच कर लें।
- सामूहिक तथा (बेनामी) ई मेल न भेजें। ये प्रभावहीन हो जाते हैं।
- ई मेल पर गोपनीयता सुनिश्चित नहीं रहती। अतः हमेशा संदेश के नीचे अपना नाम लिखकर ही भेजें।

- अपने ग्राहक के संप्रेषण का सम्मान करें अर्थात् आपका ग्राहक संप्रेषण के जिस माध्यम से सूचना प्राप्त करना चाहे या आपसे बातचीत करना चाहे, आप उसी का प्रयोग करें। संप्रेषण के इन माध्यमों में ई मेल, टेलीफोन, मोबाईल, फैक्स, पत्र, वॉयस मेल आदि शामिल हैं। कोई ग्राहक ई मेल ही खोलते हैं तो कुछ को केवल टेलीफोन पर संदेश प्राप्त करना सुविधाजनक रहता है। कुछ को लिखित तहरीर की आवश्यकता होती है ताकि वे सुविधानुसार प्राप्त खाली समय मे उसे पढ़ सकें। कुछ ग्राहक अत्यधिक गतिशील रहने के कारण मोबाईल संदेश पसंद करते हैं। अतः ग्राहक के साथ सूचनाओं का आदान-प्रदान करते समय उनकी सुविधा का संप्रेषण माध्यम चुनना अत्यधिक ज़रूरी है अन्यथा प्रयास निरर्थक व निष्फल हो सकते हैं। ऐसा करना न केवल शिष्टाचार है बल्कि यह अच्छे कारोबार का प्रतीक भी है।
- टेलीफोन पर बात करते समय खुद पर ध्यान दें। अमूमन टेलीफोन ग्राहक से संपर्क करने का पहला साधन होता है। इसलिये टेलीफोन पर बात करते समय शिष्ट रहें, घंटी बजने पर तत्काल रिसीवर उठायें, यदि होल्ड करवाना हो तो उसकी अनुमति लें।

बैठकों में शिष्टाचार

- ❑ किसी भी सभागार में प्रवेश करने पर वहां पहले से उपस्थित प्रतिभागियों को संज्ञान में लेना तथा उनका अभिवादन करना न भूलें।
- ❑ अपने मोबाईल फोन को पहले से ही वाईब्रेशन मोड पर लगा दें।
- ❑ यदि आप किसी अधिकारिक पद पर हैं और अपना मोबाईल वाईब्रेशन पर नहीं लगा सकते, तो बैठक के दौरान कॉल आने पर उत्तर देते समय इस बात का संप्रेषण अवश्य प्रेषित करें कि आपके लिये वह बैठक अत्यधिक महत्वपूर्ण है।
- ❑ अध्यक्षीय संबोधन को बीच में न टोकें। नोट करें ताकि आप अपनी बात अपनी बारी के समय कह सकें। लिखने की आदत डालें।
- ❑ बैठक में स्वयं बोलते समय संक्षिप्त, स्पष्ट व प्रासंगिक रहें।
- ❑ अपना दृष्टिकोण व विचार रखने में भयभीत न हों तथापि दूसरों के दृष्टिकोण व विचारों के प्रति पूर्ण आदर समर्पित करें।
- ❑ जब तक ऐसा कहा न जाये, बैठक की बातों को उनके सामने न दोहरायें जो उस बैठक में उपस्थित न रहे हों।
- ❑ सकारात्मक रहें।

प्रयुक्त शब्दावली

संप्रेषण	Communication
कारोबारी शिष्टाचार	Business etiquettes
व्यवसायिक	Professional
सकारात्मक रवैय्या	Positive Approach
उपनाम	Surname
क्षसजिका	ASRA(Appologise, Sympathies, Responsibility and Action)
तहरीर	Text

17. गलती का मनोविज्ञान

कई बार व्यक्तियों को- चाहे वे ग्राहक के रूप में हों या बैंकर के रूप में हों- गलती करने की आदत सी पड़ जाती है। कारण चाहे जो भी रहें, वे अपेक्षाओं से हटकर बार-बार एक ही गलती दोहराते हैं। इसका कारण उनके स्तर पर लापरवाही भी होती है।

गलती का शाब्दिक अर्थ है- भटकना, अर्थात् किसी निश्चित व निर्धारित लक्ष्य, प्रक्रिया, प्रणाली अथवा सोच या उद्देश्य से भटक जाना गलती है। गलती यह दर्शाती है कि हम कुछ नया कर रहे हैं। हम मानव ही हैं और किसी लक्ष्य के प्रति अग्रसर हैं। गलती यह भी दर्शाती है कि हम अपने कार्य के दौरान जोखिम ले रहे हैं। गलतियां मानसिक भटकाव और अधिगम की कमी- दोनों कारणों से हो सकती हैं जिनके विषय में हम आगे दोनों दृष्टिकोणों से विचार करेंगे। ज्ञान के माध्यम से हम अधिगम संबंधी गलतियों को सुधार सकते हैं। जैसे कोई खानसामा किसी रेसिपी में परिमाण से अधिक मात्रा में मसाले डाल देता है तो वो डिश खराब और अखाद्य हो जाती है किंतु इसके बाद उसे अंदाज हो जाता है और अगली बार वह निर्धारित मात्रा में मसाले डालकर उसी डिश को स्वादिष्ट बना लेता है। तात्पर्य यह कि अधिगम संबंधी तथा भौतिक गलतियों को अभ्यास, ज्ञान द्वारा परिमार्जित किया जा सकता है। किंतु कई बार कुछ गलतियां ऐसी होती हैं जो अनैच्छिक रूप से हो जाती हैं और हमें पता भी नहीं चलता। ये गलतियां महत्वपूर्ण होती हैं और हमारे व्यक्तित्व पर प्रभावकारी होती हैं। कई बार फोटोकापी करवाकर मूल दस्तावेज़ भूल जाना, पैसे देकर सामान उठाना भूल जाना भी इसी प्रकार की गलतियां हैं जो हम अक्सर बार-बार करते हैं। किंतु इन गलतियों का कारण अज्ञानता नहीं होती बल्कि इनका कारण हमारे ध्यान व चिंतन का भटक जाना होता है। हम जब अत्यधिक जल्दी में या अत्यधिक चिंता में होते हैं तो हमारा मस्तिष्क किसी एक बिंदु के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। उस समय जब हम दूसरे काम करते हैं तो हमारा मस्तिष्क हमारी कर्मेंद्रियों को आज्ञा तो देता है किंतु हमारा अचेतन और अवचेतन मन पुराने बिंदु पर ही केंद्रित रहता है। ऐसे में चेतनतया तो हम एक काम कर रहे होते हैं किंतु अचेतनतया किसी दूसरी उधेड़बुन में

उलझे होते हैं। फलस्वरूप कुछ का कुछ करने लगते हैं। न तो हम अचेतन केंद्र के साथ पूरा न्याय कर पाते हैं और न ही हम चेतनतया किये जाने वाले कार्य को पूरी दक्षता और सफलता से कर पाते हैं। यहीं गलती होती है। कभी-कभी दोनों कार्यों और सोच का मिश्रण भी हो जाता है। जैसे यदि हम चाय बनाते समय अपने बच्चे के बारे में सोच रहे हैं तो कोई बड़ी बात नहीं कि चीनी और चायपत्ती के स्थान पर बच्चे का नाम बोलने लगें। इसी तरह कई बार हम न चाहते हुये भी कुछ मुंह से ऐसा उच्चारण कर जाते हैं जिसके बारे में हमें बाद में कहना पड़ता है कि नहीं मेरा मतलब ऐसा न था या मैं ऐसा नहीं कहना चाहता था। इसे अंग्रेज़ी में **स्लिप ऑफ टंग** या **फ्रायडियन स्लिप** कहते हैं। इसके बारे में सबसे पहले फ्रायड (असामान्य मनविज्ञान के जनक) ने उल्लेख किया था इसलिये इसे फ्रायडियन स्लिप कहते हैं। उनके अनुसार, हम बोलने में, उच्चारण में जो गलतियां करते हैं, वे अनजाने में नहीं होतीं बल्कि उसका गूढ़ अर्थ होता है। सच वही होता है कि हम जो गलती से उच्चरित कर रहे होते हैं। हमारे अचेतन मन में वही विश्वास, आस्था का रूप ले चुका होता है इसलिये हमारी ज़बान से हमारे न चाहते हुये भी गलती से ही सही, पर वही निकलता है, किंतु हमारा चेतन मन और ईगो उसे बाहर आने से रोकते हैं। इसी संघर्ष में कभी -कभी गलती होती है। फ्रायड के अनुसार कोई भी गलती अप्रासंगिक नहीं होती। वह सच्चाई होती है। लेकिन इस सिद्धांत के अपवाद भी हैं। हर बार यह सच नहीं भी होता क्योंकि मानवीय व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक अचेतन मन के अलावा और भी हैं जिनमें निम्नलिखित हैं-

शारीरिक कारण- इसमें थकान, भूख, नींद, बुरा स्वास्थ्य आदि कारण शामिल हैं जो हमें गलती करने पर मज़बूर करते हैं। भूखे, उनींदे, थके हुये ग्राहक के बैंकर से झगड़ा करने की संभावनायें एक शांत, स्वस्थ और भरपूर नींद लिये हुये तरो-ताज़गी से भरपूर ग्राहक की तुलना में कई गुना बढ़ जाती हैं। इस प्रकार के ग्राहकों के आक्रामक व्यवहार पर बैंकर द्वारा प्रतिक्रिया देनी कतई उचित नहीं होगी क्योंकि ये कारक वे हैं जिनसे बैंकर भी उसी तरह से कुप्रभावित हो सकता है जैसे आज उनके सामने खड़ा ग्राहक हुआ है। जब कभी ग्राहक बहुत अधिक भावावेश में होता है तो वह हकलाने भी लगता है। ऐसा आवेश के कारण उसकी आक्रामक सोच तथा कर्मेंद्रियों में क्रियाशीलता के अंतर के कारण होता है। हमारे मस्तिष्क की गति अत्यधिक और असीमित होती है जबकि कर्मेंद्रियों की गति सीमित होती है। हकलाते हुये ग्राहक का मज़ाक बनाना बैंकर को भारी पड़ सकता है, क्योंकि वह पहले से भावावेश में है। आग में घी डालना बैंकर के लिये उचित नहीं होगा। इससे स्थिति और बिगड़ सकती है।

भावनात्मक कारण- चिंता, जीवन में होने वाली घटनायें, आत्मविश्वास, अभिप्रेरणा, व्यक्तित्व आदि गलती को प्रभावित करते हैं। अधिक आत्मविश्वास वाला ग्राहक और बैंकर दोनों ही कम गलतियां करेंगे, जीवन में घटी घटनायें भी व्यक्तित्व को महत्वपूर्ण रूप

से प्रभावित करती हैं। जिन व्यक्तियों को 1 वर्ष से 3 वर्ष की अवस्था में, जब उसकी आनंद की शक्ति विसर्जन तंत्र (मल-मूत्र विसर्जन) में केंद्रित रहती है और उसे मल-मूत्र विसर्जन से संबंधित सामाजिक प्रथाओं और अपेक्षाओं का प्रशिक्षण दिया जाता है, में प्रशिक्षण के दौरान प्रताड़ित, शर्मसार, निंदित या सामाजिक रूप से बहिष्कृत किया जाता है, बड़ी बात नहीं वे बैंकर के साथ जिद्द करते रोने ही लगें। ऐसे ग्राहक जिद्दी, कठोर, रुक्ष तथा परपीड़क मनोवृत्ति के हो जाते हैं। इससे बैंकर द्वारा कतई यह नहीं समझा जाना चाहिये कि ग्राहक नाहक तमाशा कर रहा है। वस्तुतः उसके रोने या जिद्द करने का कारण उसके पूर्वाग्रह, पूर्वजीवन की अप्रिय संस्मृतियां, भावात्मक दुर्बलता आदि में से कुछ भी हो सकता है। इसलिये उसके रोने के या आक्रामकता के व्यवहार को वर्तमान व तात्कालिक छोटे से कारण से जोड़ना बुद्धिमता नहीं होगी। ऐसे में बैंकर को पूर्ण धैर्य से काम लेना होगा और ग्राहक के रोने के या आक्रामक व्यवहार को नज़रअंदाज़ करते हुये उसकी समस्या को बैंकिंग नियमों व प्रावधानों के अंतर्गत सुलझाने का प्रयास करना होगा। यदि स्वयं बैंकर ऐसा न कर सके तो मामले को निपटाने के लिये अपने किसी वरिष्ठ अधिकारी की सहायता ले सकता है।

संज्ञानात्मक कारण- व्याकरण संबंधी, उच्चारण संबंधी तथा शब्द भंडार संबंधी गलतियां भी हो सकती हैं जो ग्राहक के विभिन्न ज्ञानात्मक स्तर से संबंध रखती हैं। इस प्रकार की गलतियों से आप उसकी शिक्षा-दीक्षा या परवरिश का अंदाज़ लगा सकते हैं और तदनुसार उपचारात्मक व्यवहार कर सकते हैं।

हमारे पूर्वाग्रह भी हमारे व्यवहार को प्रभावित करते हैं। वस्तुतः पूर्वाग्रहों से हमारे मन में वर्तमान कार्य या व्यक्ति के प्रति पहले से ही किसी न किसी प्रकार की नकारात्मक या सकारात्मक अवधारणा बन जाती है और हम उसी चश्मे से उसे देखने लगते हैं। फलस्वरूप उसका वास्तविक स्वरूप तिरोहित हो जाता है और एक प्रकार का बनावटी व्यवहार, आचार-विचार प्रदर्शित व क्रियाशील होने लगता है। इसलिये पूर्वाग्रहयुक्त ग्राहक द्वारा गलती करने की संभावनायें बलवती होती हैं।

दूसरी बात यह भी है कि यदि किसी ग्राहक के मन में पहले से ही बैंकर के प्रति नकारात्मक छवि बनी हुयी है, चाहे वह किसी और बैंकर या बैंक से बनी हो, वह आपसे या उसके सामने बैठे उस बैंकर, जिसका उस पहले वाली घटना से कोई लेना-देना नहीं है, से भी टकराहट या उलझन उत्पन्न कर सकता है। इसका कारण आप नहीं बल्कि उसके पूर्वाग्रह और पूर्व के कटु अनुभव हैं जो उसके वर्तमान के व्यवहार को कुप्रभावित कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में यदि हम झगड़ा करते हुये, या चिड़चिड़ाते हुये ग्राहक को समझाने की कोशिश भी करेंगे तो भी वह मानेगा नहीं। इसका कारण यह है कि वह अपने पूर्वाग्रहों की गिरफ्त से बाहर नहीं आना चाहता। ऐसी स्थिति में बैंकर द्वारा यही उचित होगा कि वह ग्राहक को समझाने की कोशिश करे किंतु जोर-जबर्दस्ती से या अपना पक्ष रोपते हुये

नहीं। क्योंकि यहीं पर **'हठ का मनोविज्ञान'** भी ध्यान में रखा जाना उतना ही आवश्यक होगा जितना **'पूर्वाग्रहों का प्रभाव'**। हठ के कारण वह ग्राहक अपनी स्थिति को बेहतर साबित करने के लिये भरपूर बहस कर सकता है। हालांकि उसे वास्तविक या भौतिक रूप से कुछ हासिल होने वाला नहीं है। हो भी नहीं सकता क्योंकि हठ में किसी उपलब्धि का उद्देश्य नहीं होता केवल खुद को दूसरों से बेहतर साबित करना ही उद्देश्य होता है। ऐसे मे भी बहस करने का कोई औचित्य नहीं है अपनी ऊर्जा और समय दोनों को नाहक बर्बाद किया जाना श्रेयस्कर नहीं होगा। कई बार ग्राहक से मौखिक रूप से वाद-विवाद करने या अपना पक्ष स्पष्ट करने के बजाय, चुपचाप उसको अपने ढंग से काम करके दिखाना भी कारगर साबित होता है और बातचीत के गतिरोध को समाप्त करने मे सहायक सिद्ध होता है। काम पूरा हो जाने मात्र से ग्राहक के पूर्वाग्रह या दुराग्रह जो भी हों वो बैंकर के प्रति सकारात्मक होने लगते हैं। यही ग्राहक आपको अगली बार शाखा में आने पर ढूँढेगा।

तनाव- तनाव ऐसा कारण है जो हमारे द्वारा की गयी गलतियों में से लगभग 90 प्रतिशत गलतियों का कारण बनता है। तनाव से हमारी मानसिक और शारीरिक दोनों स्थितियों में अंतर पड़ता है। यह तनाव काम की नवीनता, दुरूहता, नापसंदगी, उक्त काम को निपटाने हेतु समय की कमी या अनिवार्यता, दोषपूर्ण या प्रतिकूल नीतियां, कार्यभार की अधिकता, कौशल की कमी, उपकरणों व यंत्रों की कमी के कारण हो सकता है। काम के वातावरण या मूलभूत ढांचे की कमी या अपर्याप्तता भी तनाव को जन्म दे सकते हैं। यदि तनाव दोनों पक्षों को है- अर्थात् ग्राहक भी तनाव में है और बैंकर भी तनाव में है- तो ऐसी स्थिति भी आ सकती है जब ग्राहक कुछ और अपेक्षा कर रहा हो और बैंकर कुछ और सुन-समझ रहा हो। फलस्वरूप अपेक्षा व परिणाम मे अंतर आ जायेगा। ग्राहक कुछ और कहना चाह रहा हो और बैंकर अपने पूर्वाग्रहों और तनाव के कारण या तो सुन न पा रहा हो, या कुछ दूसरा ही सुन पा रहा हो या समझ पा रहा हो। कई बार- बैंकर हो या ग्राहक- हम वही सुनते हैं जो हम सुनना चाहते हैं। और वही समझते हैं- जो हम समझना चाहते हैं। यह भी हमारे पूर्वाग्रहों और अचेतन मन की आस्था का परिणाम होते हैं। इस वजह से भी तनाव उत्पन्न होता है। हमारी अनैतिक इच्छायें कुछ और होती हैं और हमारी वास्तविक जगत की परिस्थितियां कुछ और अपेक्षायें दर्शाती हैं। यह संघर्ष तो लगातार चलता रहता है। चाहे बैंकर हो या ग्राहक। तथापि बैंकर को हर हाल में अपने तनाव पर काबू पाना ही होता है अन्यथा परिणाम शिकायतों, बुरी ग्राहक सेवा के रूप में तथा अंततः ब्रांड इमेज के लिये घातक साबित होते हैं, क्योंकि बैंकर ग्राहक के लिये पूरी संस्था की छवि होता है।

गलती करने की आदत- कई बार व्यक्तियों को, चाहे वे ग्राहक के रूप में हों या बैंकर के रूप में हों, गलती करने की आदत सी पड़ जाती है। कारण चाहे जो भी रहें, वे अपेक्षाओं से हटकर बार-बार एक ही गलती दोहराते हैं। इसका कारण उनके स्तर पर

लापरवाही भी होती है। उनके मन में यह धारणा भी होती है कि उनके द्वारा किये गये काम को या गलती को कोई दूसरा सुधारने के लिये उपलब्ध है। यह विश्वास और आशा भी कभी-कभी गलती करने का कारण बनते हैं। जहां कार्यालयों में किसी भी स्टाफ का वरिष्ठ अधिकारी उसके कार्य के लिये उत्तरदायी होता है, वहां इस प्रकार की गलतियां खूब होती हैं। इसके विपरीत यदि कर्ता स्वयं ही अपने कामों का उत्तरदायी होता है तो लापरवाही के कारण होने वाली गलतियां नगण्य होती हैं।

किसी भी हाल में बैंकर को गलती करने की आदत से बचना चाहिये। एक बार गलती करने की आदत विकसित हो जाने के बाद वह आदत न केवल कार्यालय, बल्कि घर, समाज व हर स्थान और हर काम में प्रदर्शित होती है और हमारे संपूर्ण व्यक्तित्व तथा कार्यप्रणाली को कुप्रभावित करती है।

हमें यह भी याद रखना चाहिये कि गलती- गलती से ही होती है। जानबूझकर की गयी चूक-गलती नहीं, अपराध की श्रेणी में आती है। इसलिये गलती चाहे बैंकर से हुयी हो या ग्राहक से- अनुभव होने पर और इसका संज्ञान होने पर इसके लिये क्षमायाचना करना और भविष्य में इसके न दोहराये जाने का आश्वासन देना शिष्टाचार भी होगा और नैतिकता भी।

मनोवैज्ञानिक भूमिका और कारणों को यदि थोड़ी देर के लिये छोड़ दें तो, भौतिक रूप से, गलती प्रयास का परिणाम भी होती है। गलती अधिगम की कमी से होती है। इस गलती के पीछे कोई मनोवैज्ञानिक कारण नहीं होते बल्कि यह अधिगम में कमी, कार्य की नवीनता, प्रयासों की अपूर्णता तथा कौशल में कमी का परिणाम होती है। गलती को हमेशा नकारात्मक रूप में देखा जाता है जबकि इनका अत्यंत सकारात्मक प्रभाव भी होता है। गलतियों से खेलना और उनसे सीखना बहुत आवश्यक है। तब भी जब इन गलतियों के लिये कोई कीमत भी देनी पड़े। कम से कम उस गलती को सुधारने या उनसे बचने का उपाय तो समझ में आ जाता है। थॉमस एडीसन ने बल्ब के सही फिलामेंट को ढूँढने से पहले लगभग 1500 तार बर्बाद किये थे। जब बल्ब बन गया तो उनके एक सहायक ने उनसे पूछा था कि अपनी 1500 गलतियों या यों कहें कि असफलताओं के बारे में वे कैसा अनुभव करते हैं? उनका उत्तर था कि वे मेरी गलतियां असफलतायें नहीं थीं, उनसे मैंने उन 1500 तारों के बारे में जाना है जो बल्ब बनाने में काम नहीं आतीं। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि गलती करना एक वैश्विक क्रिया है। शिशु से लेकर विद्वान तक गलतियां करते हैं और उन सभी में एक ही बात आम होती हैं कि वे नियत से हट जाते हैं। यदि नियत प्रक्रिया के अनुसार काम करें तो गलती हो ही न! गलतियां यह भी प्रदर्शित करती हैं कि आप कुछ अलग करने की कोशिश कर रहे हैं। चाहे हम गणित के सवाल लगा रहे हों या जीवन की उलझनों को सुलझा रहे हों, गलती हमेशा हमें अगली बार उसी परिस्थिति में बेहतर कार्यनिष्पादन और बेहतर समन्वय की ओर अग्रसर करती है। यह

असंभव है कि कोई भी व्यक्ति पहले प्रयास में ही पूर्णता और दक्षता का प्रदर्शन करे। यदि हम केवल उन्हीं कामों को करें जिन्हें हमने पहली बार में ही दक्षता से किया है तो फिर तैराकी, साईकिल चलाना, चलना जैसी क्रियायें, जिनमें काफी अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है, कभी नहीं सीख पाते। गलतियां हमें सुधार की ओर ले जाती हैं। गलती करते समय यदि आवश्यकता हो तो दूसरों की सहायता भी अवश्य ली जानी चाहिये। दूसरों की सहायता का आमंत्रण यह साबित नहीं करता कि आपने स्वयं को असफल मान लिया है बल्कि यह दूसरों के कौशल और अनुभव को देखने और उनसे सीखने का प्रयास होता है। इसलिये किसी भी कौशल या क्रिया को सीखने में दूसरों की सहायता खुले मन से लें। जीवन की सबसे बड़ी गलती- **गलती से डरना है।** गलतियों से दोस्ती कीजिये, उनसे डरिये या घबराइये नहीं। उनके प्रति आभारी होना चाहिये कि गलतियों ने हमें बहुत कुछ सिखाया है। इसलिये गलतियों से सीखिये और आनंदित होइये। जब हम गलतियों को करने के बाद उनसे कुछ सीखने का प्रयास करते हैं या इन गलतियों के प्रति सकारात्मक रवैया अपना लेते हैं तो हमारे आधिगम की प्रक्रिया में तेज़ी आती है और आनंद में भी वृद्धि होती है। गलती हो जाने पर अप्रिय और अनपेक्षित परिस्थितियों से सामना होना अनिवार्य है। फिर इससे कुछ सीखकर इसे बेहतर अनुभव के लायक क्यों न बनाया जाये? हम क्यों एक अप्रिय परिस्थिति या परिणाम के लिये रोते रहते हैं! हम यह क्यों नहीं सीखते कि वाह! इस गलती से इतना तो पता चला कि यह काम दोबारा नहीं होना चाहिये! यही हमारी सकारात्मक सोच गलती के प्रति होनी आवश्यक है। जब हम मुक्त मन से, बिना डरे गलती करते हैं तो परिणाम हमे सिखाने वाले होते हैं। गलतियों से प्यार करने की नहीं, सीखने की ज़रूरत होती है। सीखने से ये गलतियां हमारी सबसे बड़ी दोस्त और शिक्षक बन जाती हैं। अपनी गलतियों पर पर्दा डालने में अपनी ऊर्जा और समय नष्ट करना बेमानी है। बस! गलतियों को शिक्षक बनाईये और सीखते जाईये। आप पायेंगे कि गलतियों के प्रति आपका अपराधबोध कम हो रहा है और अपनी गलतियों को थोपने के लिये आप दूसरा कंधा भी नहीं ढूँढते। इससे आपके व्यक्तित्व में भी एक अद्‌भुत शक्ति का संचार होता है। जैसे-जैसे हम गलतियां करते जाते हैं, हम पूर्ण होते जाते हैं, हम कुछ नया सीखते जाते हैं। इसलिये जानबूझकर लापरवाही से नहीं बल्कि प्रयोग करके गलतियों से सीखना हमारी पूर्णता की राह है। ये हमारी सृजनशीलता और नवोन्मेषण का महत्वपूर्ण और अत्यंत कारगर उपकरण हैं। गलतियां हमारे लिये नये-नये अवसरों और उपायों के द्वार भी खोलती हैं। गलतियों से आंख चुराना इन सभी नये अवसरों से मुंह मोड़ना है। गलतियों के प्रति चेतावनी देना, गलतियां करने के प्रति धमकाना, उन्हें दोबारा न होने देने के लिये दबाव डालना- ये सारी क्रियायें गलतियों की संख्या व बारंबारता- दोनों में ही बढ़ोतरी करने की संभावनाओं को द्विगुणित कर देती हैं। इस दबाव के कारण कर्ता तनाव और दबाव में आ जाता है और फिर से उसी गलती को करता है जिसके प्रति उन्हें रोका

जाता है। यह मानवीय स्वभाव है कि हमें जिस काम के लिये रोका जाता है, वही गलती दोबारा हो जाती है। गलती होने पर उसकी सूचना देने से भी हम डरते हैं। हम गलती को अंजाम देने वाली परिस्थितियों से भी आंखें चुराते हैं। कुछ विद्वान तो यहां तक मानते हैं कि किसी भी कार्य संस्था में जो कर्मचारी गलतियां नहीं करते, उन्हें डांटा जाना चाहिये क्योंकि वे कुछ नया करने का प्रयास नहीं कर रहे होते हैं। जो लोग गलतियां कार्य के सामान्य प्रक्रिया के दौरान करते हैं, वे नवीनता उत्पन्न करते हैं और कम से कम उन गलतियों को दोहराते नहीं। जो व्यक्ति जितनी बार असफल होता है, इतना तो निश्चित है कि उसे उतने अनुभव का खजाना मिल चुका होता है। वह उतना ही सृजनात्मक होता जाता है। कोई भी वैज्ञानिक प्रयोग एक ही बार में सफल नहीं होता। कोई भी अन्वेषण एक ही बार की सोच का परिणाम नहीं होता। इसलिये गलतियों को असफलता का पर्याय मानना भारी भूल है। गलतियों के प्रति व्यक्तियों का और समाज का और सबसे पहले हमारा खुद का रवैया बदलना ज़रूरी है। जो काम आज तक दूसरे प्रचलित और सही तरीके से नहीं कर पाये, वही तो हमें नये, अप्रचलित और जिसे मूर्खता भरा कहा जा सकता है, उस तरीके से करना होगा, तभी कुछ नया सामने आ सकता है। इसके लिये गलतियां तो होंगी ही। इसलिये गलतियों से घबराना नहीं, उनको करने की हिम्मत करना और उनसे सीखने की क्षमता विकसित करना हमारी आदत बन जानी चाहिये।

अंत में, इतना कहना भी प्रासंगिक होगा कि दैनिक कार्य और व्यवहारों में इस प्रकार की भौतिक गलतियों के लिये यह दृष्टिकोण उचित है। किंतु साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि कुछ अवसर और परिस्थितियां जीवन में सिर्फ एक ही बार आती हैं और उस एक बार में हमसे कोई गलती या चूक नहीं होनी चाहिये। वहां हमारा सबसे अधिक सक्षम, उचित और दक्ष दृष्टिकोण, कौशल और प्रवृत्तियां दर्शित होनी आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य हैं। ऐसे अवसरों पर की गयी चूक गलती नहीं बल्कि अपराध बन जाती है जिसका कोई प्रायश्चित नहीं होता। हमें जीवन दोबारा उसे सुधारने का अवसर नहीं देता। इसलिये सतर्क और सजग भी रहिये।

18. बॉडी लैंग्वेज

बॉडी लैंग्वेज को समझना किसी पुस्तक को पढ़ने जैसा नहीं है। इसके लिये एक प्रकार की समझ और अंतर्दृष्टि विकसित करने की आवश्यकता होती है, जो निरंतर सूक्ष्म अभ्यास से विकसित हो सकती है। ...यह कोई फार्मूला नहीं है जिसे सभी परिस्थितियों में एक समान लागू या क्रियान्वित किया जा सके। इसलिये बॉडी लैंग्वेज की सभी क्रियाओं और संकेतों को अलग-अलग नहीं बल्कि संकेतकों के एक समूह के रूप मे उक्त परिस्थिति व वातावरण के सापेक्ष पढ़ा जाना समीचीन होगा।

बॉडी लैंग्वेज संप्रेषण का वह भाग है जिसमें शारीरिक भाव-भंगिमाओं, शारीरिक मुद्राओं के द्वारा सामने वाले के विचारों और कथनों को बिना कहे ही समझा जा सकता है। हम शब्दों से अधिक गैरभाषिक संप्रेषण के द्वारा कह पाते हैं। शोध इस तथ्य के साक्षी हैं कि हमारे संप्रेषण का अधिकांश भाग गैरभाषिक होता है। गैरभाषिक संप्रेषण की निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं-

- यह भावों और मनोवृत्तियों को बताता है।
- यह भाषिक (शाब्दिक) संप्रेषण को प्रतिस्थापित करता है, प्रभावशाली बनाता है या उसका विरोध भी करता है।
- गैरशाब्दिक संकेत सामान्यतया अस्पष्ट होते हैं।
- गैरशाब्दिक संकेत निरंतर होते हैं।
- ये संकेत अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय होते हैं।

बॉडी लैंग्वेज में हमारे चेहरे की भाव-भंगिमायें, चेष्टायें, आंखों का संपर्क तथा हमारी आवाज की तान और लहजा, हाथों की क्रियायें आदि शामिल हैं। बॉडी लैंग्वेज को समझने की क्षमता, घर तथा कार्यस्थल पर मानवीय संबंधों को स्थापित करने, प्रगाढ़ बनाने, स्वयं की बात को बेहतर तरीके से समझाने, चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों का सामना करने तथा ग्राहकों को समझने के लिये एक उपयोगी उपकरण है। जब हम दूसरों के संपर्क

में आते हैं तो हम निरंतर अनगिनत गैरशाब्दिक संकेतों को देते तथा प्रदान करते हैं। दूसरों के साथ संव्यवहार करने के दौरान हम किस तरह खड़े होते हैं, बैठते हैं, कितना ऊंचा या धीमा बोलते हैं, कितना दूर या पास खड़े होते हैं, कितना झुककर या सीधे खड़े होते हैं, ये सभी मिलकर स्पष्ट और प्रभावी संदेशों का प्रेषण करते हैं। हमारे सुनने, चलने, देखने तथा प्रतिक्रिया करने का ढंग सामने वाले को स्पष्टतया बता सकता है कि हम उस पर कितना ध्यान देते हैं? या कितने ध्यान से सामने वाले की बात सुन रहे हैं? हमारे गैरशाब्दिक संदेश या तो रुचि, विश्वास और संबंध बनाने की इच्छा दर्शाते हैं या अरुचि, अविश्वास और भ्रम की स्थिति उत्पन्न करते हैं। बॉडी लैंग्वेज हमारे बहुत से भावों को भी प्रदर्शित करती है जैसे मनोरंजन, अवज्ञा या अपमान, व्याकुलता, घबराहट, उत्तेजना, अपराधबोध, उपलब्धियों पर गर्व, राहत, संतोष, संवेदनात्मक आनंद तथा लज्जा आदि। बॉडी लैंग्वेज को समझना किसी पुस्तक को पढ़ने जैसा नहीं है। इसके लिये एक प्रकार की समझ और अंतर्दृष्टि विकसित करने की आवश्यकता होती है जो निरंतर सूक्ष्म अभ्यास से विकसित हो सकती है। बॉडी लैंग्वेज का अध्ययन करते समय किसी शारीरिक मुद्रा, भावभंगिमा या चेष्टा को संबंधित परिस्थितियों के सापेक्ष समझने की ज़रूरत होती है। यह कोई फार्मूला नहीं है जिसे सभी परिस्थितियों में एक समान लागू या क्रियान्वित किया जा सके। इसलिये बॉडी लैंग्वेज की सभी क्रियाओं और संकेतों को अलग-अलग नहीं बल्कि संकेतकों के एक समूह के रूप मे उक्त परिस्थिति व वातावरण के सापेक्ष पढ़ा जाना समीचीन होगा। बॉडी लैंग्वेज हमारे संप्रेषण पर निम्नलिखित प्रभाव डालती है-

पुनरावर्तन- यह हमारे शाब्दिक रूप से किये गये संप्रेषण को दोहराती है। हम जो बोल रहे होते हैं, उनमें बॉडी लैंग्वेज अनुकूलता दर्शा कर हमारे संदेश को और प्रभावी बनाती है।

विरोधाभास- बॉडी लैंग्वेज यदि हमारे शाब्दिक संप्रेषण के विरोधी भाव दर्शाती हो तो यह हमारे संदेश को कमजोर करती है और फलस्वरूप कथनी और सोच में अंतर आने लगता है। ऐसा संप्रेषण प्रापक तक अपने सही अर्थों में नहीं पहुंच पाता।

प्रतिस्थापन- यह हमारे द्वारा कही गयी बात को प्रतिस्थापित करती है। उदाहरण के लिये यदि हम मुंह से बोलने के बजाय आंखों से बोलें तो कभी-कभी सशक्त संदेश प्रेषण होता है।

पूरक- बाडी लैंग्वेज हमारे शाब्दिक संप्रेषण के पूरक के रूप में भी कार्य करती है। उच्चाधिकारियों तथा वरिष्ठों द्वारा कनिष्ठों की प्रशंसा के साथ उनकी पीठ ठोंका जाना पूरक बॉडी लैंग्वेज है।

उच्चारण का लहजा- जिस प्रकार शाब्दिक संप्रेषण को यदि टेबुलर रूप में प्रस्तुत किया जाये या रेखांकित कर दिया जाये तो वह अधिक प्रभावी हो जाता है, उसी प्रकार उच्चारण का लहजा हमारे मौखिक संप्रेषण को और अधिक प्रभावी बना देता है।

बॉडी लैंग्वेज हमारे संबंधों को स्थापित करने और उन्हें मज़बूत बनाने में अत्यधिक सहायक सिद्ध होता है। बॉडी लैंग्वेज के माध्यम से हम दूसरे व्यक्ति के भावों, अनकही बातों को बेहतर तरीके से समझ सकते हैं। हम बॉडी लैंग्वेज के माध्यम से अपने कथन के समर्थन में अनुकूल संकेतों के प्रेषण के द्वारा अपने व्यवहार में अधिक पारदर्शिता ला सकते हैं तथा दूसरे व्यक्ति के मन में अपने लिये विश्वास पैदा कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त हम अपनी बॉडी लैंग्वेज के द्वारा दूसरों को यह संदेश दे सकते हैं कि हम उन्हें ध्यानपूर्वक सुन समझ रहे हैं, उन पर ध्यान दे रहे हैं। कभी-कभी अचेतनतया हम अपने कथन के प्रतिकूल गैरशाब्दिक संदेश प्रेषित करते हैं जो हमारे संदेशों के अर्थ में प्रापक को भ्रम की स्थिति में ला देता है।

बॉडी लैंग्वेज में महत्वपूर्ण तथ्य

चेहरे की अभिव्यक्ति- मानवीय चेहरे को प्रकृति ने इस प्रकार बनाया है कि वह बिना एक भी शब्द कहे हज़ारों संदेशों का प्रसारण कर सकता है। कुछ अपवादों को छोड़कर, दुनिया भर में चेहरे की भाव-भंगिमाओं में कुछ विशेष अंतर नहीं होता। दुख, हंसी, क्रोध, खुशी, भय, घृणा आदि भाव अधिकतर एक ही तरीके से प्रदर्शित किये जाते हैं।

शारीरिक गतियां तथा मुद्रायें- कोई व्यक्ति अपने खड़े होने, झुकने, हिलने, बैठने, उठने, अपना सिर पकड़ने के ढंग से बहुत कुछ कह देता है। इस प्रकार के गैरशाब्दिक संप्रेषण में मुद्रायें, अवस्थिति तथा सूक्ष्म मुद्रायें शामिल हैं।

चेष्टायें- कुछ चेष्टायें हमारे दैनिक जीवन में ताने-बाने की तरह से गुंथी हुयी होती हैं। किंतु चेष्टाओं का सार्वभौमिक अर्थ नहीं निकाला जा सकता। इसका कारण पृथ्वी के विभिन्न भागों में वर्तमान सांस्कृतिक अंतर हैं। अतः चेष्टाओं की व्याख्या करते समय सांस्कृतिक प्रभावों को नज़रअंदाज़ नहीं करना चाहिये।

दृष्टि का मिलान- इसे साधारण बोलचाल की भाषा में नज़रें मिलाना भी कहते हैं। चूंकि दृष्टि मनुष्य के ज्ञानार्जन का प्रबल साधन है, अतः गैरशाब्दिक संप्रेषण में दृष्टि का महत्व अत्यधिक है। किसी व्यक्ति के देखने का ढंग अनुराग, रुचि, शत्रुता, संदेह, आकर्षण या विश्वास सभी कुछ कह देता है। साथ ही दृष्टि संपर्क बातचीत के प्रवाह को बनाये रखने व दूसरे व्यक्ति की प्रतिक्रिया को मापने का पैमाना भी होता है।

स्पर्श- हम स्पर्श के द्वारा भी बहुत कुछ बिना कहे ही कह देते हैं। मज़बूती से मिलाया गया हाथ, कंधे पर एक कातर थाप, प्रगाढ़ आलिंगन, पीठ थपथपाना, सर पर हाथ फेरना, दूसरे की बांह को कुछ अधिक दबाव के साथ पकड़ना या फिर किसी का हाथ धीरे से दबाना- इन सबके अपने अपने मायने हैं और बहुत स्पष्ट और विशिष्ट संदेश हैं।

अंतर- संप्रेषण का प्रेषक और प्रापक कितनी दूरी पर हैं, इसका भी अपना अर्थ होता है। यदि आप किसी सगे संबंधी से दूर रहकर बात करेंगे तो यह आपके संबंधों में

प्रगाढ़ता की कमी को दर्शायेगा। इसके विपरीत यदि आप किसी महिला ग्राहक के बहुत पास होकर बात करेंगे तो वह ग्राहक अत्यधिक असुविधा का अनुभव कर सकती है। सामीप्य या दूरी भी प्रेषक और प्रापक के मध्य शत्रुता, स्नेह, विश्वास या गोपनीयता दर्शा सकती है।

आवाज़- वक्ता की आवाज की ऊंचाई, लहजा, भाव, मात्रा, मोड़, लय-ताल आदि भी उसके शाब्दिक संप्रेषण को स्पष्ट करते हैं तथा प्रबल अर्थ देते हैं। श्रोता वक्ता की आवाज़ को सुनने के साथ ही पढ़ता भी है। ये गैरशाब्दिक ध्वनियां संप्रेषण में सूक्ष्म किंतु सशक्त संकेत जोड़ती हैं जैसे कटाक्ष, क्रोध, स्नेह, या आत्मविश्वास।

अतः यह महत्वपूर्ण नहीं कि आप क्या कहते हैं बल्कि यह अधिक महत्वपूर्ण है कि आप कैसे कहते हैं!

बॉडी लैंग्वेज की सफलता के लिये कुछ सुझाव-

- यदि आप तनाव से घिरे महसूस कर रहे हों (चाहे आप श्रोता हों या वक्ता), तो कुछ देर के लिये संप्रेषण से बाहर हो जायें। यदि ऐसी अवस्था में आप संप्रेषण जारी रखेंगे, तो गलत व भ्रामक शारीरिक संकेतों का प्रसारण करेंगे जो संप्रेषण के अर्थ व सौंदर्य दोनों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करेगा। अपनी शक्ति व ऊर्जा का संचय करें, अपने आत्मविश्वास को बढ़ायें तथा कुछ विश्राम करें, इसके बाद फिर नये सिरे से तरोताज़गी से संप्रेषण प्रारंभ करें। एक बार आपका भावात्मक संतुलन कायम हो जाने के बाद आप सुरक्षित हैं।
- संप्रेषण के दौरान दर्शित होने वाली असंगतियों पर ध्यान दें- संप्रेषण के दौरान वक्ता यदि असंगत संकेतों का प्रदर्शन और प्रसारण कर रहा हो तो इसका पूरा पूरा ध्यान दें। जैसे कोई मुंह से हां कह रहा हो और ना में सिर हिला रहा हो- यह स्थिति भ्रामक हो सकती है। इसलिये शाब्दिक और शारीरिक भाषा व संकेतों में पर्याप्त संगतता व अनुकूलन होना चाहिये। यदि आप वक्ता हों तो आप इस बात का विशेष ध्यान रखें कि आपका ग्राहक आपके इस भ्रामक संप्रेषण का शिकार न होने पाये। दूसरी ओर यदि आप श्रोता हैं तो ग्राहक द्वारा कही जा रही व दर्शित की जा रही शारीरिक भाषा के तारतम्य व अनुकूलता में संबंध स्थापित करके उसकी बात का अर्थ निकालें। यदि इस बीच कहीं भ्रम की स्थिति लगे तो ग्राहक की बात को दोहराते हुये उसकी अपेक्षा व अर्थ की पुष्टि की जा सकती है।
- बॉडी लैंग्वेज द्वारा दिये गये संकेतों को इकाई के रूप में नहीं बल्कि उक्त संप्रेषण के लिये एक समूह के रूप में देखें और तदनुसार विवेचना करें। इस समूह में दृष्टि का मिलान, चेहरे की अभिव्यक्तियां, आवाज़ की ऊंचाई व परिमाण, लहजा व तीव्रता तथा शारीरिक मुद्रायें सभी शामिल होंगी।

अपनी बॉडी लैंग्वेज को तौलिये और जानिये

- **दृष्टि का मिलान**- यदि आप वक्ता हैं तो सामने वाले से नज़रें मिलाकर बात कीजिये। यह आपकी बात को बलपूर्वक समझाने में सहायक होगा। नज़रें चुराने का अर्थ सच्चाई छुपाना या आत्मविश्वास की कमी दर्शा सकता है। यदि आप श्रोता हैं तो वक्ता की नज़रों से नज़रें मिलाकर सुनिये, वक्ता की आंखें उसके वक्तव्य को बेहतर व प्रबल तरीके से स्पष्ट कर रही होंगी।
- **भावाभिव्यक्तियां**- वक्ता व श्रोता के चेहरे की अभिव्यक्तियां शाब्दिक संप्रेषण को अर्थ प्रदान करती हैं। आपका चेहरा रुचि, अरुचि, ऊबाऊपन, भावशून्यता तो नहीं दर्शा रहा! इस अभ्यास के लिये दूसरों के चेहरे पढ़ने की आदत डालिये।
- **आवाज का लहज़ा**- क्या आपकी आवाज़ से गर्मजोशी, आत्मविश्वास, प्रसन्नता परिलक्षित होती हैं या आपकी आवाज तनावपूर्ण और खंडित है? दूसरों की आवाज को सुनने के साथ ही पढ़ने की कोशिश भी कीजिये।
- **शारीरिक मुद्रायें तथा चेष्टायें**- आपका शरीर अचल और तना हुआ है या शिथिल अथवा विश्राम की अवस्था में है! अपने जबड़ों और कंधों में तनाव की मात्रा को मापिये और जांचिये। साथ ही दूसरों में इनको जांचें तथा नोट करें।
- **स्पर्श**- याद रखिये कि क्या अच्छा है या बुरा है- यह सापेक्ष पद है। आप स्वयं को कितना स्पर्श किया जाना या दूसरे को स्पर्श करना कितना पसंद करते हैं? क्या अपनी तथा दूसरे व्यक्ति की पसंद को समझ पाते हैं?
- **प्रबलता**- आप या जिस व्यक्ति से आप संप्रेषण कर रहे हैं, वह शांत, भावहीन, अविचलित, ध्यान कहीं और अथवा अति नाटकीय है? तथापि इन सबका संबंध सामने वाले की पसंद से है न कि आपकी अपनी वरीयता से।
- **समय व गति**- आपके संप्रेषण की स्वीकृति मिलने में लगने वाला समय तथा अंतर भी प्रभावकारक होता है। यदि हमारे संप्रेषण की स्वीकृति के रूप में शीघ्रता से तथा तत्परता से स्वीकृति प्राप्त होती है या पावती प्राप्त होती है, तो संप्रेषण धाराप्रवाह व असरकारक व परिणाममूलक होता है।
- **श्रव्य संकेतक**- संप्रेषण के दौरान प्रापक द्वारा प्रदान किये गये श्रव्य संकेत जैसे- जी, जी हां, अरे, ओह, हूँऽऽ आदि यह दर्शाते हैं कि श्रोता, वक्ता की बात को बड़े ध्यान व रुचि से सुन रहा है।

शारीरिक अभिव्यक्तियां

- हाथ लहराना, संकेत करना, स्पर्श करना, भद्दे तरीके से चलना आदि सभी बॉडी लैंग्वेज का भाग हैं। इस प्रकार की चेष्टायें अपनी बात को अभिव्यक्त करने में लगने वाली हमारी मानसिक शक्ति को बचाती हैं तथा इस कार्य को

सरल बनाती हैं। बहुत सारी ऐसी शारीरिक मुद्रायें या चेष्टायें हैं, जिनसे ग्राहक की मानसिक स्थिति परिलक्षित होती है। यदि कोई अपनी दोनों बाहें छाती पर परस्पर लपेटकर बैठा है तो इसका सीधा सा अर्थ है कि वह व्यक्ति दूसरों को खुद तक पहुंचने से रोक रहा है और उसने एक तरह का नाका बना लिया है। महिलाओं के मामले में इस मुद्रा के अन्य अर्थ भी हो सकते हैं। यह मुद्रा ठंड के अनुभव का भी संकेत कर सकती है किंतु तब यदि इसके साथ ही दोनों हथेलियों को आपसे में जोड़ने और रगड़ने की क्रियायें भी साथ या आगे-पीछे की जायें। जब वातावरण और परिस्थिति मैत्रीपूर्ण हो तो इस मुद्रा से यह भी समझा जा सकता है कि श्रोता कही गयी बात पर गंभीरता से गहन मनन कर रहा है। किंतु गंभीर या शत्रुतापूर्ण परिस्थिति में इसका तात्पर्य समने वाले व्यक्ति द्वारा विरोध भी हो सकता है। तब विशेष रूप से, जब श्रोता वक्ता की तरफ बाहर की ओर झुककर खड़ा हो। चेहरे पर एक रुक्ष और सपाट भाव शत्रुता का परिचायक है।

- इसी प्रकार निरंतर दृष्टि मिलान श्रोता की तरफ से यह संकेतक है कि वह वक्ता की बात पर सकारात्मक तरीके से सोच रहा है। इसका एक अर्थ यह भी है कि वक्ता पर श्रोता को विश्वास नहीं है इसलिये वह उसकी नज़रों से अपनी नज़रें हटाना नहीं चाहता। दृष्टि मिलान का अभाव नकारात्मकता का पर्याय है। चिंता के अवसाद से ग्रसित, झूठे, अपराधी, दोषी तथा आत्मसम्मान व आत्मविश्वास से विहीन व्यक्ति दूसरों से नज़रें चुराते हैं। तथापि दृष्टि मिलान से संबंधित कुछ अध्ययन त्रुटिपूर्ण भी हो सकते हैं, यदि उन्हें समकालिक चेष्टाओं और मुद्राओं के सापेक्ष न पढ़ा जाये। यदि छाती पर अपनी बाहों को परस्पर लपेटे हुये राम दूर से श्याम को देख रहा हो तो यह भी हो सकता है कि राम को कोई बात परेशान कर रही हो और वह उस बाबत श्याम से बात करना चाह रहा हो। यदि राम की नज़रें काफी समय तक श्याम की नज़रों से मिली हुयी हैं और व्यर्थ समय नष्ट कर रही हैं तो सीधा सा मतलब है कि राम का ध्यान कहीं और है। यदि राम एक आंख से दूसरी आंख की ओर नज़र घुमाता है और फिर अपने माथे की ओर देखने लगे तो इसका अर्थ यह है कि राम अपना पद तथा प्राधिकार दर्शा रहा है। यदि नज़र एक आंख से दूसरी आंख की ओर जाये और फिर द्रष्टा नाक की ओर देखने लगे तो इसका अर्थ यह है कि श्रोता और वक्ता दोनों समकक्ष माने जा रहे हैं, कोई किसी पर भारी नहीं है या वरिष्ठ नहीं है। इसी प्रकार एक से दूसरी आंख की ओर नज़र जाने के बाद यदि ओठों की ओर देखने लगे तो यह रूमानी भावनाओं का प्रबल और निश्चित संकेतक है।

- कनखियों से देखना, कानों को छूना, ठुड्डी को खुजलाना अविश्वास की अभिव्यक्तियां है। श्रोता की नज़र अपेक्षाकृत कुछ लंबे समय तक के लिये वक्ता से हटने का अर्थ है कि श्रोता वक्ता की बात से सहमत नहीं हो पा रहा है। इसलिये उसका ध्यान भी इधर-उधर जायेगा और नज़र भी।
- किसी की लंबी बात को सुनते समय सिर को एक तरफ झुकाना, नज़र को उसी दिशा में रखना किंतु किसी और केंद्र पर ध्यान केंद्रित करना, अरुचि व एकरसता का प्रतीक है।
- तत्परता से खड़े होकर तथा वक्ता की बात को शांत रहकर सुनते हुये रुचि का प्रदर्शन किया जाता है।
- बातचीत के दौरान चेहरे को छूना, सूचनाओं को छुपाने तथा छल का प्रतीक हैं।
- वक्ता द्वारा संप्रेषण के दौरान पलकों को अत्यधिक झपकाना या बिलकुल न झपकाना अर्थात् पलकों की असामान्य गति- झूठ का संकेत है।

अंतरवैयक्तिक संबंध और बॉडी लैंग्वेज़

बॉडी लैंग्वेज अन्य व्यक्तियों के साथ हमारे या दूसरे व्यक्ति के हमारे साथ संबंधों की अभिव्यक्ति भी करती है। इससे हमें सामने वाले व्यक्ति के मन में चल रही सहानुभूति, नापसंदगी, स्वीकृति तथा विश्वास जैसी भावनाओं का पता भी चलता है, बशर्ते इनका अध्ययन सही तरीके से और संकेतों के सामूहिक परिप्रेक्ष्य में किया जाये।

शरीर का झुकाव- वक्ता और श्रोता के शरीर का एक-दूसरे के प्रति झुकाव सहानुभूति और स्वीकृति का परिचायक है। हालांकि यह शारीरिक चेष्टा अचेतनतया होती है तथापि चेतन और सतर्क रूप से इसका अध्ययन करके अपने प्रति ग्राहक की भावना को जान सकता है तथा तदनुसार उपचारात्मक या सुधारात्मक उपाय कर सकता है। यदि ग्राहक के शरीर का झुकाव बैंकर से दूर और शारीरिक घेरे के बाहर है तो समझना चाहिये वह हमें नापसंद कर रहा है। ऐसा जान लेने पर हम ग्राहक से अपने संबंधों को सुधारने और बेहतर बनाने की कोशिश कर सकते हैं। इसी प्रकार हाथों को कमर के पीछे बांधना और सिर को तना हुआ रखना संबंधों के विच्छेद की निशानी है। गर्दन को आगे की ओर झुकाना संबंधों को बनाने और सकारात्मक रवैये की निशानी है।

समानता- वार्तालाप के दौरान अक्सर वक्ता और श्रोता अचेतनतया अपने व्यवहार को समान करने, एक जैसा बनाने की कोशिश करते से प्रतीत होते हैं। ऐसा तब होता है जब संप्रेषण धाराप्रवाह चलता है और दोनों पक्षों के लिये आनंददायक होता है। बॉडी लैंग्वेज में समानता का प्रवेश एक तरह के पारस्परिक बंधन, सहानुभूति तथा समानुभूति का परिचायक होता है। एक समान व्यवहार या समरसता का भाव इस बात का परिचायक होता है कि संबंध बनावटी, बलात् तथा अप्रिय है

शरीर की अवस्थिति- सामान्यतया वार्तालाप करते समय लोग आमने-सामने सीधे खड़े होकर बातचीत करते हैं। किंतु यदि हम सामने वाले की उपेक्षा करना चाहते हैं या उसका सामना करने से बचना चाहते हैं तो हम तिरछा खड़े होते हैं। सामान्यतया लिफ्ट में भीड़ के वक्त हम अपने कंधे सिकोड़कर या दूसरे पक्ष की तरफ कंधा दिखाकर खड़े होते हैं क्योंकि हम उनसे बचना चाहते हैं।

सामाजिक प्रतिष्ठा और शारीरिक मुद्रायें तथा उनकी विशेषतायें

- यदि समाज के दो विभिन्न स्तरों के लोग आपस में वार्तालाप करते हैं तो उच्च स्तरीय व्यक्ति कुछ राहत व विश्राम की अवस्था में प्रतीत होता है। उसकी शारीरिक भाव-भंगिमा असंतुलित नहीं होती, मुद्रा रूखी सी भी हो सकती है, जैसे पैर टेबल पर, हाथ पॉकेट में, आदि-आदि। देखने से ही पता चल सकता है कि दोनों में से किसकी सामाजिक अवस्थिति और प्रतिष्ठा क्या है!
- निम्नस्तरीय व्यक्ति या पदानुक्रम में कनिष्ठ व्यक्ति की शारीरिक मुद्रायें समानता की स्थिति में होती हैं जैसे दोनों हथेलियां गोद में, या शरीर के दोनों तरफ सीधी बाहें, पेट पर दोनों हथेलियां आपस में आलिंगनबद्ध, या दोनों हाथ परस्पर आलिंगनबद्ध होकर सामने डेस्क या टेबल पर आदि।
- वरिष्ठ व्यक्ति सामान्यतया पहले स्वयं बैठता है फिर दूसरे को बैठने को कहता है या अपेक्षा करता है कि कनिष्ठ व्यक्ति बाद में बैठे। निम्नवर्गीय या कनिष्ठ व्यक्ति बैठने से पहले आज्ञा लेता है या खड़ा ही रहता है। इससे हम पहचान सकते हैं कि वार्तालाप करते हुये दो व्यक्तियों में वरिष्ठ और कनिष्ठ कौन है।
- कनिष्ठ या सामाजिक रूप से निम्नवर्गीय व्यक्ति बातचीत के दौरान कम स्थान या कम परिवेश घेरता है। उदाहरण के लिये सिमटकर और सीधा खड़ा होना, अपनी बांहों को छाती पर या पेट के सामने आलिंगनबद्ध कर लेना, बैठते समय टांगों को आपस में लिपटा लेना, कोहनियों को अपने शरीर के साथ जोड़े रखना आदि कम परिवेश घेरने की निशानी हैं।
- झुके हुये कंधे, चिंतालु स्वभाव, संशय तथा झुकी हुयी कमर आत्मविश्वास की कमी की परिचायक है।
- सोते समय जो व्यक्ति रीढ़ के बल, दोनों हाथ शरीर के साथ फैलाकर और पैर सीधे करके शवासन की मुद्रा में सोते हैं, वे स्वयं को परम सुरक्षित व निश्चिंत अनुभव करते हैं। सोने की यह मुद्रा राजसी ठाठ कहलाती है। जो लोग करवट लेकर सोते हैं वे बौद्धिक होते हैं तथा जो धनी व्यक्ति होते हैं वे सामान्यतया पेट के बल सोते हैं। मुख्य विचारणीय विषय गला, पेट तथा जननांगों को आच्छादित या अनाच्छादित रखना है। व्यक्ति का जो विचार या भावना असुरक्षित या कमज़ोर रहती है, वह उसी अंग को ढकता या अनाच्छादित रखता है।

- जो लोग कोमल व्यक्तित्व वाले होते हैं अर्थात् कोमल त्वचा, शारीरिक बनावट नर्म-नर्म, मांसपेशियों व अस्थियों की कोमलता आदि- वे लोग आरामपसंद, सामाजिक, लोगों से संपर्क रखने वाले, भोजन में रुचि रखने वाले तथा उदात्त भावनाओं वाले होते हैं। ऐसे लोग संतुलित शारीरिक मुद्रा वाले, सीधे खड़े होने वाले, धीमी प्रतिक्रिया करने वाले, कठिनाई में दूसरों की सहायता मांगने वाले तथा सहिष्णु होते हैं।
- कठोर शारीरिक मुद्रा, अपेक्षाकृत रुक्ष व कठोर मांसपेशियां तथा मजबूत अस्थियां व ठोस शारीरिक बनावट वाले लोग क्रोधी, साहसी, जोखिम उठाने वाले, दूसरों की भावनाओं को न समझने वाले, शक्ति के पुजारी तथा प्राधिकार जताने वाले होते हैं।
- दुबला-पतला व कमजोर शरीर, सपाट छाती, नाज़ुक शारीरिक बनावट वाले लोग शर्मीले, असंतुलित, बेचैन, भीड़-भाड़ से दूर रहने वाले या यों कहा जाये तो लोगों के संपर्क में आने से बचने वाले होते हैं। अतिशीघ्र प्रतिक्रिया देने वाले, तनाव के क्षणों में लोगों से बचने वाले होते हैं। तनाव व दुख के क्षणों में 'मुझे अकेला छोड़ दो' कहने वाले होते हैं।

अपने ग्राहक की बॉडी लैंग्वेज समझना हर बैंकर के लिये अनिवार्य है। बल्कि यहां तक भी कहना उचित ही है कि हम अपने सहयोगियों और सहकर्मियों की भी बॉडी लैंग्वेज समझने की कोशिश करें। तभी हम एक सफल बैंकर बन सकते हैं। वस्तुतः बड़ा ही रोचक कार्य है सामने वाले के झूठ को समझ जाना, दिये जाने वाले धोखे को जान लेना और उसकी शारीरिक मुद्राओं और चेष्टाओं से आने वाले समय व उसके परिणामों को जान लेना। इसके लिये सतत अभ्यास व एक प्रकार की अंतर्दृष्टि की आवश्यकता होती है। हर सफलता और सही अध्ययन हमें एक प्रोत्साहन देता है और अगली सीढ़ी पर कदम रखने हेतु पथ प्रशस्त करता है।

प्रयुक्त शब्दावली

भाव भंगिमायें	Facial Expressions
चेष्टायें	gestures
दृष्टि का मिलान	eye contact
तान	Tone
लहजा	Pitch

गैरशाब्दिक संकेत	Non Verbal Cues
अंतर्दृष्टि	Insight
पुनरावर्तन	Repeatition
विरोधाभास	Contradiction
प्रतिस्थापन	Substitution
पूरक	Supplementary
मुद्रायें, शारीरिक गतियां	Postures/physical movements
संगतता	Compatibility
अति नाटकीय	Over Dramatic
उद्दात भावनायें	Generous Feelings

19. हैंडराईटिंग

हमारी हैंडराईटिंग केवल हमारी तहरीर ही नहीं होती, या हमारे संप्रेषण का माध्यम ही नहीं होती बल्कि यह हमारे संपूर्ण व्यक्तित्व का दर्पण भी होती है।

सिर्फ तहरीर तो हमें टाईपिंग या कम्प्यूटरीकृत प्रिंट आउट से भी मिल सकती है। किंतु उसे देखकर लेखक या कर्ता के बारे में अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता सिवाय उसके विषयगत और भाषायी ज्ञान के। इसके स्थान पर यदि कोई हस्तलिपि में लिखी हुयी तहरीर है तो वह हमारे संवेगों, भावों, तनावों, महत्वाकांक्षाओं, असुरक्षा-सुरक्षा की भावनाओं, बातों में वज़न आदि व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण पहलुओं को प्रदर्शित करती है। हस्तलिपि का हर संकेत हमारे व्यक्तित्व के बारे में एक विशेष संदेश देता है। हस्तलिपि में उसकी ढलान, उस पर लेखक का दबाव, कोण या गोलाईयां सभी महत्वपूर्ण होते हैं। कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं पर इस परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाना समीचीन होगा-

गोलाकार/कोणीय हस्तलिपि- जिस हस्तलिपि में गोलाकार अक्षरों का प्रयोग होता है वह समायोजन तथा सामाजिकता का प्रतीक मानी जाती है। ऐसी हस्तलिपि लिखने वाला व्यक्ति सामाजिक होता है और उसके अंतरवैयक्तिक संबंध अपेक्षाकृत अधिक संख्या में तथा अधिक गुणवत्ता वाले होते हैं। हर प्रकार के व्यक्तियों और परिस्थितियों में स्वयं को समायोजित कर लेता है।

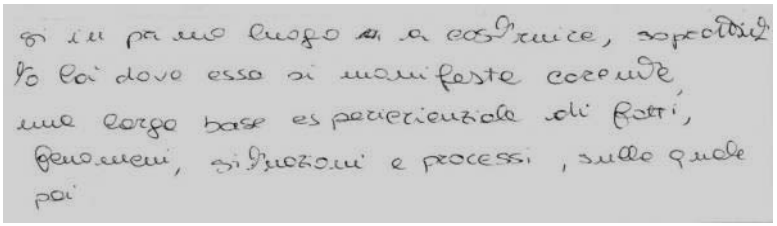

- इसी प्रकार कोणीय हस्तलिपि आक्रामकता और तनाव की परिचायक है। चूंकि कोण बनाने में अचानक दिशा परिवर्तन, त्वरित प्रतिक्रिया, कोणों पर दिशा परिवर्तन हेतु

रुकने और ठहरने की आवश्यकता होती है, अतः ये ही गुण लेखक की हस्तलिपि के कारण उसके व्यवहार में आ जाते हैं। ये कोण निरंतर तथा लंबे समय तक चलने वाले संघर्ष का भी परिचायक होते हैं। किंतु साथ ही ये कोण चेतन बोध को भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं तथा व्यक्ति अपने स्व की विजय के लिये संघर्ष करता रहता है। ये कोण स्वार्थी (अपना ध्यान देने वाले) स्वभाव का भी परिचायक है। ये गोलीय हस्तलिपि के प्रतिकूल असमायोजित स्वभाव के होते हैं। वे लोग कोणीय हस्तलिपि लिखते हैं जो अपने निर्णयों के साथ समझौता नहीं करते। कठिनाईयों से संघर्ष करना बेहतर समझते हैं।

हस्तलिपि में दूरी तथा विस्तार- अक्षरों का विस्तार (चौड़ाई) बुद्धि की गहराई से संबंधित होता है।

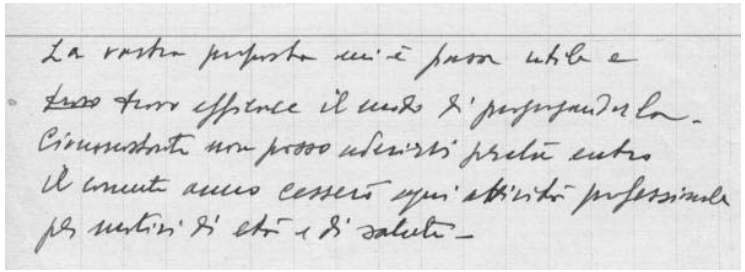

गोलीय		कोणीय
समायोज्यता, सामाजिकता	**गुण**	तनाव, आक्रामकता
मैं क्रोधित हूं क्योंकि मैं जो चाहता हूं वह नहीं कर पाता और दूसरे मुझसे आगे निकल जाते हैं. और यदि मैं अपना मनचाहा कर भी लूं तो अपराध बोध होता है.	**अंधेरा पक्ष**	मैं थका हारा हूं क्योंकि मुझे ही सब काम करने पड़ते हैं. मैं किसी पर भरोसा नहीं कर पाता तथा यदि मैं ऐसा कर भी लूं तो सब कुछ बर्बाद हो जाता है.
सबसे पहले मुझे अच्छा निःस्वार्थी होना चाहिये अन्यथा दूसरे मुझसे क्रोधित हो जायेंगे. वे मुझे नकार देंगे और मैं खुद को बचा नहीं पाऊंगा मैं केवल भाग सकता हूं.	**अंतर्निहित भाव**	दूसरे सभी निराधार हैं तथा भोले भाले हैं. कुछ नहीं कर सकते. किंतु मुझसे तुम हमेशा सावधान रहना क्योंकि मैं सदा दूसरों को ठगता रहता हूं.
शक्तिहीनता	**हानि**	विश्वासहीनता

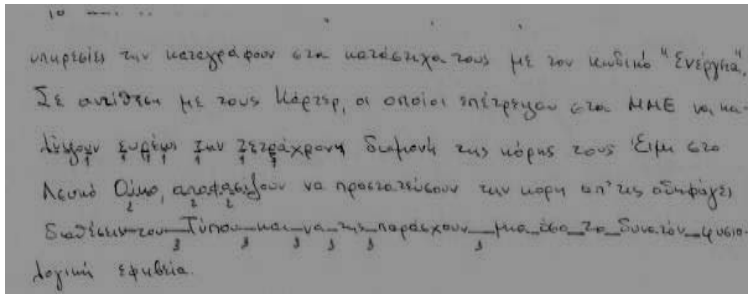

जब अक्षर अपनी उंचाई से अधिक विस्तृत हों अर्थात् चौड़े हों तो यह अक्षरों की आपसी दूरी के रूप में जाना जाता है। इस हस्तलिपि के अक्षर वृताकार होते हैं। इसे आसानी से देखा जा सकता है। अत्यधिक गोलाई लिये हुये हस्तलिपि वाले लोग भावात्मक रूप से आत्मसमर्पण कर देते हैं तथा अत्यधिक अक्षर विस्तार सहित हस्तलिपि वाले लोग बौद्धिक रूप से उदासीन होते हैं तथा उन विषयों में लगे रहते हैं जिनमें विचार तथा खुले दिमाग की ज़रूरत होती है। जैसे दर्शन, राजनीति आदि। हम दो उदाहरणों द्वारा विश्व के प्रख्यात मनोवैज्ञानिकों की हस्तलिपि के बारे में चर्चा करके अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर सकते हैं-

फ्रायड की हस्तलिपि में एंगल की बहुलता है तथा अक्षर की चौड़ाई अपेक्षाकृत कम है। एंगल की बहुलता इनके लैंगिक दृष्टिकोण को समाज पर एक तरह से थोपने की परिचायक है तथा अक्षरों की चौड़ाई युंग की तुलना में कम है अर्थात इनका विज़न विस्तारित कम था जिसे युंग ने जाकर आगे विस्तार दिया।

- युंग की हस्तलिपि में कोणीयता कम है तथा गोलीय वक्र अधिक हैं जो समायोजन की ओर इशारा करते हैं। दोनों ही विद्वानों की हस्तलिपि में नीचे के लूप (जी में) तथा ऊपर के लूप (एच में) आगे और पीछे की ओर तिरछे हैं। दोनों ही अतीत से भविष्य की व्याख्या करते हैं। फ्रायड की हस्तलिपि में अक्षरों के प्रारंभ में स्ट्रोक है जो पूर्वयोजना का परिचायक है जो युंग में छोटा है। युंग की हस्तलिपि में ऊपर का अर्धगोलीय छत्र शब्दों के ऊपर छाते की तरह पीछे जा रहा है जो अतीत की ओर उनके रुख को प्रदर्शित करता है। युंग के अक्षरों की चौड़ाई अधिक है जो मानसिक खुलेपन का प्रतीक है, इसी कारण वे फ्रायड के प्रति बहुत अधिक निष्ठावान नहीं रह पाये। दोनों ही मनोवैज्ञानिकों के शब्दों के बीच में औसत से कम स्थान है इसलिये दोनों ही संसार में अपने विज़न के प्रति रक्षात्मक दृष्टिकोण वाले थे।
- **अक्षरों के बीच की दूरी** भावात्मक तथा बौद्धिक खुलेपन का परिचायक होता है। यदि किसी हस्तलिपि में दो अक्षरों के बीच की दूरी अधिक है तो यह बताती है कि हम खुद को भावात्मक रूप से बाहर के संसार से सहूलयित से संबद्ध करते हैं जबकि दूरी

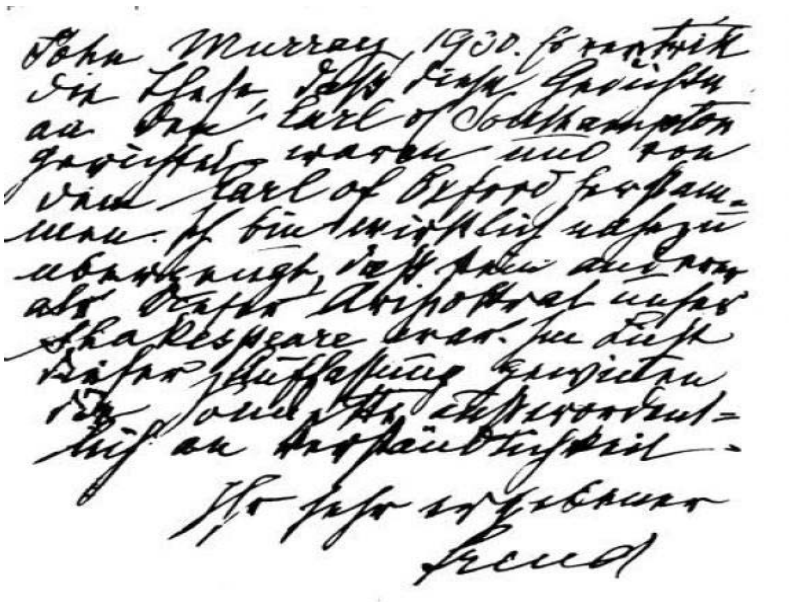

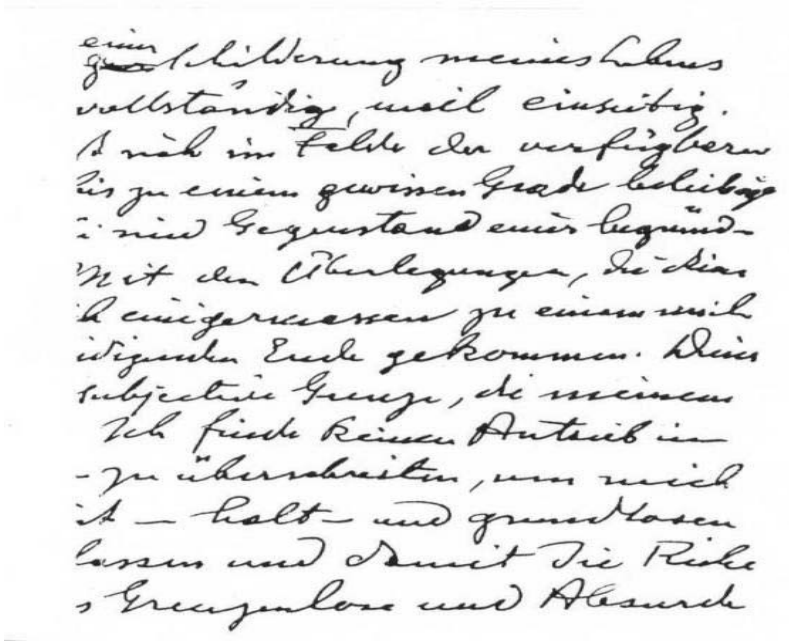

कम होने पर हमें खुद को समायोजित करने में कठिनाई होती है। यह दूरी हमारे उस स्वभाव को दर्शित करती है जिसके द्वारा हम दूसरों को विभिन्न प्रकार से स्वीकारते हैं। इस प्रकार की हस्तलिपि में खुलापन कम होता है। यह खुलापन उदारता, न्याय या कंजूसी के रूप में जाना जाता है। आवेग, विस्तार, तथा मिलनसार होने के गुण उदारता माने जाते हैं। जैसे

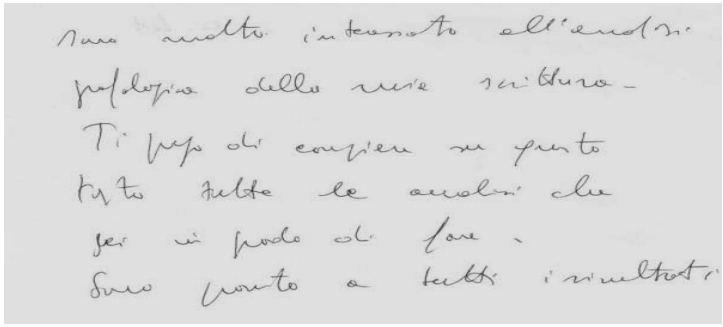

अत्यधिक सिकुड़ी हुयी हस्तलिपि मानसिक, भौतिक तथा भावात्मक कंजूसी का परिचायक है।

- जैसे-

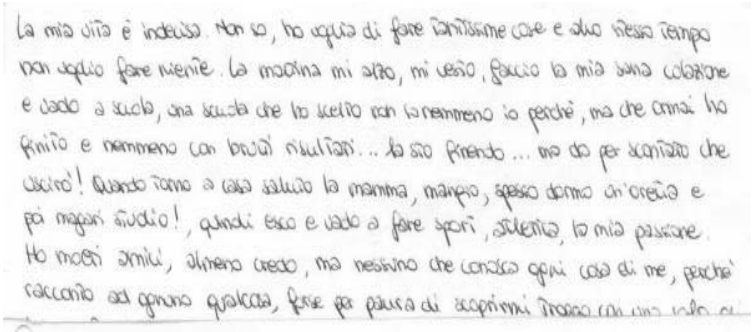

युवा महिलाओं की हस्तलिपि भी सिकुड़ी हुयी होती है जो उनके कम खुलेपन और बाहरी जगत से अपनी रक्षात्मक सोच को इंगित करती है।

- **शब्दों के बीच की दूरी** आलोचनाओं तथा वाद-विवादों का सामना करने की सक्षमता का परिचायक होती है। अलबर्ट आईंसटाईन की हस्तलिपि में अक्षरों का विस्तार भी अधिक है जो बुद्धि की गहराई का प्रतीक है तथा अक्षरों में दूरी भी अधिक है जो उदारता का प्रतीक है। बीच में औसत स्थान भी है जो आलोचना और वाद-विवादों की सक्षमता का प्रतीक है।

• दूसरी ओर हैंडराईटिंग में घटता बढ़ता दबाव भावात्मक प्रबलता या कमज़ोरी का प्रतीक है। जिसकी बातों में जितना बल होता है उसकी हस्तलिपि भी उतनी अधिक दबाव वाली होती है।

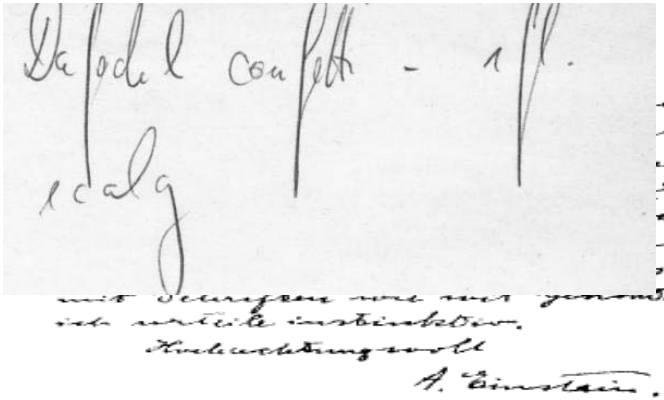

ीतीक है जो व्यक्ति के
। पसंद करता है और

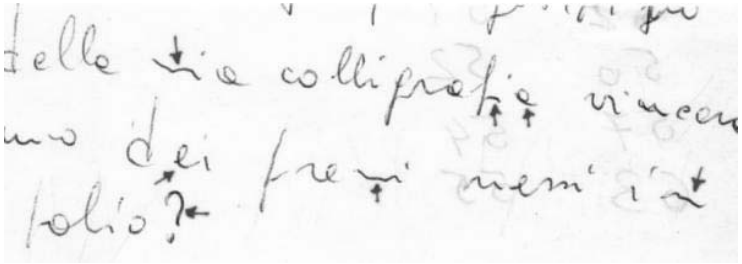

भीड़ में भी अलग-थलग दिखायी देता है। विस्तृत दृष्टिकोण वाला, प्रभावशाली, अहंकारी, निर्भीक, अधिक विस्तृत डाटा न चाहने वाला, क्रियात्मक तथा स्वार्थी भी हो सकता है।

• छोटे आकार की हस्तलिपि वाला व्यक्ति दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित नहीं करना चाहता, आत्मविश्लेषक, विस्तृत आंकड़े चाहने वाला, उदार, ध्यान केंद्रण में बेहतर, विनम्र तथा **सेल्फएक्चुअलाईज़्ड** होता है।

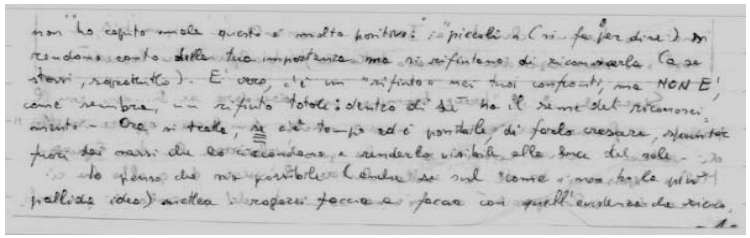

• मध्यम आकार की हस्तलिपि वाला व्यक्ति भीड़ का हिस्सा, समायोज्य, व्यवहारिक, वास्तविक जीवन में विश्वास रखने वाला, किसी एक या सभी के साथ मिलकर काम कर सकता है।

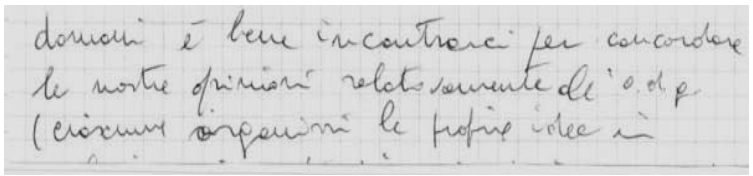

- बहुत छोटी आकार वाली हस्तलिपि वाला व्यक्ति लोगों से दूर रहने वाला, चकाचौंध से दूर रहने वाला, गोपनीय, अच्छे ध्यानकेंद्रण वाला, अंतर्मुखी, संक्षिप्त, तथा चयनात्मक स्वभाव वाला होता है।

सीधी या थोड़ी सी आगे की ओर झुकी हुयी हस्तलिपि वाला लेखक व्यवहारिक, आत्मनिर्भर, दिल के बजाय दिमाग से काम करने वाला, खुद मुख्तार, स्वयं पर अपना नियंत्रण रखने वाला, कम भावात्मक विह्वलता वाला तथा स्वयं को सीमित रखने वाला होता है।

हस्तलिपि का झुकाव-

- **सीधी हस्तलिपि**

- **दाहिने हाथ की ओर** झुकी हुयी हस्तलिपि वाला व्यक्ति सामाजिक, प्रभावशाली,

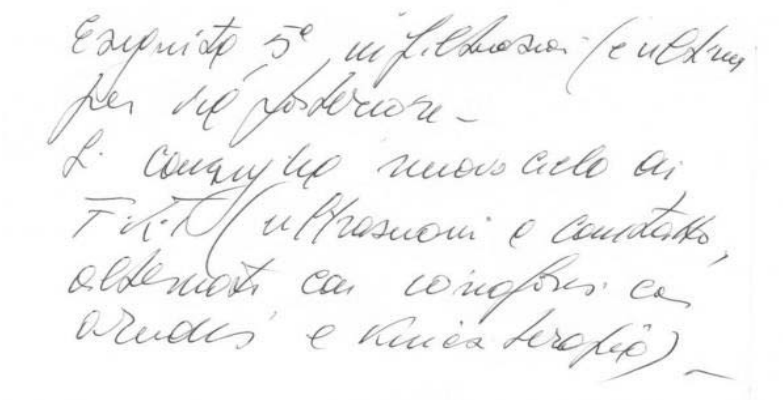

दूसरों में रुचि लेने वाला, संघर्ष का सामना करने में सक्षम, बहिर्मुखी, भविष्यद्रष्टा तथा दूरदृष्टि वाला होता है। अपने कार्यों में भविष्य का नज़रिया भी शामिल करता है।

- **दाहिने हाथ की ओर** (आगे की ओर) **अत्यधिक झुकी हुयी** हस्तलिपि वाला व्यक्ति दूसरों के साथ संबंध बनाने वाला, आवेगी, त्वरित, भावावेश की प्रधानता वाला, भविष्योन्मुख, प्रदर्शनकारी, दूसरों के सहयोग व समर्थन की आवश्यकता रखने वाला होता है।

- **पीछे की ओर** अर्थात् बायें हाथ की ओर झुकी हुयी हस्तलिपि वाला व्यक्ति सामाजिक रूप से सजग, निरीक्षक, सीमित रहने वाला, आत्मनिर्भर किंतु अच्छा श्रोता होता है।

- **लाईनों की दिशा**- सादे कागज़ पर यदि लिखने वाले की लाईनों की दिशा सम हो, किसी ओर झुकाव न जा रहा हो, क्षैतिज रूप से समानांतर लाईनें हो तो यह अच्छे स्वास्थ्य के साथ-साथ प्रतिबद्ध, अपने रास्ते पर कायम रहने वाला, स्वतःस्फूर्त, विश्वसनीय, दिल के स्थान पर दिमाग से काम लेने वाला, परिश्रमी तथा निर्भीक होता है।

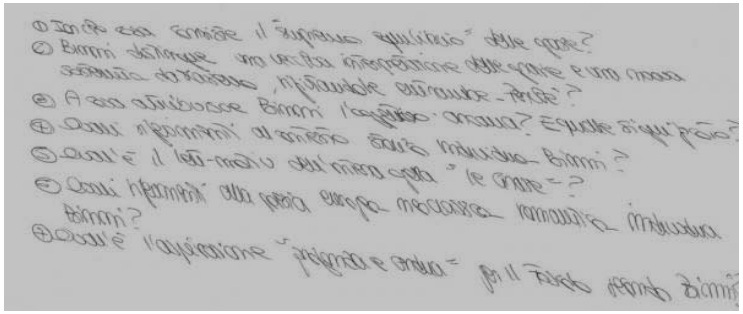

- बायें से दायें जाते समय ऊपर की ओर उठने वाली हस्तलिपि आशावाद, सकारात्मक सोच, महत्वाकांक्षा, सकारात्मक सोच पर अत्यधिक बल देने तथा अपनी

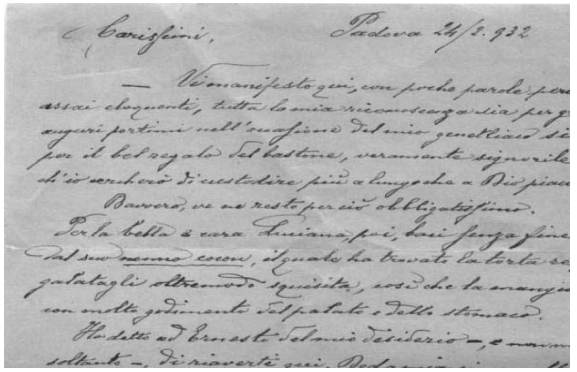

सक्षमताओं पर विश्वास का प्रतीक होती हैं।

ऊपर की ओर दाहिनी ओर उठती हुयी हस्तलिपि-

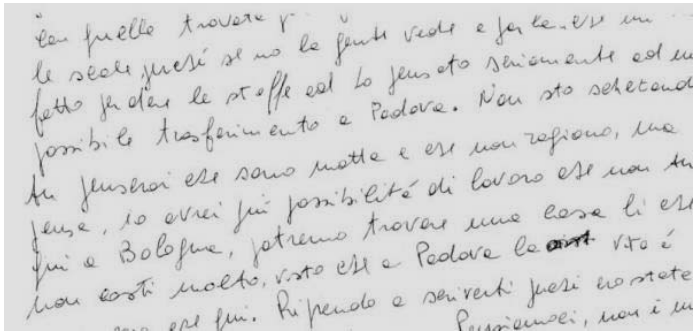

- बायें से दाहिनें ओर को जाते समय जब हस्तलिपि **नीचे की ओर झुकती** नज़र आये तो यह व्यक्ति थका हुआ, काम के बोझ से दबा हुआ, निराशावादी, आशाहीन, सफलता से अधिक असफलता की संभावनाओं पर विश्वास रखने वाला होता है।

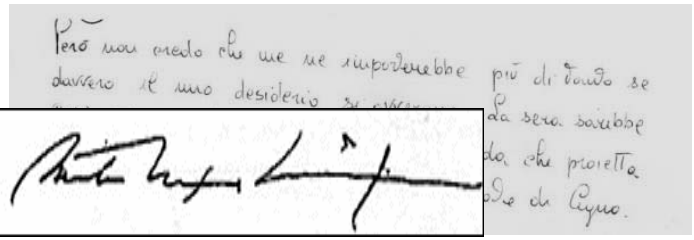

- यदि हस्तलिपि की लाईन सीधी हो किंतु वह लहरदार- कभी ऊपर की ओर और कभी नीचे की ओर झुकी हुयी हो तो वह हस्तलिपि दिशाहीन व्यक्तित्व, भावात्मक रूप से स्थायित्व विहीन, अनुमान न करने योग्य, निर्णय लेने में अक्षम तथा लक्ष्य प्रप्ति में कठिनाई महसूस करने वाला होता है। किंतु आम तौर पर सामान्य व्यक्तियों की ऐसी हस्तलिपि नहीं दिखायी पड़ती। असामान्य या मानसिक तौर से परेशान व्यक्तियों की हस्तलिपि ही ऐसी होती है।

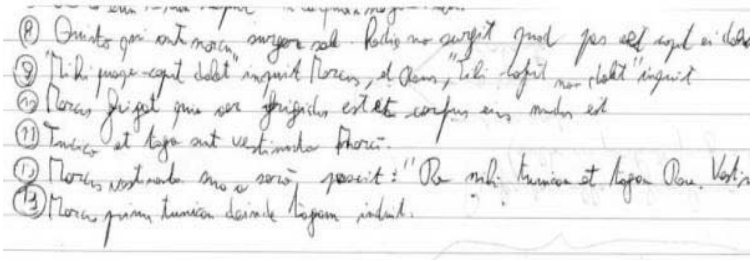

- एक बैंकर के रूप में हमें दिनभर की दिनचर्या में हस्ताक्षरों के मिलान का कार्य अधिक करना पड़ता है। इसलिये हमारा प्रमुख बल हस्ताक्षर विश्लेषण पर होगा।

किसी का हस्ताक्षर परिसंपत्तियों का हस्तांतरण करवा सकता है, चेक पर किया हुआ हस्ताक्षर नकदी के समान होता है, सादे कागज़ पर किये हुये हस्ताक्षर नियम बदलने की क्षमता रखते हैं। विभिन्न व्यक्तियों के हस्ताक्षर उनके व्यक्तित्व का दर्पण होते हैं। उम्र, अनुभव तथा शिक्षा के अनुसार हस्ताक्षर समय-समय पर परिवर्तित भी होते रहते हैं।

हस्ताक्षर के संबंध में कुछ बिंदु ध्यान में रखने योग्य हैं-

- यदि हस्ताक्षर का आकार लिखी गयी हस्तलिपि के आकार के बराबर हो तो वह व्यक्ति शांत, वास्तविक, जैसा दिखता है वैसा होता भी है, ईमानदार होता है।

रिचर्ड निक्सन के हस्ताक्षर

एडोल्फ हिटलर के हस्ताक्षर

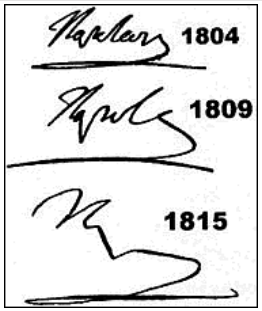

नेपोलियन बोनापार्ट के हस्ताक्षर

यदि हस्ताक्षर लिखी गयी हस्तलिपि से आकार में बड़ा हो तो हस्ताक्षरकर्ता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में लगा रहता है, **मुझे देखो!** इस व्यक्ति के बड़े-बड़े सपने, बड़े-बड़े लक्ष्य होते हैं, तथा अहं भी बढ़ा हुआ होता है।

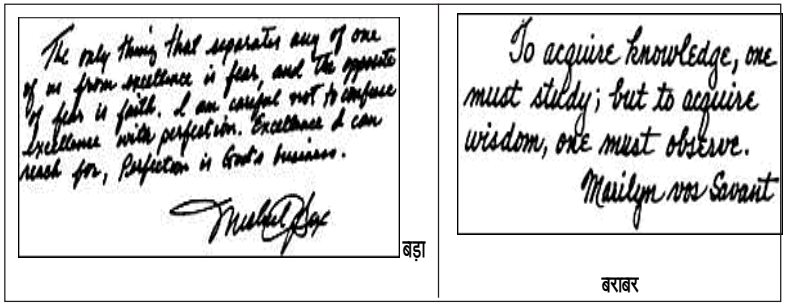

बड़ा

बराबर

यदि हस्ताक्षरकर्ता लिखी गयी हस्तलिपि से छोटा हस्ताक्षरकर्ता है तो हस्ताक्षरकर्ता विनम्र, उदार, अपनी ओर ध्यान आकर्षण में नहीं लगा होता है।

यदि हस्ताक्षर पठनीय और सरल हो तो ऐसा व्यक्ति सीधा सादा, ईमानदार तथा स्पष्टवादी होता है। तथा स्कूली बच्चों की तरह नियमों व प्रावधानों का पालन करने वाला होता है।

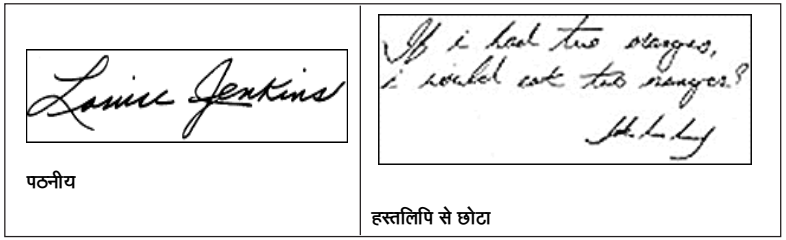

पठनीय

हस्तलिपि से छोटा

यदि हस्ताक्षर अपठनीय हो तो हस्ताक्षरकर्ता हड़बड़ी मे रहने वाला माना जाता है कि उसे इतना भी समय नहीं होता कि वह पूरी तरह से हस्ताक्षर भी कर सके जैसे डॉक्टर, अभिनेता, कार्यपालकगण आदि। अपठनीय हस्ताक्षर अधिक अहंकार का प्रतीक होता है। ऐसा व्यक्ति यह आशा करता है कि उसके बारे में जानना दूसरों का काम और दूसरों की समस्या है। यह व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत जीवन से संबंधित बातों को गोपनीय भी रखना चाहता है तथा बाहरी जगत से बचाना भी चाहता है।

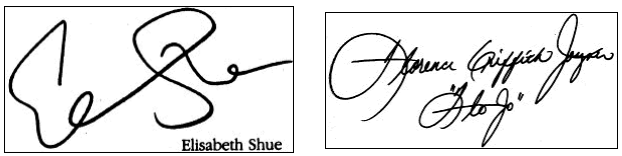

यदि कोई हस्ताक्षर सजावटी तथा फ्लोरिश से युक्त होता है, जैसे किसी पोशाक में मोती टांके गये हों तो वैसा व्यक्ति भीड़ से अलग होता है, भीड़ का हिस्सा नहीं होता। अमूमन युवा लोगों के हस्ताक्षर सजावटी होते हैं जो स्वतंत्र, जोशीले, मजाकिया तथा इस संसार पर अपनी छाप छोड़ने की इच्छा रखने वाले होते हैं।

सामान्य तौर पर हस्ताक्षरों में कुछ अभिवर्धन होते हैं जो आम तौर पर पाये जाते हैं। इनमें मुख्य हैं-

नीचे की लाईन- जब हस्ताक्षर के नीचे सीधी ऊपर की ओर उठती हुयी लाईन हो तो यह हस्ताक्षरकर्ता की शक्ति, सुदृढ़ता, आत्मविश्वास की ओर संकेत करती है। यदि यह लाईन लहरिया हो तो हस्ताक्षरकर्ता मजाकिया तथा खुशमिजाज हो सकता है। यदि यह लाईन कोणीय हो तो हस्ताक्षरकर्ता मांग करने वाला, आक्रामक, महत्वाकांक्षी होता है।

यदि हस्ताक्षर को **वृत्ताकार घेराव** दिया जाये तो हस्ताक्षरकर्ता खुद को शेष संसार से ढाल की तरह बचाकर रखना चाहता है। वह घेरा डालकर एक प्रकार से गोपनीयता तथा संरक्षण की दीवार खड़ी करना चाहता है। जब भी ऐसे व्यक्तियों को अपने अस्तित्व के प्रति बाहरी जगत से खतरा लगता है तो वे खुद को एक प्रकार से अपने खोल में सुरक्षित कर लेते हैं।

जब हस्ताक्षर के अंत में तिथि हो तो ऐसा व्यक्ति अपना अंतिम निर्णय देता है। कोई चर्चा नहीं। मामला बंद! यह सावधानी, अवज्ञा तथा अविश्वास का भी प्रतीक है।

जब हस्ताक्षर का आखिरी स्ट्रोक हस्ताक्षर के ऊपर छतरी बना दे तो व्यक्ति अपने नाम को संरक्षित करना चाहता है।

जब हस्ताक्षर के प्रारंभ में कोई स्ट्रोक हो तो योजनाबद्ध तरीके से कार्य करने का परिचायक होता है।

जब एच और जी के लूप बने हों तो जिस तरफ ये लूप बनते हैं, उस तरफ को व्यक्ति का झुकाव होता है। बायां लूप अतीत का और दायां लूप भविष्य का परिचायक है। यदि लूप कोणीय हों तो यह महत्वाकांक्षा का प्रतीक होते हैं।

खुद के नाम को काटने वाला हस्ताक्षर स्वयं के प्रति घृणा व नापसंदगी तथा स्वयं को दंड देने का परिचायक है। यदि इस प्रकार के हस्ताक्षर हों जो आपके हस्ताक्षर के किसी अक्षर को काटते हों तो कृपया उसे सुधार लीजिये क्योंकि हर बार जब आप हस्ताक्षर करेंगे, नाम को काटने के कारण अपने प्रति घृणा, नापसंदगी, दंड देने की इच्छा को और

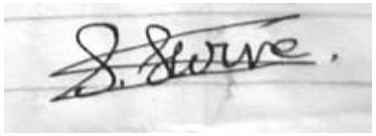

प्रबल बनाते जायेंगे। अतः इस काट को छोड़कर हस्ताक्षर को सादा व सरल बनायें। यह आपके अंदर के भावों को भी बदल देगा।

यदि आपके हस्ताक्षर के पहले अक्षर के चारों तरफ वृत्त है तो यह आपकी असुरक्षा की भावना, सामाजिक रूप से अलग-थलग रहने के स्वभाव को इंगित करता है। क्योंकि यह वृत्त आपको शेष जगत से सुरक्षित करने जैसा लगता है। आप दूसरों के प्रति संवेदनशील और दूसरों की भावना से सजग रहते हैं। हमेशा लगता रहता है कि सामने वाला आपको दर्द देगा। आप अन्य लोगों से दूर रहने लगते हैं और खुलते नहीं। अलग-थलग और चुप बन जाते हैं।

यदि ऐसा है तो इस वृत्त से छुटकारा पाईये।

हस्ताक्षर के आखिर से **पीछे की ओर आती हुयी नीचे की लाईन** हस्ताक्षरकर्ता के अतीत से उसके लगाव को दर्शाती है। ऐसे व्यक्ति अपने अतीत से गहराई से जुड़े होते हैं

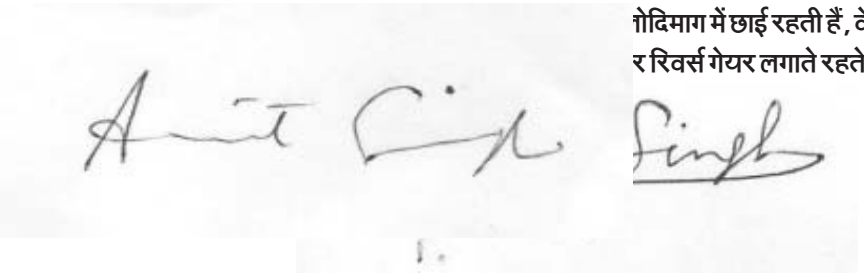

ोदिमाग में छाई रहती हैं, वे उससे उबर
र रिवर्स गेयर लगाते रहते हैं।

घसीटामार हस्ताक्षर- अधिकांश हस्ताक्षर ऐसे ही होते हैं। इस प्रकार के हस्ताक्षर के दो कारण होते हैं। एक तो यह कि इन्हें समय नहीं होता दूसरे इन्हें परवाह नहीं होती कि दूसरा इनके हस्ताक्षर समझ पाता है या नहीं। ऐसे लोग अपने उत्तरदायित्व को लेने से घबराते हैं।

हालांकि ऊपर जो भी व्याख्यायें हस्तलिपि या हस्ताक्षरों की दी गयी हैं, वे विशेष अर्थों में नहीं बल्कि आमजन की समझ और सामान्य प्रचलन के आधार पर दी गयी हैं। हस्तलिपि विज्ञान अपने आपमें पूर्ण विज्ञान है। यह इसकी केवल एक झलक मात्र थी जो एक बैंकर होने के नाते हस्ताक्षर या हस्तलिपि के आधार पर ग्राहक के व्यक्तित्व और भावों को समझने में मदद कर सकती है।

प्रयुक्त शब्दावली

गोलाकार	Round
कोणीय	Angular
अंतर्निहित	Inbuilt

20. मैं और मेरा ग्राहक

शाखा का वातावरण एक अत्यंत व्यावसायिक वातावरण होना चाहिये। जिस शाखा के कर्मचारी आपस में जोर-जोर से चिल्लाकर हंसी-ठट्ठा करते रहते हैं, वहां ग्राहक स्वयं को अपमानित तथा ठगा सा महसूस करता है। ग्राहक सामने काउंटर पर खड़ा हो और कर्मचारी आपस में ही शोरगुल करते रहें, तो यह अभद्रता के साथ असुविधाजनक व अशिष्ट भी लगता है।

जैसे ही हमारा ग्राहक हमारी शाखा में प्रवेश करता है, वैसे ही वह हमारा उत्तरदायित्व प्रारंभ हो जाता है। वही हमारा साधन भी होता है और साध्य भी। इसलिये हमारे सारे प्रयास तथा क्रियायें उसी के इर्द-गिर्द घूमते हैं। यदि वह अपना काम करवाकर, संतुष्ट होकर हमारी शाखा से जाता है तो इसका तात्पर्य यह होता है कि हमने अपना काम भर किया। यदि वह प्रसन्नचित्त होकर जाता है तो इसका तात्पर्य यह होता है कि हमने अपने कर्त्तव्य से कुछ अधिक प्रयास किया और यदि वह अत्यधिक आह्लादित होकर जाता है तो इसका तात्पर्य यह होता है कि हमने अपनी सारी शक्ति उसकी सेवा में लगा दी और हमारा यह प्रयास परिणाममूलक रहा। तीसरी अवस्था तक आने के लिये हमारी सेवाओं के अतिरिक्त और भी बहुत से कारक हैं जो ग्राहक की संतुष्टि को प्रभावित करते हैं जैसे-

शाखा में प्रकाश की व्यवस्था- हम सबको ईश्वर ने आंखें दी हैं। हम सब इनकी उपादेयता और उपयोग जानते हैं। किंतु इनका उपयोग प्रकाश के साहचर्य के साथ ही हो सकता है। अंधेरे में हमारी आंखें कुछ भी नहीं देख सकतीं। ग्राहक सेवा से सबधित काउंटरों पर प्रकाश की सम्यक व्यवस्था होना अत्यावश्यक है। प्रकाश की मात्रा के अनुसार आंखों की पुतलियां फैलती और सिकुड़ती हैं। उसी के अनुसार हमें दृष्टि संवेदना होती है। कोई व्यक्ति कम प्रकाश में भी काम कर लेता है किंतु कुछ लोगों को अधिक प्रकाश की आवश्यकता होती है विशेषकर अधिक आयु के ग्राहकों को। तथापि प्रकाश की भरपूर और पर्याप्त व्यवस्था करते समय हमें ग्राहकों व बैंकर दोनों के हित में ध्यान देना चाहिये कि-

1. प्रकाश अत्यधिक चमकीला या चकाचौंध लिये हुये न हो। प्रकाश का अत्यधिक चमकीला होना आंखों को थकान व असुविधा देता है।
2. प्रकाश का रंग भी आंखों के लिये आरामदायक हो। जहां तक प्रकाश के रंग का प्रश्न है- सामान्य सफेद या दूधिया रंग का प्रकाश, जो प्राकृतिक रूप से दिन के प्रकाश के रंग से मेल खाता हो, पढ़ने-लिखने के लिये उचित माना जाता है।
3. प्रकाश की अवस्थिति- लिखने के लिये या तो प्रकाश ऊपर से या बायीं ओर से आना चाहिये।
4. प्रकाश का काल सामान्य होना चाहिये और प्रकाश की तीव्रता में स्थिरता होनी चाहिये। कम ज्यादा होता, तीव्र प्रकाश आरामदायक नहीं होता।

शोर अथवा कोलाहल

शाखा का वातावरण एक अत्यंत व्यवसायिक वातावरण होना चाहिये। जिस शाखा के कर्मचारी आपस में जोर-जोर से चिल्लाकर हंसी-ठट्ठा करते रहते हैं, वहां ग्राहक स्वयं को अपमानित तथा ठगा सा महसूस करता है। ग्राहक सामने काउंटर पर खड़ा हो और कर्मचारी आपस में ही शोरगुल करते रहें तो यह अभद्रता के साथ असुविधाजनक व अशिष्ट भी लगता है। इसलिये शाखा का वातावरण शांत तथा पूर्णतया व्यवसायिक होना चाहिये। आपस की बातचीत खाली समय में होनी उचित होती है। ग्राहक के समक्ष स्टाफ की व्यक्तिगत ज़िंदगी और आपसी बातों का कोई स्थान नहीं होता। जब ग्राहक सामने खड़ा हो तो सिर्फ और सिर्फ ग्राहक। अधिक शोरगुल ग्राहक व बैंकर दोनों को चिड़चिड़ा कर देता है। जो कोलाहल किसी परिस्थिति विशेष में होते रहते हैं, वे नियतकालिक तथा निरंतर कोलाहल होते हैं और उनके प्रति ग्राहक का नज़रिया समायोजन वाला होता है किंतु आपातकालिक, अनिरंतर, अचानक तथा अत्यधिक तेज होने वाले कोलाहल पर बैंकर व कर्मचारी दोनों ध्यान देते हैं तथा शिष्टाचार व सामान्यता दोनों पर एक प्रश्नचिन्ह खड़ा करते हैं।

शाखा में वायुमंडलीय स्थितियां- रासायनिक संयोजन- यदि शाखा में स्वच्छ वायु का संचरण होता रहता है तो बैंकर और ग्राहक दोनों की कार्यक्षमता पर अनुकूल व सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। शुद्ध वायु में लगभग 20.93 प्रतिशत ऑक्सीजन होता है। तथा 0.03 प्रतिशत कार्बनडाई- ऑक्साईड होता है। इस रासायनिक संयोजन में परिवर्तन आने पर अर्थात ऑक्सीजन की मात्रा कम होने पर दोनों पक्षों को थकान व उनींदापन महसूस होने लगता है। इसलिये शाखा में स्वच्छ वायु का संचरण होना परम आवश्यक है।

शाखा में वायुमंडलीय स्थितियां- तापमान- तापमान का प्रभाव व्यक्ति की

कार्यक्षमता, शारीरिक सुविधा तथा स्वास्थ्य पर पड़ता है। वायु का तापमान शरीर के तापमान को प्रभावित करता है। सहज क्रियाओं में मनुष्य के शरीर का तापमान स्थिर या अस्थिर बना रहता है। ठंडी हवा में संवाहन तथा प्रसारण की प्रक्रियाओं द्वारा शरीर का तापमान घट जाता है। इसी तरह से गर्मी में जब शरीर का तापमान बहुत अधिक बढ़ जाता है तो इसे कम करना आवश्यक हो जाता है क्योंकि अधिक तापमान थकान का कारण बनता है। अधिक तापमान पर गलतियां होनें लगती हैं तथा मानसिक एकाग्रता भी घट जाती है। इसी प्रकार बहुत कम तापमान भी कार्यक्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। इसी कमी को दूर करने के लिये व ताजगी रखने के लिये हमारी शाखाओं को वातानुकूलित बनाया जा रहा है ताकि ग्राहक अनुभव में बेहतरी आ सके।

शाखा में वायुमंडलीय स्थितियां- वायु संचरण- वायु संचरण के कारण ठहरी हुयी तथा बासी हवा शरीर व मशीनों के पास से दूर हट जाती है। यह संचरण वायु के अनावश्यक तापमान तथा आर्द्रता को दूर करता है। इसीलिये जहां अधिक लोग एक साथ काम करते हैं, वहां वायु के कृत्रिम संचरण की व्यवस्था होनी अपेक्षित होती है।

शाखा में वायुमंडलीय स्थितियां- आर्द्रता- वायु की आर्द्रता दो प्रकार से कार्य करती है। वायु में आर्द्रता के कारण शरीर से पसीने का वाष्पीकरण रुक जाता है जिससे पसीने के वाष्पीकरण से होने वाली सुखद अनुभूति तथा शारीरिक सुविधा में व्याघात पहुंचता है। इससे भी बैंकर और ग्राहक दोनों की कार्यक्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

और भी बहुत से कारक हैं जिनका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव ग्राहक अनुभव पर पड़ता है। इन दोनों प्रकार से पड़ने वाले प्रभावों का एक बैंकर को ज्ञान होना चाहिये कि उसका ग्राहक क्या चाहता है? उसकी आवश्यकता क्या है और वह कैसे पूरी हो सकती है? एक बैंकर के रूप में-

- मुझे यह पता होना चाहिये कि मेरे ग्राहक को कैसा प्रकाश चाहिये?
- मुझे यह भी पता होना चाहिये कि मेरे ग्राहक का शारीरिक स्वास्थ्य कैसा है और कैसे सहायता पहुंचाकर उन्हें आनंदित किया जा सकता है।
- मुझे यह भी पता होना चाहिये कि मेरे ग्राहक का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। उसे शीघ्र बैठने का स्थान चाहिये।
- मुझे यह भी पता होना चाहिये कि आज मौसम सुहावना है इसलिये आज शाखा में भीड़ अधिक हो सकती है। क्योंकि सुहावने मौसम में ग्राहक बाहर निकलना पसंद करते हैं और जब बाहर निकलेंगे तो बैंकिंग भी निपटाते आयेंगे।
- मुझे यह भी पता होना चाहिये कि हवा में आज आर्द्रता अधिक है तो मेरा ग्राहक आज शारीरिक रूप से थकान महसूस कर सकता है।इस थकान को दूर करने के उपाय मुझे करने होंगे। आर्द्र मौसम शरीर से पसीने के साथ नमक भी निकालता है। और शक्ति का स्तर कम हो जाता है जिससे बैंकर और ग्राहक दोनों थकान महसूस करने लगते हैं। ऐसे में मुझे पता होना चाहिये कि मेरे ग्राहक को नींबू पानी की आवश्यकता हो सकती है।
- मुझे यह भी पता होना चाहिये कि मेरे ग्राहक को कार्यालय जाना है और उसके पास समय कम है। मुझे उसका काम, लाइन में लगे दूसरे ग्राहकों को बिना हानि पहुंचाये तथा बिना नाराज़ किये करके देना है वह भी जल्दी।
- मुझे यह भी पता होना चाहिये कि मेरे वरिष्ठ नागरिक ग्राहक के साथ आज उनके पोता-पोती आये हैं। उन बच्चों को टॉफी देने से मेरे ग्राहक को परम संतोष और आनंद प्राप्त होगा। क्योंकि ये पोता-पोती ही उस वरिष्ठ ग्राहक की जीवन भर की कमाई हैं जिन्हें वह हमसे मिलवाने लाया है। हमें उनकी इन संवेदनाओं और भावों का आदर करना होगा।
- मुझे यह पता होना चाहिये कि मेरा वरिष्ठ ग्राहक अंदर से खालीपन महसूस कर रहा है। उससे बात करके उसे विरेचित करने की ज़रूरत है। मुझे उन्हें कुछ समय तथा कुछ लगाव भी ग्राहक सेवा के साथ देना होगा।
- मुझे यह भी पता होना चाहिये कि मेरे ग्राहक का बेटा/बेटी विदेश जा रहा/रही है। उन्हें शिक्षा ऋण की ज़रूरत हो सकती है। शायद पेंशन ऋण या रिवर्स मॉरगेज की भी आवश्यकता पड़ सकती है। मुझे उनसे पूछना होगा कि आपको अतिरिक्त धन की आवश्यकता तो नहीं है?
- मुझे यह भी पता होना चाहिये कि मेरे किशोर ग्राहक के पास समय नहीं है और उसे मुझे ई बैंकिंग को समझाने की ज़रूरत है।
- मुझे यह भी पता होना चाहिये कि मेरे ग्राहक के अधिकार क्या हैं? और उन अधिकारों के प्रति मेरा क्या कर्त्तव्य बनता है।
- मुझे यह भी ध्यान रखना चाहिये कि मेरा ग्राहक पढ़ा लिखा तथा समझदार है और वित्तीय साक्षरता का जमाना है। इसलिये मुझे उनसे ईमानदारी से पेश आना चाहिये।
- मेरा एकमात्र धर्म, कर्त्तव्य **'ग्राहक का लाभ'** होना चाहिये मुझे और मेरी संस्था को स्वयमेव लाभ मिल जायेगा।

21. ग्राहक सेवा से संबंधित समितियां

भारतीय रिज़र्व बैंक तथा भारत सरकार द्वारा ग्राहक सेवा से संबधित विभिन्न समितियों का गठन किया गया है जिन्होंने समय समय पर शोध, सर्वेक्षण और चर्चाओं के उपरांत यथानुसार सिफारिशें की हैं जिनकी चर्चा आगे की गयी है।

भारतीय रिज़र्व बैंक भारत का केंद्रीय व वित्तीय संस्थाओं व बैंकों का नियामक है। बैंकिंग सेवाओं की गुणवत्ता को बढ़ाने तथा सर्वसुलभ कराने के उद्देश्य से भारतीय रिज़र्व बैंक ने नियामक तथा पर्यवेक्षण संस्था के रूप में गंभीर उपाय किये हैं। इन उपायों में ग्राहक सेवा से संबंधित स्वनियमन, ग्राहक सेवा से संबंधित नीति, ग्राहकों हेतु क्षतिपूर्ति नीति, ग्राहक शिकायत निपटान नीति, ऋणकर्ताओं द्वारा फेयर प्रैक्टिस कोड का अनुपालन, ग्राहकों के प्रति बी सी एस बी आई कोड का प्रावधान तथा ग्राहक सेवा संबंधी सूचनाओं के प्रदर्शन से संबंधित नीति, ग्राहक सेवा समितियों का गठन आदि उपाय सम्मिलित हैं। इन उपायों का अनुपालन सभी बैंकों द्वारा अनिवार्य रूप से किया जाना अपेक्षित है।

भारतीय रिज़र्व बैंक तथा भारत सरकार द्वारा ग्राहक सेवा से संबधित विभिन्न समितियों का गठन किया गया है जिन्होंने समय-समय पर शोध, सर्वेक्षण और चर्चाओं के उपरांत यथानुसार सिफारिशें की हैं जिनकी चर्चा आगे की गयी है।

तलवार समिति : 1975 में **बैंकों में ग्राहक सेवा से संबंधित कार्य समूह** का गठन श्री आर के तलवार की अध्यक्षता में **तलवार समिति** के रूप में किया गया। इस समिति ने कुल मिलाकर 176 सिफारिशें की जिनमें से भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा 120 सिफारिशें स्वीकृत कर ली गयीं और आज तक वैध हैं। इनमें से कुछ मुख्य हैं-

1. सभी बैंकों की सभी शाखाओं में **क्या मैं आपकी सहायता कर सकता हूं?** काउंटर का प्रावधान हो।
2. चेकों की राशि को खाते में तत्काल जमा करना।
3. प्रति माह की 15वीं तिथि को ग्राहक दिवस के रूप में मनाया जाना।
4. सभी शाखाओं में शिकायत तथा सुझाव पुस्तिका का प्रावधान।
5. चेकों की वसूली में हुयी देरी हेतु विलंब हेतु दंडात्मक ब्याज का भुगतान।
6. माह की अंतिम तिथि को पेंशन की राशि खाते में जमा करना।

गोईपुरिया समिति- 1990 में भारतीय रिज़र्व बैंक ने **बैंकों में ग्राहक सेवा पर समिति** के नाम से 14 सदस्यीय समिति का गठन किया जिसके अध्यक्ष भारतीय स्टेट बैंक के तत्कालीन अध्यक्ष श्री एम एन गोईपुरिया थे। समिति ने 5 दिसंबर 1991 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें कुल 97 सिफारिशें की गयीं थीं। सभी सिफारिशें भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा मान ली गयीं थीं। इनमें से कुछ हैं जैसे-

1. स्टाफ सदस्यों का कार्यकाल बैंकिंग कार्यकाल से 15 मिनट पहले प्रारंभ होना चाहिये।
2. गैर नकदी संव्यवहारों के लिये अवधि बैंकिंग कार्यकाल से एक घंटा पहले तक अर्थात् यदि 5 बजे तक का बैंक है तो 4 बजे तक की जाये।
3. कार्य समय में बैंकिंग हाल में आये सभी ग्राहकों को बैंकिंग सेवा प्रदान की जाये.
4. विभिन्न संव्यवहारों के लिये मानक बनाये जायें।
5. 30 या उससे अधिक स्टाफ वाली शाखाओं में क्या मैं आपकी मदद कर सकता हूं? काउंटर बनायें जायें।
6. नोटों की गड्डियां कागज़ की पट्टी से सील की जायें।
7. अनादृत प्रपत्र 24 घंटे के भीतर ग्राहकों को वापस किये जायें।
8. स्टाफ सदस्य परिचय पत्र धारण करें।
9. छिद्रक पत्रों और चार प्रतियों वाली शिकायत पुस्तिका की शाखा में उपलब्धता।
10. कार्य समय के दौरान कोई काउंटर स्टाफ से विहीन न रहे।
11. नामांकन फार्म के अलावा, खाता खोलने के फार्म पर भी नामिति का नाम व पता लिखने का प्रावधान हो। नामांकन की सुविधा के बारे में सूचना प्रदर्शित की जाये।
12. जब तक कि ग्राहक द्वारा मना न किया जाये, खातों में नामांकन एक नियम के रूप में होना चाहिये।

13. बैंकों द्वारा पठनीय पासबुक तथा खाता विवरण जारी किये जायें।
14. ग्राहक सेवा से संबंधित प्रकाशन तथा अन्य सामग्री त्रिभाषीय हो।
15. बैंकों में बैठने की व्यवस्था तथा पानी पीने आदि की व्यवस्था उचित रूप से की जाये।

तारापोर समिति- 2004 में भारतीय रिज़र्व बैंक ने डॉ. एस एस तारापोर की अध्यक्षता में **सार्वजनिक सेवाओं हेतु प्रक्रिया व कार्यनिष्पादन संबंधी अंकेक्षण समिति (सी पी पी ए पी एस)** का गठन किया गया। इस समिति को ग्राहक सेवा से संबधित नीतियों और प्रक्रियाओं की समीक्षा करने तथा ग्राहक व बैंकर दोनों के द्वारा किये जाने वाले संव्यवहारों को सुविधाजनक बनाने हेतु उपाय सुझाने का काम सौंपा गया था।

इस समिति की सिफारिशों के अनुसार, हर बैंक प्रक्रियाओं व कार्यनिष्पादन का अंकेक्षण करने के लिये एक तदर्थ समिति का गठन करेगा जो प्रक्रियाओं व बैंकिंग परंपराओं के सरलीकरण के उपाय सुझायेगी। बाद में भारतीय रिज़र्व बैंक ने इसी समिति को ग्राहक सेवा से संबधित स्थायी समिति बना दिया।

समिति की कुछ महत्वपूर्ण सिफारिशें निम्नानुसार हैं-

1. सभी बैंक, काउंटर पर चेक स्वीकार करने तथा चेक ड्रॉप बॉक्स- दोनों सुविधायें ग्राहकों को देंगे।
2. ग्राहक द्वारा अनुरोध किये जाने पर बैंक उनको चेकबुक काउंटर पर उपलब्ध करायें और उक्त को डाक/ कोरियर से भेजने पर जोर नहीं देंगे।
3. सप्ताह के अन्य दिनों में बैंक जनता को 4 घंटे तथा शनिवार को 2 घंटे बैंकिंग सेवायें देंगे ।
4. महानगरीय तथा शहरी शाखाओं में स्टाफ सदस्यों का कार्यकाल बैंकिंग कार्यकाल से 15 मिनट पहले प्रारंभ होना चाहिये। ऐसा करते समय बैंक स्थानीय दुकान व स्थापना अधिनियम को ध्यान में रखेंगे।
5. कार्य समय में बैंकिंग हॉल में आये सभी ग्राहकों को बैंकिंग सेवा प्रदान की जाये।
6. गैर नकदी संव्यवहारों के लिये अवधि बैंकिंग कार्यकाल से एक घंटा पहले तक अर्थात् यदि 5 बजे तक का बैंक है तो 4 बजे तक की जाये।
7. समय के मानकों संबंधी नीति बैंकों के निदेशक मंडल द्वारा पारित की गयी हो तथा इस समय से संबंधित सूचना नोटिस बोर्ड पर प्रदर्शित की गयी हो।

इन समितियों के अतिरिक्त भारतीय रिज़र्व बैंक ने ग्राहकों की शिकायतों के निपटान

के लिये एक रूपरेखा तैयार की है। यह रूपरेखा चार चरणों में है-

1. निदेशक मडंल की ग्राहक सेवा समिति
2. ग्राहक सेवा संबंधी स्थायी समिति
3. प्रधान कार्यालय का नोडल विभाग
4. शाखा स्तरीय ग्राहक सेवा समिति

1. **निदेशक मंडल की ग्राहक सेवा समिति**- प्रत्येक बैंक से यह अपेक्षा की गयी है कि वह अपने कुछ निदेशकों को मिलाकर एक ग्राहक सेवा समिति का गठन करे जो ग्राहक सेवा संबंधी मामलों का अनुश्रवण करे। इस समिति में विशिष्ट आमंत्रितों के रूप में विशेषज्ञ तथा ग्राहकों के प्रतिनिधि शामिल हो सकते हैं। यह समिति ग्राहकों के संबंध में एक व्यापक जमा नीति तैयार करेगी जो मृतक खातों, उत्पाद अनुमोदन प्रक्रिया तथा जमाकर्ता के संतोष का वार्षिक सर्वेक्षण तथा संबंधित सेवाओं का त्रिवार्षिक अंकेक्षण करेगी। बैंकिंग लोकपाल द्वारा बैंक के विरुद्ध दिये गये निर्णयों की भी समीक्षा यह समिति करेगी तथा उक्त निर्णयों के माध्यम से सामने आयी प्रणालीगत कमियों को भी ठीक करने संबंधी प्रयास करेगी। यदि इन निर्णयों का क्रियान्वयन आगामी तीन माहों में नहीं किया जाता है तो इसका अनुश्रवण भी यह समिति करेगी। यह समिति ग्राहक सेवा सबंधी स्थायी समिति के कार्यों का भी अवलोकन करेगी।
2. **ग्राहक सेवा संबंधी स्थायी समिति**- सार्वजनिक सेवाओं के प्रणाली व कार्यनिष्पादन संबंधी अंकेक्षण से सबंधित समिति ने यह सिफारिश की थी कि इस प्रकार के अंकेक्षणों के लिये एक तदर्थ समिति का गठन किया जाये जिसे बाद की सिफारिशों के अनुसार स्थायी समिति में परिवर्तित कर दिया गया था। प्रत्येक बैंक के प्रधान कार्यालय में इस समिति का गठन किया गया था जिसमें प्रधान कार्यालय के विभिन्न विभागों के कार्यपालक शामिल होते हैं। ग्राहक सेवा के सबंध में यह स्थायी समिति होती है। इस समिति में बैंक के अध्यक्ष व प्रबंध निदेशक के अतिरिक्त दो या तीन कार्यपालक तथा ग्राहकों के प्रतिनिधि के रूप में दो या तीन प्रतिष्ठित व्यक्ति होते हैं। यह समिति तिमाही आधार पर अपनी रिपोर्ट/फीडबैक निदेशक मंडल की ग्राहक सेवा समिति को प्रस्तुत करेगी। यह समिति भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा ग्राहक सेवा से संबंधित जारी किये गये दिशानिर्देशों की अनुपालना भी सुनिश्चित करेगी। इन निर्देशों की अनुपालना सभी संबंधित विभागों, कार्यालयों शाखाओं द्वारा प्रभावी तरीके से की जाती है, यह समिति इसका भी सुनिश्चियन करेगी। यह समिति प्रथाओं तथा प्रणालियों की भी समीक्षा करेगी तथा इस पैरामीटर पर बेहतरी के लिये भी कार्य करेगी। ग्राहक सेवा को बेहतर बनाने के लिये किये गये अपने प्रयासों की रिपोर्ट भी यह समिति निदेशक मंडल की समिति को सौंपेगी।

3. **शाखा स्तरीय ग्राहक सेवा समिति**- इस समिति में शाखा के ग्राहक तथा स्टाफ शामिल होते हैं। समिति में शाखा प्रबंधक, शाखा प्रमुख से कनिष्ठ स्टाफ, अधीनस्थ स्टाफ यूनियन तथा अधिकारी संघ के प्रतिनिधि, एक वरिष्ठ नागरिक सहित दो ग्राहक व एक स्टाफ सदस्य सहित कम से कम 5 तथा अधिकतम 7 सदस्य होते हैं। यह समिति माह में एक बार बैठक करेगी तथा ग्राहकों की समस्याओं का समाधान करेगी। ग्राहक सेवा से संबंधी कमियों को दूर करेगी। शाखा इस बैठक के कार्यवृत्त रिकार्ड में रखेगी तथा एक प्रति क्षेत्रीय कार्यालय को प्रेषित करेगी। क्षेत्रीय कार्यालय क्षेत्र की समेकित रिपोर्ट केंद्रीय कार्यालय को प्रेषित करेगा और यदि आवश्यक हुआ तो उक्त रिपोर्ट को निदेशक मंडल की ग्राहक सेवा समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा।
4. **प्रधान कार्यालय में नोडल विभाग**- हर बैंक के प्रधान कार्यालय तथा अन्य नियंत्रक कार्यालयों में ग्राहक सेवा से संबंधित नोडल विभाग होगा जिससे बैंकिंग लोकपाल कार्यालय तथा भारतीय रिज़र्व बैंक संप्रेषण कर सकेंगे। इन कार्यालयों में ग्राहकों के मामलों को देखने के लिये एक नोडल अधिकारी भी नामित किया जायेगा जो ग्राहक सेवा से संबंधित मामलों का निपटान व अनुश्रवण करेगा

अनुक्रमणिका-1
ग्राहक सेवा में समय के मानक

क्र.	मद/कार्य	समय सीमा
1.	टेलर में चेक का भुगतान	↳5-8 मिनट
2.	कैशियर द्वारा चेक का भुगतान	↳8-10 मिनट
3.	रकम जमा	↳10-20 मिनट
4.	डिमांड ड्राफ्ट, टर्म डिपॉज़िट जारी	↳15-25 मिनट
5.	डिमांड ड्राफ्ट भुगतान	↳10-20 मिनट
6.	जमा रसीद भुगतान	↳5-25 मिनट
7.	खाता खोलना	↳20-25 मिनट
8.	बिलों का रिटायरमेंट	↳20-30 मिनट
9.	पासबुक अद्यतन	↳5-15 मिनट
10.	लोकल चेक कलेक्शन	↳2-3 दिन
11.	बाहरी चेक कलेक्शन	↳10-14 दिन
12.	चेक बुक जारी	↳15 मिनट

अनुक्रमणिका-2
सारांश समयबद्धता का

1.	डिपॉज़िट खाते की शर्तों में परिवर्तन नोटिस	↳01 माह
2.	बिना नोटिस के परिवर्तन	↳30 दिन
3.	खाते चुनने में ग्राहकों को पसंद यदि कोई उत्पाद ग्राहकों को पसंद नहीं है	↳14 दिन
4.	खाता बंद ग्राहक अनुरोध	↳05 दिन
5.	खाते का दूसरी शाखा में स्थानांतरण	↳02 सप्ताह
6.	शिकायत की पावती	↳01 सप्ताह
7.	ग्राहक शिकायत का निस्तारण अधिकतम समय सीमा	↳30 दिन
8.	बैंक द्वारा ग्राहक खाता बंद (नोटिस)	↳30 दिन
9.	दिवंगत खाता का निपटान	↳15 दिन
10.	फीस प्रभार आदि में परिवर्तन नोटिस अवधि	↳1 माह
11.	डारमेंट, अनक्लेम्ड नोटिस अवधि	↳3 माह
12.	शाखा बंद करना या स्थानांतरित करना यदि वहां कोई बैंक न हो तो नोटिस	↳3 माह
13.	शाखा बंद करना या स्थानांतरित करना यदि वहां कोई बैंक हो तो नोटिस	↳2 माह
14.	क्रेडिट कार्ड शर्तों में परिवर्तन	↳1 माह
15.	ऋण वसूली के लिये ग्राहक के यहां जाने का समय	↳सुबह 7.00 बजे से सायं 7.00 बजे तक

इसके अलावा भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा ग्राहकों की शिकायतों तथा विवादों के निपटान के लिये बैंकिंग लोकपाल योजना 2006 तथा सूचना का अधिकार 2005 जैसे नियमों का प्रावधान भी किया गया है।

सहकारी बैंकिंग

संगठन और स्वरूप

संपादक

डॉ. पुष्प कुमार शर्मा

सावित्री सिंह

आधार प्रकाशन

पंचकूला (हरियाणा)

भारतीय रिज़र्व बैंक का प्रकाशन

संपादन सहयोग

**डॉ. शरद कुमार, श्री के.सी. मिश्रा, श्री एस.सी. झंवर,
श्री सूरज प्रकाश, डॉ. गजेंद्र कुमार, डॉ. हरियश राय,
श्री अरुण श्रीवास्तव और श्री के.सी. मालपानी**

ISBN : 978-81-7675-475-0

मूल्य	–	300 रुपये
सर्वाधिकार	–	भारतीय रिज़र्व बैंक
संस्करण	–	2015
प्रकाशक	–	आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड एससीएफ 267, सेक्टर-16 पंचकूला-134 113 (हरियाणा) फोन : 0172-2566952, 2520244 ई-मेल : aadhar_prakashan@yahoo.com
आवरण	–	श्री सुधाकर वरवडेकर
लेज़र टाइपसेटिंग	–	आधार ग्राफ़िक्स, पंचकूला (हरियाणा)
मुद्रक	–	बी.के. ऑफसेट, नवीन शाहदरा, दिल्ली

Sehkari Banking : Sangthan aur Swaroop
ed. by Dr. Pushp Kumar Sharma & Savitri Singh Price : Rs 300/-